आदि ग्रन्थ में संगीत सविता

सविता बख्शी



मान-सम्मान : सविता बख्शी के सराहनीय कार्य को देखते हुए इन्हें कई पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। कुछेक इस प्रकार हैं :-

(1) सर्वश्रेष्ठ सितारवादक -1975 (बेगम अब्दुल्ला द्वारा प्रदत्त प्राप्त किया)

(2) 'संगीत सुरभि' नमीं डोगरी संस्था द्वारा प्रदत्त (राज्य की प्रथम महिला श्रीमती उषा वोहरा से प्राप्त किया।)

(3) रंगशाला द्वारा प्रदत्त अवार्ड : प्रतिभाशाली बेटी

(4) राष्ट्रीय पंजीकृत संस्था, संस्कार भारती द्वारा प्रदत्त 'गुरु सम्मान'।

(5) जम्मू विश्वविद्यालय द्वारा प्रदत्त–बैस्ट कम्पोज़ीशन अवार्ड

(6) भारतीय कला संगम द्वारा प्रदत्त 'लाइफ टाइम अचीवमैंट अवार्ड''

(7) गांधी ग्लोबल फैमिली द्वारा प्रदत्त ''रवींद्रनाथ टैगोर'' अवार्ड 2012

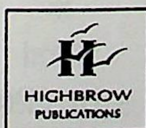
(8) स्पैशल ओलम्पिक्स भारत जम्मू और कश्मीर द्वारा प्रदत्त इयोनिस केनडी शिरीवर अवार्ड 2011

सविता बख्शी की दो पुस्तकें 'राग एण्ड म्युज़िक इन द सिक्ख होली स्क्रिप्चर' (Raag and Music in the Sikh Holy Scripture) और ''संगीत सविता'' प्रकाशित हो चुकी हैं।

इस समय सविता बख्शी जम्मू-कश्मीर की कला, संस्कृति तथा भाषा अकादमी में अतिरिक्त सचिव के पद पर कार्यरत हैं और इस समय कला केन्द्र के सचिव पद का कार्यभार भी सम्भाल रही हैं।

आदि ग्रन्थ में संगीत सविता

सविता बख्शी



हाइब्रो पब्लिकेशन्ज़
बाड़ी ब्राह्मणा, जम्मू

ADI GRANTH MEIN SANGEET SAVITA

by

Savita Bakshi
(M) 94191-91621

ISBN : 978-93-82670-03-2

प्रकाशक

हाइब्रो पब्लिकेशन्ज़

नेशनल हाइवे, बाड़ी ब्राह्मणा, जम्मू

✵

मूल्य

₹ 595/-

✵

प्रकाशन वर्ष

2014

✵

प्रतियां

500 प्रतियां

✵

मुद्रक

रोहिणी प्रिंटर्ज

कोट किशन चंद, जालन्धर शहर

फोन : (0181)-5065271, 9419149293

समर्पण

जिन्होंने इस दिव्य ज्ञान की ओर प्रेरित करके आप्लावित किया उन परम आदरणीय स्वर्गीय प्रोफैसर देवेन्दर सिंह जी की पुण्य स्मृति में सादर समर्पित।

मेरी नज़र में

एक दिलदार फनकारा,
फ़न की दिलदादा है,
दिलदार है, सविता बख्शी।
यानि खुद एक बड़ी,
फनकार है सविता बख्शी।
अच्छे फ़नकार को चाहिए
मिलना जो अकसर
हर उस इनाम की,
हकदार है सविता बख्शी।
शायरों और अदीबों की
है हमदर्द बड़ी,
खुद भी हालांके,
कलमकार है सविता बख्शी।
दाद देती है खुले दिल से
कलमकारों को,
फ़न की परख है,
परखदार है सविता बख्शी।
हौंसला शिकनी नहीं करती
किसी को वो कभी,
बड़ी रिहोश है,
बेदार है सविता बख्शी।
अपनी आवाज़ से भी
अपनी मिसाल आप है वो,
हाँ, बहुत खूब,
सदाकार है सविता बख्शी।
जिस कलमकार को देखें वो परेशान
अमीन उसकी हर तरह से
मददगार है सविता बख्शी।

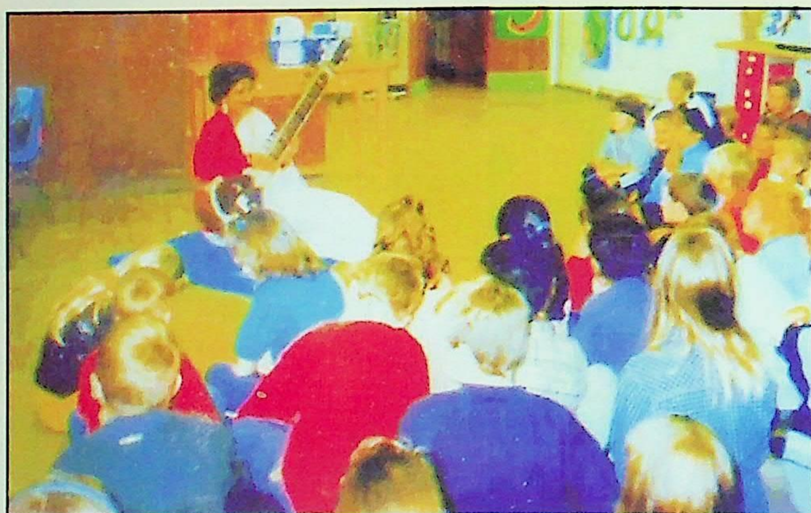
मौहमद अमीन बनिहाली
सुंजवां, जम्मू
वर्तमान पताः
320, दलपतियां, जम्मू।



डोगरी कांफ्रैंस में सविता बख्शी जी धन्यवाद प्रस्ताव पेश करते हुए।



'संगीत सविता' पुस्तक का विमोचन



ब्रिटेन में सविता बख्शी जी Lecture-cum-demonstration देते हुए।



सविता बख्शी जी अभिनव थियेटर में
सितार-वादन प्रस्तुत करते हुए।



रूस में आयोजित द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय कला
समारोह में भाग लेते हुए।



भारतीय कला संगम सविता बख्शी जी को
Life Time Achievement Award देते हुए।

प्राक्कथन

सत्यं शिवं सुन्दरम् यद्यपि अपने समग्र रूप में भारतीय संस्कृति की प्राण वायु के समान है, परन्तु कला के क्षेत्र में तो इसे जो महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है वह आत्मा से कम नहीं है। दूसरे शब्दों में इस श्रेष्ठ वाक्य के बिना कला कला ही नहीं कहला सकती। जैसे स्वर्ण-घट-विष-पूर्ण होने पर सभी के लिये हेय एवं घृणा का कारण बनता है और मृत्तिका-घट अमृतपूर्ण होने पर सभी के आकर्षण का केन्द्र बन जाने से सभी के लिए ग्राह्य होता है, ठीक उसी प्रकार सत्यं, शिवं और सुन्दरम् वाक्य अपने तीनों घटकों द्वारा साहित्य एवं कला को सजा-संवार कर हमारे सामने प्रस्तुत करता है। परिणामतः वैसी साहित्यक रचना और कला कृति श्रेय और प्रेय से संकलित होकर कालजयी रचना का रूप ले लेती है। परिणामतः ऐसी साहित्यक रचना और कलाकृति से साक्षात्कार होने पर ही हमें बाह्य सहोदर आनन्द की प्राप्ति होती है। इस सन्दर्भ में जब हम आदि ग्रन्थ 'श्री गुरू ग्रन्थ साहिब' की बात करते हैं तो उपर्युक्त अमर वाक्यों में छुपे अर्थ इस अमर कृति में पूर्णयता चरितार्थ सिद्ध होते हैं। इसलिए यह तथ्य स्वतः सिद्ध है कि पवित्र ग्रन्थ अपना उपमान स्वयं है, यद्यपि तुलसीदास कृत रामचरितमानस की चौपाइयां भी गेय होने के कारण इस ग्रन्थ में सम्मिलित वाणियों के समकक्ष ही गिनाई जा सकती हैं। दोनों का अपने-अपने स्थान पर अकथनीय महत्व है।

वस्तुतः गुरू ग्रंथ साहिब पूर्ण रूप से आध्यात्मिक रचना होने के साथ-साथ जो संगीतिक कृति भी है, यही इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। यह तथ्य सभी को अवगत है कि गुरू नानक देव जी द्वारा आरम्भ किया हुआ यह आदि ग्रन्थ बाद में गुरू अर्जुन देव जी द्वारा सम्पादित किए जाने पर पूर्णता को प्राप्त हुआ था। इस ग्रन्थ में 'जपुजी' में संग्रहीत वाणियों को छोड़ कर सारी वाणियां रागात्मक हैं। गुरु अर्जुन देव जी ने गुरुवाणी का संकलन करके उसे 'पोथी परमेश्वर' का

रूप देकर आस्थावान लोगों के समक्ष प्रस्तुत किया था।

इस ग्रन्थ रत्न में सम्मिलित 31 रागों की वाणी समस्त रागों के सम्पूर्ण प्रभाव पर प्रकाश डालती है और साथ-ही-साथ आध्यात्मिक संदेश भी देती है। जो कोई भी श्रद्धा भाव से इसमें निहित सारगर्भित भाव पर चिन्तन मनन करके इस पर अमल करता है वह अवश्य सफलता प्राप्त करता है।

इस पवित्र ग्रन्थ के राग-प्रबन्ध का सौन्दर्य यह है कि इसका सम्बन्ध अलग-अलग काव्य रूपों के साथ है। इन काव्य रूपों में बहुलता एवं विविधता लोक काव्य रूप की है। वाणीकार इसके नियमों के विषय में पूर्ण रूप से सचेष्ट थे। इसलिए वे जनता को उनकी भाषा में ही इन काव्य-रूपों में निबद्ध गुरुमत वाणी को जन-जन तक पहुंचाने के लिए प्रयत्नशील थे ताकि वे इसके गम्भीर आध्यात्मिक तत्व को ठीक प्रकार से समझ सकें।

इस ग्रन्थ के काव्य रूप का प्रबन्ध इस प्रकार रखा गया है कि भारत के सभी धर्मों, सम्प्रदायों आदि के लोग इस आदि ग्रन्थ में समाहित लोक प्रिय रागों को अच्छी प्रकार समझ सकें और सर्वजनहितार्थ इसका सर्वत्र प्रचार-प्रसार भी कर सकें। गुरुग्रन्थ साहिब का आरम्भ यद्यपि साधारण ढंग से हुआ है, परन्तु फिर भी इसकी आध्यात्मिक छवि वहीं पर झलकती हुई हमारे मन पर अपना भरसक प्रभाव डालने लगती है। प्रारम्भिक प्रार्थनामयी वाणी ही हमें परमात्मा की अनन्त शक्ति का आभास करवाने लगती है। इसके साथ-साथ उस शक्ति तक पहुंचने के लिए साधनों की भी इन वाणियों में अभिव्यक्ति मिलती है।

जपुजी साहिब एक राग रहित महत्वपूर्ण दार्शनिक रचना है और गुरुग्रन्थ साहिब की शेष वाणी अनेक रागों में निबद्ध अत्यंत आकर्षक और हमारे हृदयों पर अपनी छाप छोड़ने वाली है। वस्तुतः संगीत की दृष्टि से गुरु जी का अवतरण अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। विशेषकर आध्यात्मिक संगीत का आरम्भ करके उन्होंने समाज पर अपूर्ण एवं वर्णनातीत उपकार किया है क्योंकि उनके

इस धरती पर अवतरित होने के समय भारतीय संगीत विशेषकर आध्यात्मिक संगीत पतन् की पराकाष्ठा पर पहुंच चुका था। राग विद्या लुप्त होती जा रही थी। ऐसे संकटमय समय में संगीत-बद्ध कीर्तन की परम्परा का आरम्भ करने का श्रेय श्री गुरु नानक देव जी को ही जाता है। उन्होंने निःसन्देह भारतीय संस्कृति के प्रमुख तत्व आध्यात्मिक तत्व संगीत को नया जीवन प्रदान किया। बाद में गुरु अर्जुन देव जी ने कीर्तन करने वालों को 'भलो भलो रे कीर्तनीया' कह कर पुकारा है—तुम धन्य हो जो तुम लोग कीर्तन द्वारा परमात्मा का गुणगान करते हो। गुरु ग्रन्थ साहिब में तीन प्रकार के रागों का वर्णन है—

1. सनातनी राग
2. देसी राग और
3. मौसमी राग।

गुरु ग्रन्थ साहिब जैसा शायद ही कोई ग्रन्थ होगा जिसमें दूसरे धर्मों, जातियों और क्षेत्रों के महापुरुषों की वाणियों का संकलन हो। यह भी हमारे लिए अत्यंत सौभाग्य की बात है कि यह ग्रन्थ हमारे पास मूल भाषा में उपलब्ध है। भाई गुरुदास जी को इन पवित्र वाणियों को लिपिबद्ध करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया था। उन्होंने बड़े निश्छल भाव से भारतवर्ष के प्रमुख सन्तों एवं अनुयायियों को आमन्त्रित किया ताकि वे इस पवित्र ग्रन्थ में अपने-अपने गुरुओं की उपयुक्त वाणियों को इस ग्रन्थ में संकलित करने में सहायता दे सके। वे संत एवं फकीर हिन्दु और मुसलमान दोनों धर्मों के थे। उस समय जो वाणियां भी धार्मिक एवं नैतिक सुधार की दृष्टि से उपयुक्त समझी गई उन्हें इस ग्रन्थ में स्थान दिया गया। इस ग्रन्थ की इन्हीं विशेषताओं के कारण मेरे हृदय में इस पवित्र ग्रन्थ पर कार्य करने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई। फलतः "Raga and Music in the Sikh Holy Scripture" शीर्षक से अंग्रेजी भाषा में एक प्रस्तुक का सृजन किया जा सका इसका विमोचन 14 मार्च 2012 ई. के दिन अभिनव थियेटर, जम्मू

में अनेक गण्य माण्य बुद्धिजीवियों के समक्ष हुआ था। ऐसा मैं समझती हूँ कि उन महान गुरू जी की कृपा से ही संभव हो सका था। अब मैं मां सरस्वती की कृपा से इस पुस्तक का राष्ट्र भाषा हिन्दी में रूपांतर तैयार कर रही हूं ताकि हिन्दी भाषा में होने के कारण यह पुस्तक अधिक से अधिक पाठकों तक पहुंच सके। इस पुस्तक के शीर्षक का चयन भी ''आदि ग्रन्थ में संगीत सविता'' अर्थात् आदि ग्रन्थ में संगीत का प्रकाश, सूर्य, रोशनी होगा। मुझे आशा है कि इस पुस्तक को पढ़ने से पाठकवर्ग को विशेषकर संगीत प्रेमी पाठक वर्ग को आदि ग्रन्थ की संगीतबद्ध वाणियों से यथेष्ट लाभ होगा। इतना ही नहीं बल्कि इस ग्रन्थ की वाणियों के भीतर जो आध्यात्मिक सौन्दर्य एवं शिवत्व आदि अद्भुत एवं अलौकिक गुण हैं उनसे भी जिज्ञासु लोगों को अवश्य लाभ होगा। वस्तुतः इस पुस्तक में अन्तर्निहित मानवता का एवं आध्यात्मिकता का सन्देश निश्चय ही परमानंद की अनुभूति करवाने वाला है। इनका रसास्वादन तो गूंगे के द्वारा गुड़ की मिठास का आस्वादन करने के समान है। इन वाणियों को पढ़ कर इन पर अमल करने से ही मन, बुद्धि और जीवात्मा सब पवित्र और निर्मल तथा दिव्यानुभूति को प्राप्त हो जाते हैं। संक्षेप में समग्र मानव शरीर बाहिर और भीतर से ज्ञान ज्योति से आलोकित हो जाता है उस समय ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय त्रिपुटी एकत्व को प्राप्त कर लेता है।

सविता बख्शी



विशे-सूची

भूमिका

संगीत कला हमेशा परिवर्तनशील रही है । प्राचीनकाल के ग्रन्थों तथा मतों से आधुनिक रागों का स्वरूप मेल नहीं खाता परन्तु प्राचीन काल के राग अथवा कला के मूल उद्देश्य तथा सिद्धान्त तत्वों में अधिक अन्तर नहीं पड़ता । कला के बाहरमुखी तत्व हमेशा बदलते आए हैं परन्तु इससे कला की अन्तरात्मा नहीं बदलती । संगीत का मुख्य उद्देश्य, प्रसन्नता देना, आनन्द प्रदान करना, एकाग्रचित करना, रस में डुबो देना, हर काल में एक सा ही रहा है । हमने यह विषय आदि ग्रन्थ मे संगीत सविता (प्रकाश) का चयन इसलिए किया है कि "आदि ग्रन्थ" के ऊपर हमें बहुत से सुविचार पढ़ने सुनने को मिलते हैं लेकिन आदि ग्रन्थ में संगीत सविता (प्रकाश) कैसे है ? राग, पद्य और बाणी का आपसी सम्बन्ध क्या है, क्यों है ? और कैसे है ? इस तरफ मनीषियों का ध्यान नहीं गया है। इसलिए यह विषय नवीनतम, मौलिक और महत्वपूर्ण बन जाता है। संगीत के अन्तर्गत राग, पद्य के अन्तर्गत कविता, वाक् (शब्द) के अंन्तर्गत बाणी का सुचारु रूप से व्याख्या कर, आम जनता के ज्ञान द्वारा कुछ नया कार्य (अन्वेषण) करने की चेष्टा, जिससे आम जनता को संगीत और प्रकाश, संगीत और समाज, संगीत और धर्म, संगीत और जन्म, संगीत और सृष्टि, संगीत और मृत्यु जैसे कण–कण में भगवान् महसूस होता है । ठीक उसी प्रकार कण–कण में संगीत (राग) महसूस होता है । आदि ग्रन्थ में जीवन का सारा सार रागों के जरिए शब्द और बाणियों के द्वारा संकलित किया गया है । आदि ग्रन्थ में रागों की ऐसी तरतीब क्यों दी गई ?यह भी विषय का एक अंग है ।

मध्यकालीन परम्पराएं हैं जो राग–प्रबन्ध, गायन–प्रबन्ध और धुन–प्रबन्ध पर आधारित है । इसी तरह लोकसंगीत में किसी लोकगीत की कल्पना केवल काव्य के द्वारा ही सम्भव नहीं, बल्कि लोकगीत एक मौलिक धुन का भी परिचायक होता है। उसी तरह "आदि ग्रन्थ में संगीत सविता" में हमें संगीत और पंजाबी काव्य दोनों का ही

अध्ययन अनिवार्य हो जाता है।

मध्यकालीन काव्य एवं संगीत की परम्परा में गुरू साहिबान, संत भक्तों, सूफियों एवं समस्त भारत के भक्त कवियों द्वारा अपनी वाणी के गायन के लिए किसी निश्चित संगीत प्रबन्ध का चुनाव एक महत्वपूर्ण विषय रहा है । इस संगीत–प्रबन्ध के गायन रूप के दो प्रमुख भेद रहे हैं "शास्त्रीय एवं लोक" इसी के आधार पर राग के दो रूप प्रचार में आए हैं । "मार्गी अथवा देशी" । मार्गी संगीत वह संगीत है जिसमें शुद्ध शास्त्रीय नियमों का पालन किया जाता है और देशी संगीत वह संगीत है जिसमें कड़े शुद्ध शास्त्रीय नियमों का पालन नहीं किया जाता बल्कि जन रुचि के अनुसार देश में प्रचलित संगीत का प्रचार होता है । हमारा विषय इसी मार्गी और देशी संगीत के संदर्भ में "गुरू ग्रन्थ साहिब" के 31 रागों का गहरा अध्ययन कर इन्हीं की राग योजना पर विचार कर, किसी निष्कर्ष तक पहुंचना है जिससे कोई नया अन्वेषण , कोई नया विचार, आम जनता के समक्ष रखा जा सके ।

गुरू नानक देव से लेकर अब तक प्रचलित गुरमति संगीत की जीवंत परम्परा 500 वर्षों से अधिक संगीतिक सरमाये का प्रयोग करती आ रही है । इसके व्यावहारिक, सैद्धान्तिक और ऐतिहासिक स्वरूपों में से हम नवीन तथा मौलिक तथ्यों व तत्त्वों की प्राप्ति कर सकते हैं । वर्तमान समय में चाहे सिख–कीर्तन में पोपुलर म्यूजिक के प्रभाव के अधीन होकर काफी बिगाड़ आ रहा है, पर टकसाली कीर्तनों के पास अभी भी इसका शुद्ध रूप सीना–ब–सीना सुरक्षित पड़ा है ।

विषय के लिहाज़ से "गुरमत संगीत" का अकादमिक जगत में प्रवेश एक ऐतिहासिक महत्वपूर्ण कदम है , जिसके द्वारा हम उत्तर भारतीय संगीत के एक विशाल संगीतिक खज़ाने के प्रति अपनी पहचान बनाकर, उत्तरी भारतीय संगीत को नवीन प्रकाश, नवीन अर्थ और मौलिकता प्रदान कर सकते हैं । अपने विषय के द्वारा , पुरातन राग स्वरूप , पुरातन बन्दिशें, पुरातन वाद्यों के विलक्षण स्वरूप और प्रयोग की हमारी विरासत, आने वाली पीढ़ी की झोली में डालना हमारा फर्ज है ।

गुरमति संगीत में प्रचलित विभिन्न राग स्वरूपों तथा प्रकारों का खज़ाना राग सम्बन्धी हमारी समझ को, मौलिक संदर्भ और नवीन सम्भावनाओं को धारण करने वाला बनाएगा ।

"आदि ग्रन्थ की राग योजना" पर विचार करने से पूर्व यह अनिवार्य हो जाता है कि आदि ग्रन्थ के बारे में जानकारी प्राप्त करें ।

1. आदि ग्रन्थ का परिचय
2. मध्यकालीन संगीत परम्परा 12वीं से 16वीं शताब्दी तक
3. पूर्व नानक काल 1000 – 1469
4. नानक काल – 1470 – 1708
5. आदि ग्रन्थ का संकलन – 1603 – 1604

इन दिनों इसका आकार छोटा था । सन् 1707 ई0 में श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी द्वारा, "श्री गुरु ग्रन्थ साहिब" को पुनः आकार दिया गया । अब इसमें 1430 पृष्ठ हैं । इसमें कुल 31 रागों में बाणियां गई जाती हैं । इसमें छः गुरूओं की बाणियों है और 15 भक्तों की बाणियां हैं ।

आकाशवाणी जालंधर से प्रत्येक रविवार को एक साप्ताहिक कार्यक्रम रात्रि 10बजे से लेकर 10.30 बजे तक प्रसारित किया जाता है । इस कार्यक्रम का नाम है – "निर्धारित रागों में शब्द गायन" । इस नाम से भी यही बोध होता है कि आदि ग्रन्थ के सम्पादक सिखों के पांचवें गुरु श्री गुरु अर्जुन देव जी ने आदि ग्रन्थ की दो विषय सूचियों में से एक विषय सूची रागों के अनुसार निर्मित की । यह प्रथम सूची है । आदि ग्रन्थ की समस्त वाणी को 31 रागों में वर्गीकृत किया गया है। इसका अर्थ यह हुआ कि रेडियो वाले भी कीर्तनकारों की भांति यह सिद्ध करना चाहते हैं कि उदाहरणस्वरूप पंचम गुरू का एक शब्द है "राखा एक हमारा स्वामी" । यह शब्द राग भैरव के अंतरगत लिखा गया है , किन्तु पंचम गुरू जी तो सोलहवीं तथा सतरहवीं शताब्दी में हुए । उस समय भैरव के स्वर क्या थे ? यह विदित नहीं है क्योंकि आदि ग्रन्थ में रागों के स्वर नहीं दिए हुए हैं ? ऐसी कोई पुस्तक भी उपलब्ध नहीं जिसमें गुरूओं ने अथवा उनके समकालीन सिखों ने रागों के स्वर लिखे हों, इसलिए यह कहना तो सर्वथा अनुचित होगा कि आज के राग भैरव में गाया गया शब्द पंचम गुरू के भैरव राग वाले शब्द जैसा है । रेडियो वाले इस कथन को यूं भी प्रमाणित नहीं कर पाते की कीर्त भाट का एक शब्द है "कीर्त प्रभ की गावौं मोरि रसना" आदि ग्रन्थ में यह शब्द राग कान्हड़ा के अन्तरगत अंकित किया हुआ है । एक मत है कि कान्हड़ा के प्रकारों में यह कान्हड़ा

राग स्वतन्त्र रूप में गया जाता था। इसी को 'शुद्ध कान्हड़ा' भी कहते थे । दूसरा मत यह है कि 'कान्हड़ा' और 'शुद्ध कान्हड़ा' दो राग थे । आज यह कहा जाता है कि 'नायकी कान्हड़ा' राग ही 'कान्हड़ा' अथवा 'शुद्ध कान्हड़ा' राग है । रेडियो वाले कभी तो इस शब्द को 'गा' कोमल 'नि' कोमल, 'ध' वर्जित स्वरों के साथ प्रस्तुत करवाते हें। कभी "गा' कोमल नि दोनों , ध वर्जित स्वर रखते हैं । कभी नायकी राग में गवाते हैं और कभी दरबारी कान्हड़ा में निबद्ध करवाते हैं । इसका अर्थ तो यह हुआ कि रेडियो वाले तो स्वयं ही रागियों पर निर्भर करते हैं और रागी निर्धारित रागों का ऐतिहासिक प्रमाणों के साथ निर्धारण नहीं कर पाते ।

आधुनिक कीर्तनकार रागों के वह रूप नहीं गाते जो भारत के संगीत के इतिहास के मध्यकाल में नौवीं शताब्दी मे कुमारलभट्ट और शंकर आचार्य से आरम्भ होने वाली भक्ति लहर से लेकर अट्ठारहवीं शताब्दी तक सिख धर्म के दसवें व अन्तिम गुरू श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी तक भक्त, कवि, सनत, संगीतज्ञों ने गाए । तो भी यह प्रश्न हल होने को बाकी रह जाता है कि भक्ति आन्दोलन के नायकों नें रागों के कौन से रूप गाए ?

भक्ति का मार्ग प्रशस्त करने के लिए तथा मुक्ति और मोक्ष का द्वारा खोल कर परमात्मा में विलीन हो जाने के लिए ही गुरूओं ने गद्य की अपेक्षा पद्य में वाणी की रचना की। इसे गायन संगीत द्वारा सजाया तथा वादन–संगीत द्वारा प्रभावशाली बनाया।

डॉ0 हरिदयाल ने अपनी पुस्तक "हिन्टस फॉर सैल्फ कल्चर" में लिखा है "कि संगीत एक अद्‌भुत कला है, अगर सारी दुनिया के लोग संगीत सीख लें तो विश्व में शान्ति सम्भव है।" क्या प्रत्येक देश के संगीतकार मिलकर अपने देश को "अमन और शान्ति" का संगीतात्मक सन्देश नहीं दे सकते ? क्या बड़ी–बड़ी संगीत सभाओं में बड़ी–बड़ी रकमें ऐंठ कर कला प्रदर्शन करना ही जीवन का लक्ष्य है ? क्या सभी संगीतकार मिलकर लोगों को संगीत की शान्तिमयी धारा में बहाकर यह परमाणु शक्तियां, आक्रमण तथा अनुशासन के नग्न नृत्य का विरोध नहीं कर सकते ? अगर कलाकार का समाज, देश, विश्व, समस्त मानवता धर्म तथा जीवन के प्रति कोई लगाव, स्नेह तथा सहयोग ही नहीं तो फिर "कलाकार और कला" का अस्तित्व ही क्या है ? एक कलाकार वर्ग ही तो है जो सभ्यता और संस्कृति को कुछ देता है । कौन नहीं

जानता कि कबीर, सूरदास, मीराबाई, तुलसीदास, तथा गुरू नानक इत्यादि संत संगीतकारों ने भारतवर्ष को अंधविश्वास की नींद से जागृत नहीं किया ? जनता को आध्यात्मिक पृष्ठभूमि पर लाकर उत्साह नहीं दिया । आज के युग में इन बहुमुखी प्रतिभाओं के मूल्यांकन तथा अनुकरण की आवश्यकता है ।

पादटिप्पणियां

1. डा0 गुरनाम सिंह, गुरमति संगीत अंक, पृ0 – 91
2. वही , पृ0 92
3. श्रीमति शान्ति गोवर्धन , संगीत दर्पण, भाग दो, पृ0 – 17
4. डा0 गुरनाम सिंह, गुरमति संगीत अंक, पृ0 – 21
5. जितेन्द्र सिंह खन्ना, मध्यकालीन धर्मों में शास्त्रीय संगीत का तुलनात्मक अध्ययन, पृ0 9 – 10
6. गुरू नानक संगीतज्ञ, डॉ0 डी0 एस0 नरुला, पृ0 – 8



गुरमति संगीत

श्री गुरू ग्रन्थ साहिब के सभी शब्द संगीत शास्त्र द्वारा निर्देशित रागों में निबद्ध हैं । इन रागों की संख्या 31 है ।

इस लोक में कोई भी विश्वास ऐसा नहीं जिसकी जानकारी शब्द के बिना सम्भव हो सके। शब्द से ज्ञान मिलता है। सबि चीज़ों का ज्ञान शब्द से ही होता है । यह सारा जगत नाद के अधीन है। आहत और अनाहत रूप में यह नाद मुनष्य देह में प्रकाशित होता है।

संगीत का प्रधान अंग ध्वनि या स्वर है, दूसरे शब्दों में शब्द और लय है । कंठ संगीत साहित्य की ही नींव पर खड़ा रहता है । संगीत में स्थायित्व उत्पन्न करने के लिए काव्य का सहारा लेना ही पड़ता है ।

गुरमति संगीत शबद कीर्तन परम्परा है जिसका मुख्य लक्ष्य शब्द का प्रकाश है – "गुरू ग्रन्थ साहिब" में प्रयुक्त सारी वाणी को विभिन्न रागों, राग प्रकारों और गायन तथा काव्य रूप के अनुसार वर्गीकृत किया गया है ।

गुरमति संगीत शब्द प्रधान है न कि राग गायन का कलात्मक पक्ष । गुरू साहिबान ने 'शब्द' को आम लोगों तक पहुंचाने के लिए संगीत को माध्यम के रूप में अपनाया है । शब्द की प्रस्तुति के लिए जिस विधान को अपनाया उस सारे प्रबन्ध को "गुरमति संगीत प्रबन्ध" कहा जाता है ।

शब्द में हर अन्तरे के पश्चात् रहाऊ की पंक्ति के आते ही, श्रोताओं के मन में शब्द के अन्तरनिहित भावों का बोध होने लगता है ।

शब्द को प्रस्तुत करने के लिए अहम् का त्याग, आत्म सर्मपण , और गुरमति का अनुयायी होना आदि नियमों का पालन करना पड़ता है ।

गुरू साहिबान ने वाणी के संचार के लिए एक विधि विधान का भी सृजन किया है जिसमें सर्वप्रथम शब्द को पाठ रूप में ग्रहण करना अत्यन्त जरूरी है ।

श्री गुरू ग्रन्थ साहिब के सभी शब्द संगीत शास्त्र द्वारा निर्देशित रागों में निबद्ध हैं । गुरू जी ने शब्द को ध्वनि, उपदेश, वार्तालाप, नाम तथा धर्म के अर्थों में शब्द पद का प्रयोग किया है ।

गुरू नानक देव जी ने हरि कीर्तन को महा रस अथवा अमृत रस कहा है और शब्द गायन करने से इसी अमृत रस की सृष्टि होती है ।

अमृत एक ही है, वो है 'नाम' इसके अलावा संसार में अन्य कोई अमृत नहीं, जहाँ यह अमृत है, वहाँ कीर्तन इलाही संगीत हो रहा है , वहाँ अनहद नाद अमृत रस बहता है। अमृत अथवा महारस का अर्थ संगीतात्मक आनन्द की ओर संकेत करता है । वास्तविकता भी यही है कि जब कलाकार ईश्वर के गुणमान में इतना संलग्न हो जाता है कि उसे सुध–बुध तक नहीं रहती, ऐसी अवस्था में जो अनुभव होता है उसे "अमृतरस" अथवा "महारस" से तुलना की जा सकती है ।

शब्द गायन करने से इसी 'अमृतरस' (महारस) की सृष्टि होती है ।

गुरू ग्रन्थ साहिब की रचनाओं के शीर्षक पर राग नाम के साथ–साथ ताल के लिए 'घर' का प्रयोग किया गया है । गुरू ग्रन्थ साहिब में प्रयुक्त होने वाले रागों की संख्या 31 है ।

डॉ0 गोबिन्द सिंह मनुसुखानी के अनुसार "गुरू ग्रन्थ साहिब" में संगीत मुख्य दो प्रकार का है –

प्रथम – शास्त्रीय संगीत निश्चित विस्तार तक सीमित ।

द्वितीय – लोक संगीत , स्थानिक परिवर्तनशील धुनों पर आधारित संगीत ।

गुरू नानक साहिब ने सारी "वाणी कीर्तन" के लिए लिखी और स्वयं राग के रू॰ में उच्चारण किया है । तथा गायन द्वारा कीतर्न करके दिखाया है । भक्ति धारा में "नाम" के साथ कीर्तन सबसे बड़ा भक्ति का साधन माना जाता था । सभी वैष्णव संतों और मध्यकालीन भारतीया भक्तों ने कीर्तन को ही प्रभु प्रेम का मुख्य साधन माना है ।

"जपुजी साहिब के अलावा अन्य सभी रचनाएँ संगीत प्रधान मानी जाती हैं । पंक्ति का निर्माण मात्रा, छनदों की गणना आदि पर आधारित नहीं बल्कि संगीतात्मक धुनों के आधार पर हुआ है । संगीत और काव्य दोनों अभिन्न कला रूप हैं । जब काव्य संगीत प्रधान हो जाये अथवा संगीत के साँचे में ढल जाए तो उसका प्रभाव अमिट हो जाता है । ऐसी वाणी सौन्दर्य भाव का सागर बन जाती है और श्रोतागण को परमानन्द की अवस्था तक ले जाती है । गुरुनानक की रचनाओं ने काव्य संगीत के संगम की इसी प्रतिक्रिया को प्रकट किया है ।"

'गुरमति संगीत' शब्द कीर्तन परम्परा है , जिसका बुनियादी लक्ष्य शब्द का प्रकाश है । शब्द ही इसकी केन्द्रीय इकाई है । गुरू ग्रन्थ साहिब की समूची वाणी को विभिन्न रागों (राग प्रकारों और गायन तथा काव्य रूपों) के अनुसार वर्गीकृत किया गया है।

गुरू ग्रन्थ साहिब जैसा कोई ऐसा ग्रन्थ नहीं जिसमें दूसरे धर्मों, जातियों और क्षेत्रों के महापुरुषों की वाणी का संकलन हो । यह भी महान बात है कि हमारे पास यह ग्रन्थ मूल भाषा में उपलब्ध है । इस ग्रन्थ की सबसे बड़ी महानता यह है कि इस ग्रन्थ को श्री गुरू गोबिन्द सिँह जी के बाद 'गुरू' का दर्जा दिया गया और वर्तमान समय में गुरू ग्रन्थ ही सिखों के शब्द गुरू है ।

इस ग्रन्थ को गुरू का दर्जा 1708 ई0 में दिया गया ।

गुरू जी ने शब्द को भिन्न–भिन्न अर्थों में प्रयोग किया है ।

प्रथम – धुनि, आवाज अथवा नाद के अर्थ के लिए है ।

द्वितीय – 'नाम' के अर्थों में प्रयोग किया गया है ।

तृतीय – 'शब्द' पद को अनहत के अर्थों में ।

चतुर्थ – गुरू शिक्षा तथा उपदेश के अर्थों में ।

पंचम – वार्तालाप गोष्टी, चर्चा इत्यादि के अर्थों में ।

षष्ठ – धर्म के अर्थों में शब्द पद का प्रयोग ।

आज कल गुरूजनों के गीतों को शब्दपद कहा जाता है ।

भारत में काव्य (गीतकाव्य) संगीत की परम्परा का इतिहास "सामवेद" की ऋचाओं

से आरम्भ स्वीकार किया गया है । "सामवेद" को "सामानि गायन्ति" कह कर उसके गीतात्मक होने का उल्लेख किया गया है । बाल्मीकि रामायण में भी लव–कुश के द्वारा गाये जाने का उल्लेख मिलता है । आदि कवि बाल्मीकि का महाकाव्य रामायण यदि काव्य न होता तो सम्भव है , यह विराट काव्य ग्रन्थ इतिहास की स्मृति से विलीन हो जाता ।

महाभारत के अनेक स्रोतों को गाए जाने का संकेत मिलता है । छन्दोग्योपनिषद् इत्यादि की स्तुतियों में गीतात्मकता है । श्रीकृशण की 'गीता' तो नाम से ही 'गीता–गाए जाने का संकेत मिलता है । बौद्ध साहित्य की गाथाओं को भी काव्य संगीत के अंतर्गत माना जाता है । जैन धर्म के कवियों ने भी शास्त्रीय संगीत तथा लोक संगीत दोनों का प्रयोग किया है । एक ओर उन्होंने लोकगीतों की प्रचलित देसी तरज़ों में हज़ारों ढाले, स्तवन, सज्झाय इत्यादि रचनाएं की हैं तो दूसरी ओर शास्त्रीय संगीत में भी हजारों पद–भजन बनाए हैं । सातवीं शताब्दी के अंतर्गत जैन धर्म के काव्य ग्रन्थों में हज़ारों पद तथा अनेक राग रागनियों का वर्णन मिलता है ।

मुस्लिम धर्म में कुछ संगीत की उपेक्षा की गई है, परन्तु वह सर्वविदित है कि मुस्लिम बादशाहों, नवाबों, कलाकारों तथा संत फकीरों ने हमेशा संगीत तथा संगीतकार को आदर दिया है और संगीत का प्रयोग अध्यात्मिक तथा मनोरंजन दोनों पक्षों में खुल कर किया है । ईसाई धर्म की भी आज तक की प्रार्थनाएँ काव्य संगीत (गीति काव्य) के रूप ग्रहण किया । जयदेव कृत 'गीत गोविन्द' संस्कृत गीत काव्य का उत्तम उदाहरण है । इन गीतों में रागात्मकता के साथ–साथ शब्दों की मधुरता भी विशेष उल्लेखनीय है । संगीत तत्व की प्रधानता के कारण ही उन्हें उड़ीसा तथा बंगाल के घर–घर में गूंजने का अवसर मिला । इसके पश्चात् भक्ति युग में संत कबीर का विशेष महत्व है, इनके गीतों में भाव की तीव्रता और सरस शैली की प्रधानता है । सूरदास जी कृष्ण भक्ति काव्य संगीत के अग्रण्य कवि तथा संगीतकार माने जाते हैं । सूरदास ने विशेष रूप से गीत परम्परा को आगे बढ़ाया । सूरदास के पश्चात् प्रेम दीवानी मीराबाई ने भी अपनी भावाभिव्यक्ति को गीत काव्य में प्रकट किया, महाकवि तुलसीदास भी काव्य संगीत के रूप में आज हमारे सन्मुख है । यह सभी महान कवि संगीतज्ञ भी थे ।

अहिंसावादी सिक्ख धर्म के संस्थापक श्री गुरू नानक देव जी माने जाते हैं । काव्य संगीत के प्रयोगिक तथा प्रचार क्षेत्र में इनका नाम अग्रण्य है । जिस प्रकार पंजाबी साहित्य का कमबद्ध इतिहास गुरू नानक देव जी से आरम्भ माना जाता है । उसी प्रकार पंजाबी पदगायन का कमबद्ध इतिहास श्री गुरू नानक जी के काव्य संगीत से आरम्भ माना जाता है । आज पंजाब के जन–जीवन के तथा सिक्ख धर्म में काव्य संगीत की परम्परा का क्रमानुसार विकास तथा प्रयोगिक उदाहरण आदि ग्रन्थ की रचनाओं का कीर्तन हे । मध्यकाल में भक्तियुग के काव्य संगीत का (गीति काव्य) 'कोष' अथवा प्रामाणिक ग्रन्थ आदि ग्रन्थ माना जाता है । यह ग्रन्थ गुरूजनों तथा सत्रह (17) भक्त कवियों के गीति काव्य का (काव्य संगीत) का संग्रह है । इसका आदि निर्माण आरम्भ में गुरू नानक देव जी द्वारा हुआ है । आदि ग्रन्थ का सम्पादन तथा वर्गीकरण रागों पर रागात्मक–संगीतात्मक तत्त्वों पर आधारित है । काव्य संगीत की परम्परा के विकास क्षेत्र में इस पावन ग्रन्थ का विशेष महत्व है ।

गुरू ग्रन्थ साहिब में प्राणी के जन्म से लेकर मृत्यु तक हर अवसर के लिए कीर्तन की विशेष रागमय गायन मर्यादा है । इसके बिना भिन्न–भिन्न रागों के राग समयानुसार विभिन्न कीर्त्तन चौकियों की सम्पादना का प्रचलन इस परम्परा की विशेषता है । जिसमें से सवेरे समय आसा की वार की चौकी, आरती की चौकी, कानड़ेया कल्यानु की चौकी आदि प्रमुख हैं । इन कीर्त्तन चौकियों का विशेष अंग और गायन विधान है ।

गुरमति संगीत में विभिन्न रागों के विभिन्न गायन रूपों में लगभग 15000 बन्दिशें सीना–ब–सीना प्रचलित हैं । जिनमें से 10,000 के करीब बन्दिशें स्वरलिपि बद्ध हो चुकी हैं । जिनके 13 संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं । ये बन्दिशें टकसाली कीर्तनकारों, नामधारी कीर्तन परम्परा पुस्तकों एवं कैसटों आदि के रूप में सुरक्षित हैं ।

सिक्ख गुरूओं ने अपने समय अनुसार कीर्तन को राग संगीत में गाया किन्तु कीर्तन को निर्धारित रागों में करने का कोई आदेश जारी नहीं किया ।

पाद–टिप्पणियां

1. लक्ष्मी नारायण गर्ग, गुरमति संगीत अंक, पृ0 64
2. वही, पृ0 67

3. डॉ0 गुरनाम सिंह , गुरमति संगीत अंक (जनवरी–फरवरी), पृ0 71
4. डा0 डी0एस0नरूला, गुरू नानक संगीतज्ञ, पृ0 138 .
5. भाषा विभाग ,पंजाब गुरू नानक शब्द रत्नाकर, पृ0 38
6. डा0 तारन सिंह, गुरू नानक चिन्तन ते कला, पृ0 223
7. डा0 दर्शन सिंह, गुरू नानक जीवन दर्शन ते काव्य कला, पृ0 286
8. लक्ष्मी नारायण गर्ग, गुरमति संगीत अंक, पृ0 18
9. वही , पृ0 22
10. भाषा विभाग ,पंजाब गुरू नानक शब्द रत्नाकर, पृ0 59
11. डा0 डी0एस0नरूला, गुरू नानक संगीतज्ञ, पृ0 129–130
12. जतिन्द्र सिंह खन्ना, मध्यकालीन धर्मों में शास्त्रीय संगीत, पृ0 –90



राग और गुरुवाणी

राग शब्द की उत्पत्ति 'रंग' से हुई है । जिसका अर्थ है – रंग जाना, लाल हो जाना, प्रभावित होना, किसी रस या भाव के आवेश में बह जाना इत्यादि ।

संगीत में रंग का अर्थ है मन का रंग अर्थात् मनोभाव । इन भावों को संगीत कला में विभिन्न स्वर समूहों द्वारा व्यक्त किया जाता है । वस्तुतः किन्हीं क्रमयुक्त स्वरों को राग की संज्ञा दी जाती है । इन रागों में अनेक प्रकार के रंजन प्रदान करने की क्षमता होती है ।

संगीत शास्त्र में राग का दो अर्थों में प्रयोग हुआ है – एक "सामान्य" और दूसरा "विशेष" । सामान्य अर्थ में "राग" रंजकता का वाचक है और विशेष अर्थ में वह एक ऐसे नादमय व्यक्तित्व का परिचायक हे जो "स्वरदेह" और "भावदेह" से समन्वित है । यदि स्वर विधान राग का शरीर है तो भाव उसकी आत्मा है । यही आत्मा राग के देवतामय स्वरूप का विधायक है ।

राग शब्द 'रंज' धातु से बना है, जिसका अर्थ है रंगना, यहाँ रंगने का अर्थ है चित्त को रंगना, चित्त को इतना प्रसन्न कर देना कि उसे ब्रह्मानन्द की प्राप्ति हो जाए। इसलिए कहते हैं कि Music is the shortest way to God. "Heart" शब्द भी अपने आप में, मनुष्य का कला से गूढ़ सम्बन्ध ही दर्शाता है कि "He + art". मनुष्य और "Art" कला इस पूरे अक्षर से "Heart" यानि दिल (मन) बनता है । इसलिए 'राग' सीधा दिल (चित्त) पर ही असर करता है । कहते हैं – "Music is a thing which comes from Heart and goes to heart, it is heart-to-heart relationship." प्राचीन काल से आज तक के यदि हम भारतीय संगीत के इतिहास पर नजर डालते हैं तो यही अनुभव कर पाते हैं कि वेदों का पाठ भी संगीत के साथ होता था। संगीत के द्वारा वैदिक लोग अपने चित्त को एकाग्र करते थे। जब से सृष्टि बनी है तब से ही संगीत की उपस्थिति चली आई है और वह भी चित्त को प्रसन्न करने

के लिए और देवी देवताओं की आराधना करने के लिए। यह मुख्य दो पहलू ही सामने आते हैं।

ध्वनि की उस विशिष्ट रचना को जिसमें स्वर तथा वर्णों के कारण सौंदर्य हो, जो मनुष्य के चित्त का रंचन करे बुद्धिमान लोग उसे राग कहते हैं ।

प्राचीन काल में 'राग' नाम की कोई वस्तु नहीं थी । राग के स्थान पर उस समय 'जाति गायन' हुआ करता था । जातियां वास्तव में "मूल राग" थी । इन जातियों में विकार आने से रागों का जन्म हुआ । जाति के दस लक्षण "अंश, ग्रह, तार, मन्द्र,न्यास, अपन्यास, अल्पत्व, बहुत्व, षाड़व और औडव" बताए गए हैं । यही प्राचीन रागों के लक्षण भी हैं ।

आधुनिक काल में रागों के दस लक्षण इस क्रम से हैं – "ठाठ, आरोह अवरोह, जाति, वादी सम्वादी, पकड़, न्यास के स्वर, पूर्वांग या उत्तरांग की प्रधानता , गायन समय, आविर्भाव तिरोभाव और राग" का रस है ।

श्री गुरू नानकदेव जी सिक्ख धर्म के प्रथम गुरू हैं । इनका जन्म 1469 ई0 में तलवण्डी में हुआ जिसको आजकल ननकाना साहिब कहा जाता है । श्री गुरू नानक देव जी ने धर्म के प्रचार और विकास के लिए शबद और संगीत को संयुक्त और सम्मिलित रूप में प्रयुक्त किया है । श्री गुरू नानक देव जी ने वाणी की प्रस्तुति के लिए भाई मरदाने को अपना संगी बनाया ।

श्री गुरू नानक देव जी जब शबद का गायन करते थे तो भाई मरदाना रबाब द्वारा उनकी संगति करते ।

श्री गुरू नानक देव जी ने संगत–स्रोत श्रेणी के लिए मानसिकता को मुख्य रखकर संचार के निमित्त भिन्न–भिन्न रागों का प्रयोग किया जो इस प्रकार है –

मुख्य राग – श्री, मांझ, गऊड़ी, आसा, गूजरी, देवगन्धारी, बिहागड़ा, बडहंस, सारेठी, घनाश्री, तिलंग, सूही, बिलावल, रामकली, मारु, तुखारी, भैरऊ, बसन्त, सारंग, मल्हार प्रभाती ।

मिश्रित राग – गऊड़ी गुआरेरी, गऊड़ी चेती, गऊड़ी बैरागणि, गऊड़ी दीपकी, गऊड़ी पूरबी दीपकी, गऊड़ी पूरबी, आसा काफी, सूही काफी, मारु काफ़ी, बसन्त

हिण्डोल, प्रभाती विभास ।

दक्षिणी राग – गऊड़ी दक्षिणी, वडहंस दक्षणी, बिलावल दक्षिणी, रामकली दक्षिणी, मारु दक्षिणी, प्रभाती दक्षिणी ।

उपरोक्त रागों से ही पता लग जाता है कि श्री गुरू नानक देव जी ने प्रचलित रागों के अलावा अप्रचलित रागों को भी वाणी के गायनार्थ प्रयोग किया, जिससे श्री गुरू नानक देव जी की संगीत सम्बन्धी सूक्ष्म सूझ का अन्दाजा लगाया जा सकता है । श्री गुरू नानक देव जी ने उक्त रागों के अधीन अष्टपदी , पद, छंद, वार गायन शैलियों का प्रयोग किया ।

गुरू नानक देव जी ने संगीत के विकास के लिए करतारपुर साहिब (जो आजकल पाकिस्तान में है) को कीर्तन–केन्द्र बनाया ।

श्री गुरू नानक देव जी की दूसरी गद्दी ज्योति श्री गुरू अंगद देव जी का जन्म 31 मार्च, 1504 ई0 को गाँव मते की सरां में हुआ ।

श्री गुरू अंगददेव जी ने श्री गुरू नानक देव जी द्वारा चलाई कीर्तन परम्परा का अनुकरण ही नहीं किया बल्कि खुद भी वाणी की रचना की । आपकी वाणी श्लोकों के रूप में श्री, मांझ, आसा, सोरठि, सूही, रामकली, मारु, सारंग, मल्हार रागों में "श्री गुरू ग्रन्थ साहिब" में अंकित हैं ।

सिक्खों की तीसरे गुरू श्री अमरदास जी का जन्म 4 मई 1479 ई0 को बासरके नामक गांव में हुआ । श्री गुरु अमरदास जी ने अपनी वृद्धावस्था में वाणी की रचना की जो आपका गुरमति संगीत के प्रति उल्लेखनीय योगदान है । आपकी वाणी श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में श्री, माँझ, गऊड़ी, गुआरेरी, गऊड़ी वैरागणि, गऊड़ी पूर्वी आसा, आसा काफ़ी, गूजरी, बडहंस, सोरठी, धनाश्री, सूही, बिलावल, रामकली, मारु, भैरव, बसन्त, बसन्त हिण्डोल, सारंग, मल्हार, प्रभाती, विभास, रागों में अंकित है ।

श्री गुरू अमरदास जी ने श्रृंगार रस की वाणी के लिए सूही राग का प्रयोग किया । मौसमों के चित्रण के लिए बसन्त और मल्हार जैसे रागों का इस्तेमाल किया है । जिससे स्पष्ट है कि आप गुरवाणी की रचना और संगीत के सुमेल की सूक्ष्म सूझ रखते थे । श्री गुरू अमरदास जी ने उपरोक्त रागों के अधीन पद, अष्टपदी, छंद, सोहले, वारगायन, शैलियों के अन्तर्गत वाणी का गायन किया । रामकली राग में "अनंद

साहिब" की रचना महान रचना है , जो सिक्ख धर्म में नितनेम की वाणियों में से एक है और प्रत्येक समागम के अंत में इसके गायन करने की प्रथा है । श्री गुरू अमरदास जी ने गुरवाणी कीर्तन का तीसरा केन्द्र "गोइंदवाल साहिब" में बसाया ।

गुरू नानक गद्दी के चौथे वारिस श्री गुरू रामदास जी का जन्म 1534 ई0 को चूना मंडी लाहौर में हुआ ।

आपकी वाणी श्री, मांझ, गऊड़ी, गऊड़ी मांझ, आसा, आसाकाफी, आसावरी, गूजरी, देवगन्धारी, बिहागड़ा, बडहंस सोरठी, धनाश्री,जैनश्री, टोड़ी, बैराड़ी, तिलंग, सूही,बिलावल, रामकली, नटनारायण, नट, गौड़मल्हार, मारु, दरबारी, केदार, भैरऊ, बसन्त, सारंग, मल्हार, कान्हड़ा, कलियान, कलियान भूपाली, प्रभाती, प्रभाती विभास रागों में "श्री गुरू ग्रन्थ साहिब" में दर्ज है ।

श्री गुरू रामदास जी की वाणी सनातनी और लोक काव्यरूपों की धारिणी है। जो अपना–अपना गायन रूप रखते हैं । श्री गुरू रामदास जी ने वाणी की रचना के लिए जहाँ शास्त्रीय संगीत की शैलियों, पदों, अष्टपदियों का प्रयोग किया वहाँ घोड़ियां, छंद, वार, लोक काव्य रूपों, लोक गायन शैलियों का भी प्रयोग किया। श्री गुरू रामदास जी ने भारतीय संगीत में 'पड़ताल ' नामक शास्त्रीय शैली जो ताल पर आधारित है को जन्म दिया । भारतीय संगीत में पड़ताल गायन शैली का प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता, पड़ताल गायन शैली गायन के अनुसार शब्द की स्थाई की तुक में एक ही ताल का प्रयोग किया जाता है और अलग–अलग अन्तरों में अलग–अलग तालों के प्रयोग के वावजूद राग एक ही रहता है । श्री गुरू रामदास जी की 7 रागों के अधीन, 19 पड़तालां श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में दर्ज हैं । लोक काव्य रूप छन्द श्री गुरू रामदास जी की वाणी में विशिष्ट उत्तमता का धारिणी है, जिनका बाद में "आसा की वार" में गायन किया जाने लगा ।

श्री गुरू रामदास जी ने गुरवाणी संगीत का व्यावहारिक रूप में प्रचार करने के लिए 'रामदास जी पुरा' या 'चक गुरू' की नींव रखी, जिसको बाद में अमृतसर कहा जाने लगा । यह महान् कीर्तन केंद्र "श्री हरिमंदर साहिब– और दरबार साहिब के नाम से भी प्रसिद्ध है । गुरमति संगीत में चौकियों के अनुसार कीर्तन करने की परम्परा "श्री हरिमंदर साहिब" में ही शुरू हुई थी । गुरमति संगीत में चौकी चार सिक्खें के जत्थे

को कहा जाता है । गुरवाणी कीर्तन में आसा की वार की चौकी, विलावल की चौकी, सोदर की चौकी, आरती की चौकी, ये चार चौकियां प्रचलित हैं । इन चौकियों के अर्न्तगत अलंग–अलग समय में सम्बन्धित रागों में कीर्तन किया जाता है । "श्री हरिमन्दिर साहिब" के अन्दर चौकियों के अनुसार गुरवाणी कीर्तन की निरन्तर ध्वनियां आज भी उसी तरह ही चल रही हैं । गुरू रामदास जी के दरबार में सत्ता और बलवंड प्रसिद्ध रबाबी कीर्तनकार सुबह शाम कीर्त्तन करते थे ।

सिक्ख लहर के पांचवें गुरू अर्जुन देव जी का जन्म 15 अप्रैल 1563 ई0 को गोइंदवाल में हुआ । आप सिक्खों के चौथे गुरू श्री रामदास जी के सुपुत्र थे । श्री अर्जुनदेव जी बचपन से ही असाधारण प्रतिभा के मालिक और गम्भीर विचारों के धारिणी थे । श्री गुरू अर्जुनदेव जी ने श्री, मांझ, गऊड़ी, गुआरेरी, गऊड़ी, चेती, गौड़ी बैरागिणी, गौड़ी पूर्वी, गऊड़ी मांझ, गऊड़ी मालवा, गऊडी माला, आसा, आसा काफी, आसावरी, गूजरी, देवगन्धारी, देवगन्धार, बिहागड़ा, सोरठी, बडहंस, धनाश्री, जैतश्री, टोड़ी, बैराड़ी, तिलंग, सूही, बिलावल, गौड़, रामकली, नटनारायण, नट, माली गऊड़ा, मारु, दरबारी, तुखारी, केदार, भैरव, वसन्त, सारंग,मल्हार, कान्हड़ा,कल्याण, प्रभाती, प्रभातीविभास, रागों में वाणी का उच्चारण किया , जो श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में दर्ज है । श्री गुरू अर्जुन देव जी ने समस्त गुरू साहिबान से ज्यादा वाणी की रचना की, वाणी के गायन के लिए सबसे ज्यादा राग और गायन शैलियों का प्रयोग किया । आपने वाणी के लिए छंद, वार, सोलहे,अंजुलियाँ लोक काव्य रूपों के अलावा पद, अष्टपदी, जैसे सनातनी रूपों का भी प्रयोग किया । आपने पड़ताल गायन शैली का भी खूब प्रचार किया । आपकी 36 पड़तालें भी गुरू ग्रन्थ साहिब में दर्ज हैं ।

वर्तमान समय के गुरू ग्रन्थ साहिब का सम्पादन श्री गुरू अर्जुनदेव जी की महान देन है। गुरू ग्रन्थ् साहिब के सम्पादन का आधार रागात्मक है जो विश्व के धार्मिक ग्रन्थों में विलक्षणता का धारिणी है ।

गुरू अर्जुनदेव जी के समय में किसी कारण भाई सत्ता और बलवंड गुरू साहिब से नाराज़ हो गए । इससे श्री गुरू अर्जुनदेव जी ने साधारण सिक्ख संगत को कीर्तन करने का आदेश दिया । श्री गुरू अर्जुन देव जी ने स्वयं भी कीर्तन क़रने में उत्साह दिखाया, जिससे साधारण सिक्ख संगत का कीर्तन की तरफ रूझान हुआ । इससे

अशिक्षित साधारण सिक्ख संगत ने लोक संगीत के तौर पर गुरूवाणी का गायन शुरू किया।

इस तरह गुरू अर्जुनदेव जी के समय गुरवाणी कीर्तन में क्रियात्मक तौर पर रागी, रबाबी, कसबी लोग यानि शिक्षित लोग और अशिक्षित साधारण सिक्ख संगत का दो वर्गों में प्रवेश हुआ । गुरवाणी कीर्तन की (शास्त्रीय + लोक संगीत) दोनों परम्पराएं उस समय से लेकर अब तक उसी तरह चली आ रही हैं ।

श्री गुरूनानक देव जी की छटी ज्योति श्री गुरू हरिगोबिन्द जी, गुरू अर्जुनदेव जी के सुपुत्र थे । आपने जुल्म का विरोध करने के लिए सिक्ख धर्म में वीरता का प्रवेश कराया । श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में अंकित नौ वारों पर धुनों के शीर्षक लिखे । श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में अंकित धुनों के शीर्षकों के अनुसार वारां का गायन गुरू हरिगोबिन्द साहिब के समय किया जाता था । वीर रस प्रदान करने के लिए, सारंगी साज़ का गुरू दरबार में प्रवेश हुआ । आपको 'ताऊस' साज़ का निर्माताा माना जाता है ।

श्री गुरू हरिराय जी – श्री गुरू हरकिशन जी परिस्थिति अनुकूल न होने के कारण वाणी की रचना नहीं कर सके, लेकिन इन्होंने गुरू नानक देव जी द्वारा चलाई गई कीर्तन की रीति को बहुत प्यार और सत्कार से कायम रखा ।

श्री गुरू तेग बहादुर जी श्री गुरू हरिगोबिन्द जी के सुपुत्र थे । आप सिक्खों के नौवें गुरू बनकर गुरू गद्दी पर विराजमान हुए । गुरू तेग बहादुर जी ने गुरमति सगीत की प्रथा को और भी मजबूत किया । आपने गऊड़ी, आसा, देवगन्धार, बिहागड़ा सोरठि, धनासिरी, जैतसिरी, तिलंग, काफी तिलंग, बिलावल, रामकली मारु, बसन्त, बसन्त हिण्डोल, सारंग, और जयजयवन्ती रागों में वाणी का उच्चारण किया । श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में राग जयजयवन्ती में श्री गुरू तेगबहादुर की रचना उपलब्ध है । श्री गुरू तेगबहादुर ने उपरोक्त विभिन्न रागों में पद, अष्टपदी, आदि गायन शैलियों का प्रयोग किया । आपने श्री आनन्दपुर साहिब मैं रह कर गुरूवाणी का सन्देश संगीत के द्वारा दूर–दूर तक पहुंचाया ।

श्री गुरू गोबिन्दसिंह का जन्म 26 दिसम्बर 1666 ई0 को पटना में हुआ । आप श्री गुरू तेगबहादुर जी के सुपुत्र थे । गुरू गोबिन्दसिंह जी की वाणी रचना का संग्रह दशम् ग्रन्थ है। सिख धर्म में आदि ग्रन्थ 'श्री गुरु ग्रन्थ साहिब' के बाद दूसरा विस्तृत

ग्रन्थ "दशम् ग्रन्थ" है । परन्तु श्री ग्रन्थ साहिब की प्रमाणिकता जितनी पुष्ट है , दशम् ग्रन्थ की प्रामाणिकता उतनी ही सन्देहास्पद है । उन्होंने सिखों को सिंह शब्द से अलंकृत कर विलक्षण व्यक्तित्व का मालिक बनाया ।

"श्री दशम् ग्रन्थ " के वर्तमान रूप में निम्नलिखित वाणी क्रमवार संगृहीत है :–

1. जापु साहिब, 2. अकाल उस्तति, 3. बचित्र नाटक, 4. चडी चरित्र, 5. वार श्री भगऊती जी की, 6. गायन प्रबोध, 7. चौबीस अवतार, 8. ब्रह्मा अवतार, 9. रूद्रावतार, 10. शब्द हजारे, 11. सवैये, 12. खालसामहिमा, 13. शास्त्र नाममाला, 14. चरित्रों पाखिआन, 15. जफरनामा ।

आप संगीत के ज्ञाता थे, आपने सांगीतिक शब्दों को अकाल पुरख की महिमा के लिए सुन्दर ढंग से प्रयोग किया है । उदाहरण के तौर पर वाणी जापु साहिब की कुछ तुकें इस प्रकार हैं –

नमो गीत गीते । नमों तान ताने ।।
नमो नरित निरतै ।। नमो नाद नादे ।।
नमो पान पाने ।। नमो बाद बादे ।।

पादटिप्पणियां

1. डा0 गुरनाम सिंह व डॉ0 हरजस कौर, गुरमति संगीत अक (जनवरी फरवरी –1997), पृ0 49–55
2. श्री महेश , संगीत निबन्ध संग्रह, पृ0 134
3. लक्ष्मी नारायण गर्ग, संगीत विशारद, पृ0 188
4. भाई जोध सिंह, श्री करतारपुर भीड़ के दर्शन, पृ0 72
5. स्मृति ग्रन्थ, अदूति गुरमति संगीत सम्मेलन, 1991, पृ0 89
6. ए0एस0 गोयल, सिक्ख धर्म और संगीत, पृ0 76
7. आदि ग्रन्थ, पृ0 1390



राग वर्गीकरण

भारतवर्ष में संगीत एवं संगीत शास्त्र द्वारा नियमित रागों की परम्परा अति प्राचीन है। निःसन्देह समय–समय पर नए रागों और रागिनियों का समावेश होता रहा है। किन्तु किसी भी युग अथवा ग्रन्थ में प्रचलित अथवा प्रयुक्त रागों का अध्ययन व्यापक परम्परा के परिप्रेक्ष्य में ही किया जा सकता है। वस्तुतः परम्परा में इतिहास के साथ–साथ नवीन प्रयोगों का अध्ययन स्वतः सम्मिलित हो जाता है। जब भी हम 'संगीत' की बात करते हें तो सर्वप्रथम उसकी उत्पत्ति की बात करेंगे तो जब से सृष्टि की उत्पत्ति हुई है तब से ही संगीत की भी उत्पत्ति हुई है।

"शब्दम् गुणकम् आकाशम्" अर्थात् आकाश का गुण 'शब्द' है। संगीत की उत्पत्ति ही ध्वनि से होती है। ध्वनि जब संगीतक हो जाती है तो नाद कहलाती है ।

नाद से श्रुति, श्रुति से स्वर, स्वर से सप्तक और सप्तक से राग की उत्पत्ति सम्भव होती है और इसी स्वर सप्तक के अथाह सागर से असंख्य रागों की उत्पत्ति हुई है और हो रही है । पण्डित व्यंकटमखी ने चतुरदण्डी प्रकाशिका ग्रन्थ में गणित के आधार पर एक स्वर सप्तक से 34848 रागों की उत्पत्ति का परिचय दिया है और यदि इन रागों के वादी सम्वादी स्वर बदलते जाएं तो यह संख्या असंख्या का रूप धारण कर सकती है । इसीलिए इन असंख्य रागों के वर्गीकरण की समस्या प्राचीन काल से ही चली आ रही है । रागों के इतिहास को देखते हुए यह मानना पड़ेगा कि इतिहास के विभिन्न युगों में सभी राग प्रचलित नहीं रहे। रागों का प्रचलन जनरुचि अनुसार सदैव बदलता रहा है । किसी युग में रागों का एक क्रम प्रचलित था तो दूसरे युग में दूसरा क्रम प्रचलित हो गया । कभी रागों का वर्गीकरण गीतियों के आधार पर किया गया अैर कभी लिंग के आधार पर स्त्रीराग, पुरुष राग आदि की शरण ली गई, कभी प्रातः, दोपहर और सायंकाल में गाए जाने वाले रागों की अलग–अलग श्रेणियाँ बनाई गई और कभी 'ग्राम–राग' और 'देशी–राग' के नाम से विभाजित किया गया । कभी शुद्ध,

छायालग और सकीर्ण वर्गीकरण से रागों को विभाजित किया गया । कभी मार्गी और देशी दो वर्गों में विभाजित किया गया ।

प्रत्येक वस्तु के परिवर्तन में कुछ न कुछ कारण आवश्य आ जाता है । वह कारण चाहे, समय, परिस्थिति अथवा मनुष्य हो। इसी कारण संगीत में अनेक परिवर्तन आए हैं और आधुनिक संगीत इसी कारण प्राचीन संगीत के साथ बिलकुल नहीं मिलता। संगीत जिन–जिन अवस्थाओं को पार करता आया है वे सब इस प्रकार है –

1. प्राचीन काल,
2. मध्य काल ,
3. आधुनिक काल

प्राचीन काल की सबसे प्रथम कृति जो हमें प्राप्य है। वह भरत का "नाट्यशास्त्र" है। इस ग्रन्थ का समय है तीसरी से पांचवी शताब्दी तक। यह सारा ग्रन्थ नाट्य पर आधारित है और इसमें संगीत का तत्व नाट्य के एक अंग की तरह आ जाता है।

इस ग्रन्थ के 28 से लेकर 33 तक के छः अध्याय सीधा संगीत से सम्बन्ध रखते हैं। उस समय राग गायन की जगह पर जाति गायन प्रचलित था।

आठवीं शताब्दी में मतंग के 'बृहद्देशी' ग्रन्थ में हमें राग का विस्तृत रूप से वर्णन मिलता है। जो इस बात का स्पष्ट रूप से प्रमाण है कि उस समय राग–गायन का अच्छा प्रचार हो चुका था। मतंग ने अपने रागों को दो भागों में बांटा है।

1. ग्राम राग,
2. भाषा अथवा देशी राग।

इसके अतिरिक्त उसके ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि उस समय निम्नलिखित गीतियां प्रचलित थीं :–

1. शुद्धा, 2. भिन्ना, 3. गौड़ी , 4. राग, 5. साधारिणी, 6. भाषा, 7. विभाषा ।

उपरोक्त सात गीतियों में प्रथम पांच को 'ग्राम राग' के अन्तर्गत तथा बाकी दो (भाषा, विभाषा) को देशी रागों के अन्तर्गत रखा।

मतंग के पश्चात् 13वपीं शताब्दी में हमें शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर ग्रन्थ की

प्राप्ति होती है। जो उतरी और दक्षिणी दोनों संगीत पद्धतियों का आधार ग्रन्थ माना जाता है। इस ग्रन्थ में पण्डित शारंगदेव ने अपने ग्राम रागों का मतंग के समान गीतियों के अर्न्तगत वर्गीकरण किया। परन्तु जहाँ मतंग ने देशी रागों में भाषा, विभाषा को ग्रहण किया है वहाँ देशी राग के अर्न्तगत शारंगदेव ने रागांग , भाषांग, क्रियांग, तथा उपांग आदि को रखा है। पं0 शारंगदेव के साथ ही प्राचीन काल की समाप्ति हो जाती है और उनके साथ ही जाति गायन तथा ग्राम राग का अन्तिम काल आ गया।

मध्यकाल में राग–रागिनी वर्गीकरण प्रचार में आया। रागों की वंश परम्पराएँ मानी गई । राग रागिणी वर्गीकरण पद्धति में मुख्य 6 राग माने जाते थे तथा फिर उनके आगे प्रत्येक की छः–छः रागिणियां, आठ–आठ पुत्र तथा पुत्र वधुएं थीं। इस प्रकार उस समय रागों का वर्गीकरण एक परिवार की तरह किया गया है। उस समय जो छः मुख्य राग प्रचलित थे वह इस प्रकार हैं –

1. हिंडोल, 2. मेघ, 3. दीपक, 4. श्री, 5. मालकौंस, 6. भैरव।

इस राग रागिणी पद्धति को मानने वाले मुख्य चार मत प्रचार में थे :–

1. भरत मत, 2. हनुमान मत, 3. कल्लिनाथ मत, 4. शिवमतं।

इसके पश्चात् 1813 ई0 में पटना के मुहम्मद रज़ा ने "नगमाते आसफी" पुस्तक में राग–रागिणी वर्गीकरण को गलत ठहराते हुए एक नवीन पद्धति को जन्म दिया। जो कि थोड़े ही समय में नष्ट हो गई।

आधुनिक काल में अनेक प्रकार से राग वर्गीकरण किया जाने लगा । मेल पद्धति यद्यपि मध्यकाल में ही विकसित हो चुकी थी परन्तु उसको आधुनिक रूप देने का पूर्ण श्रेय भातखण्डे जी को है । उन्होंने इसे थाट पद्धति का नाम दिया और इसमें दस मुख्य रागों को मानकर अन्य रागों को उसके अधीन माना और इन दस मुख्य रागों को थाट का नाम दे दिया वे इस प्रकार हैं –

यमन विलावल और खमाजी
आसा भैरवी तोडी बखाने
भैरव मारवा पूर्वी
दशमित थाट चत्तुर गुण माने ।।

इनके नामों में जनक जन्य सिद्धांत को अपनाया गया है। अर्थात् थाटों से उत्पन्न प्रसिद्ध रागों के नाम पर उनका नाम रखा गया है। इसके पश्चात् श्री मोरेश्वर खरे ने रागांग पद्धति को अपनाया। उन्होंने मुख्य रागांगो की संख्या तीस (30) मानी है।

इस प्रकार से राग वर्गीकरण की परम्परा प्राचीन काल से आधुनिक काल तक का सफर तय करती हुई अन्त में आधुनिक काल में दस थाटों की पद्धति की परम्परा सबसे अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हुई ।

मध्यकाल में गुरू नानक देव जी ने अपने संगीतमय पदों से पंजाब प्रान्त को जगा दिया। पंजाब में उन्होंने संगीत में एक नई ताजगी व चेतना जाग्रत की गुरू नानक और उनके शिष्यों ने भारतीय संगीत का प्रचार–प्रसार पंजाब में खूब किया। देश की डांवा–डोल परिस्थितियों ने, पंजाबी संगीत पर जो अज्ञान का पर्दा डाल दिया था, उसे गुरूदेव जी ने बड़ी कुशलता से ऊपर उठा दिया।

गुरमति संगीत में राग का प्रयोग एवं प्रसार अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस परम्परा में प्रयोग किए गये रागों की गिनती की संख्या भारतीय संगीत की तुलना में ध्यान की मांग करती है।

इस परम्परा में प्रयुक्त राग शुद्ध, छायालग, और संकीर्ण प्रकृति के राग हैं। जो मध्यकालीन राग रागिणी पद्धति के झमेलों से मुक्त राग, उपराग, वर्गीकरण के धारिणी है। गुरू साहब ने, कहीं भी रागिनी शब्द का प्रयोग नहीं किया। जिसको अब 20वीं शताब्दी में संगीत विद्वान् मान्यता दे रहे हैं। गुरमति संगीत में प्रयोग किए गए। यह राग अपने स्वरूप के कारण पुरातन पर कठिन है। पर जिस सुखेनता के साथ इनका गायन गुरमति संगीत में उपलब्ध है, उतना ही उत्साहजनक और गौरवश है । जैसे राग गऊड़ी मांझ जिसमें 12 स्वर प्रयोग होते हैं। पर इसका गायन बड़ी आसानी से किया जाता है।

इन रागों के स्वरूपों सम्बन्धी एक ओर ध्यान योग्य और हमारे व्यवहार के अनुसार है कि 18वीं शताब्दी में हुए थाट परिवर्तन के उपरान्त भारतीय संगीत के प्रचलित रागों के स्वरूपों से अनभिज्ञ। गुरमति संगीत के कीर्तनकार पुरातन रीति के अनुसार कीर्त्तन करते आ रहे हैं। इसलिए इन पुरातन रीतियों में पुरातन रागों के स्वरूपों को पहचाना और खोजा जा सकता है।

क) धन्न सु राग सुरंगड़े अलापत सम तिख जाई

(वार रामकली,महला 5, आदि ग्रन्थ 958)

ख) समनां रागां विच सु भला भाई जितु बसिआ मन आई ।

(श्लोक, महला 1, आदि ग्रन्थ पृ0 1423)

कई बार भारतीय संगीत के विद्यार्थी इन राग स्वरूपों से भी अचंभित होते हैं पर भारतीय संगीत के इस विशाल राग खज़ाने की खोज और पहचान होनी जरूरी है जो गुरमति संगीत सम्बन्धी सारे यत्नों का विशेष हिस्सा है। 'गुरमति संगीत' में इन रागों को सुरंगड़े, भले ते समगुण वाले कहा है। अगर इनके द्वारा उस परमात्मा का नाम मन में बस जाए, तथा तृष्णाएँ मिट जाएं तो प्राणी मन, वचन कर्म, द्वारा सतगुणों का धारिणी हो जाए। राग सम्बन्धी इस विचार से गुरमति संगीत में इसका मौलिक और विलक्षण प्रयोग प्रत्यक्ष हैं पर इस राग परम्परा से सम्बन्धित स्वतन्त्र खोज और भी महत्वपूर्ण परिणामों की उपलब्धि करवा सकती है।

पाद–टिप्पणियां

1. शान्ति गोवर्धन, संगीत दर्पण, भाग – दो, पृ0 126
2. डॉ0 पन्ना लाल मदान, संगीत शास्त्र विज्ञान, पृ0 45
3. शान्ति गोवर्धन, संगीत दर्पण, भाग – दो, पृ0 72
4. संगीत विशारद वसनत, पृ0 22
5. वही, पृ0 25
6. हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव, राग परिचय, भाग तीन, पृ0 168
7. हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव, प्रवीन प्रश्न पंजिका , पृ0 114



गुरू ग्रन्थ साहिब

गुरू ग्रन्थ साहिब मध्यकालीन युग की ऐसी धार्मिक पुस्तक है, जिकसी केवल धार्मिक महानता ही नहीं बल्कि और अनेक दृष्टियों से महानता है। उसी के कारण, हर क्षेत्र के जिज्ञासुओं ने इसके आन्तरिक सौन्दर्य के पक्षों को अलग–अलग तरीके से समझने समझाने की कोशिश की है। इस ग्रन्थ की महानता का अदाजा इस बात से ही लगाया जा सकता है कि इस दौर सम्बन्धी कोई भी इतिहासिक, सभ्याचारक, धार्मिक, राजनीतिक, भाषाई या साहित्यिक दस्तावेज़ तैयार करने के लिए इस ग्रन्थ को आधार सामग्री बनाना अति आवश्यक है। इसके सम्पादक गुरू अर्जुनदेव जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि –

"जो को खौवे जे को पुन्चै, तिस का होए उधारो ।"

अर्थात् जो कोई भी इस ग्रन्थ के अन्दर की बाणी के ऊपर विचार करेगा और विचार करके जीवन में अपनाएगा उसका जीवन सफल होगा।

गुरू नानक देव जी ने संगीत का प्रयोग पूर्व प्रचलित भक्ति संगीत की परम्परा के अंतर्गत ही किया है जैसे भक्त सूरदास, कबीर तथा तुलसीदास ने किया है। संगीत कला का विकास भी भक्ति संगीत के द्वारा ही हुआ है। वैदिक काल का संगीत इस बात का इतिहासिक प्रमाण है कि उस काल में संगीत का उद्देश्य ईश्वरीय उपासना, देव पूजा, चरित्र निर्माण के लिए होता था। इस लिए गुरू नानक देव जी का संगीत प्रयोजन हमारी वैदिक परम्परा तथा सांस्कृतिक महत्त्व के अनुकूल ही है। आज भी हिन्दू, मुस्लिम , सिख, ईसाई सभी के धार्मिक स्थानों पर प्रार्थना आरती तथा कुरान के (आयतें) पंक्तियां संगीतमयी वाणी में प्रस्तुत की जाती हैं।

भारतीय संगीत की यह अमर ज्योति, कलियुग में भारत तथा भारत के बाहर भी पहुंचाने का श्रेय सम्राट गुप्त विक्रमादित्य के बाद श्री गुरू नानक जी तथा भाई मरदाना को ही प्राप्त है।[1]

मुस्लिम शासन काल के अंर्तगत मध्यकाल का भक्ति युग एक महत्त्वपूर्ण घटना है। इस युग ने भारतीय संस्कृति को अनेक संत संगीतकार दिए जिन्होंने भारतीय संगीत की पृष्ठ भूमि को बलवान, सुन्दर और मजबूत बनाया।

प्रसिद्ध इतिहासकार डा0 कर्लट इप्सन ने अपनी लोकप्रिय पुस्तक "Historical Research of Indian Music" के पृष्ट 112 पर लिखा है – "जब हम इस काल के भारतीय संगीत पर दृष्टि डालते हैं तो दो स्पष्ट धाराएं हमारे सामने आ जाती हैं। पहली धारा वह जो कि उत्तरी भारत में मुस्लिम संस्कृति की पृष्ठ पर बह रही थी और दूसरी धारा दक्षिण प्रांत में अपने प्राचीन रूप को लिए हुए प्रवाहित हो रही थी। दक्षिणी संगीत में जहाँ हमें प्राचीन भारत का उज्जवल एवं पावन रूप अपनी स्वाभाविक स्थिति में नज़र आता है वहाँ उत्तरी भारत के संगीत में हमें मुस्लिम संस्कृति का गहरा प्रभाव स्पष्ट झलकता प्रतीत होता है। वास्तव में दक्षिण भारतीय संगीत अपनी उच्च परम्परा के गौरव को बड़ी शान से विकसित कर रहा था दक्षिण भारत के लोग अपनी संस्कृति को बड़ा सम्भाल कर रख रहे थे। उनके अन्दर धार्मिक रूप गहरा था इसलिए इस काल के दक्षिणी संगीत पर गहरी धार्मिकता चढ़ी हुई थी।"[2]

उत्तरी संगीत में भी सूरदास जी एक भक्त, गायक और कवि हुए हैं। वल्लभाचार्य जी ने इन्हें गोवर्द्धन पर श्री नाथ जी के मन्दिर का प्रमुख कीर्त्तनिया बना दिया था। सूरदास जी का 'सूर सागर' तो बहुत प्रसिद्ध हुआ है। सूरदास जी ने लगभग 80 के करीब रागों का प्रयोग किया है। सूर के समय में अनेक प्रचलित राग आज अप्रचलित हो गए हैं और उनके अनेक अप्रचलित राग आज प्रचलित हो गए हैं। जैसे पहले शुद्ध विलावल राग पहले अत्यधिक आम जनता में प्रचलित था आज वही अत्यधिक अप्रचलित है। सूरदास ने अधिकांश पदों पर रागों के नाम दिए हैं। इन राग शीर्षकों के चुनाव में एक आश्चर्यजनक निश्चित व्याख्या जान पड़ती है। यह व्यवस्था अवसर, समय और भाव, इन तीनों की दृष्टि से प्राप्त होती है। प्रातःकाल की लीलाओं का वर्णन जहाँ सूर ने किया है तो उनको उन्होंने प्रातः गाये जाने वाले रागों में ही गाया है। तथा इसी प्रकार साँयकालीन लीलाओं को उन्होंने साँयकाल में गाये जाने वाले रागों में प्रस्तुत किया है। सूर के अनुसार बिलावल, भैरव, भैरवी, रामकली, ललित जैतरी, टोडी, नट तथा सारंग आदि राग निश्चित रूप से दिन के समय के राग हैं और कल्याण, कैदारों,

विहागरौ एवं कान्हरौ आदि राग रात्रि गेय हैं। वास्तव में समय का ध्यान रखकर ही सूर ने अपने पदों की रचना की। यह उनके एक सफल इतिहास होने का प्रमाण है।[3]

मीराबाई भी इसी काल में हुई है और वह एक भक्त थी और उनकी भक्ति का माध्यम संकीर्त्तन भजन था।

कबीरदास भी इसी काल में हुए हैं। उनके पदों में 24 रागों का वर्णन मिलता है। कबीर के पदों ने जीवन को वेदान्तमय बना दिया।

सुप्रसिद्ध विद्वान् ओसाली मिलडस्टन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक, "Internal Light of Kabir" के पृष्ठ 22 पर लिखा है कि अकबर के काल में सन्त कबीर ने संगीत के क्षेत्र का गर्दो–गुब्बार खत्म कर दिया। मानव अपने आचरण की पवित्रता से हटते जा रहे थे। नारियों के चरित्र का मूल्य लोगों की दृष्टि में कुछ भी नहीं रह गया था। सरे–बाजार नारियों का निकलना मुश्किल हो गया था। ऐसे डगमगाते समय में कबीर ने मानव जीवन का यथार्थ सौन्दर्य प्रस्तुत किया। संगीत में जो अश्लील गीत बनने लगे थे वे सब कबीर के पदों के सामने भाव–शून्य हो गए। डगमगाते हुए समाज को सुस्थिर करने में कबीर के पदों ने बड़ा कार्य किया।"[4]

इसी काल में तुलसीदास जी हुए हैं जो सफल कवि, संगीतज्ञ और भक्त थे। इनका रामचरितमानस पूर्ण संगीतमय है। उनकी रामचरितमांनस की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने 'रामचरितमानस' में सगीत का पुट देकर राम के उज्जवल एवं पावन चरित्र की विभिन्न धाराओं को घर–घर पहुंचा दिया।[5]

यूरोपियन इतिहासकार थोमस आस्टर ने अपनी सुन्दर पुस्तक The History of Moguls' age के पृष्ठ 55 पर लिखा है कि "तुलसीदास के काव्य ने प्रसुप्त मानव को झंकझोर कर जगा दिया, उनकी नींद इतनी गहरी हो चुकी थी कि यदि तुलसीदास का संगीतमय काव्य प्रस्तुत न होता तो न मालूम मानवता का क्या रूप होता ?"[6]

श्री गुरू नानक देव जी की चलाई हुई सम्पदा तथा परम्परा आज 500 वर्ष उपरान्त भी विकासशील है। उन्होंने अपने विचारों को संगीतात्मक रचनाओं द्वारा जनता के सामने रखा। इन दिनों लोगों में अन्धविश्वास, पाप, पाखंड, छूआ–छूत, जात–पात, आदि की अनेक भ्रामिक परम्पराएं प्रचलित थी। यह समय भारतीय संस्कृतिमें, राजसी उथल–पुथल तथा कलाओं का विकृत परिवर्तन माना जाता है। ऐसे समय में अनेक

वाग्यकारों ने जन्म लिया और जनता का पथ प्रदर्शन किया। श्री गुरू नानक देव जी इस काल के एक महान् वाग्गेयकार सिद्ध होते हैं। क्योंकि उनकी रचनाओं में आज भी काव्य संगीत के सफल प्रयोग तथा सामंजस्य का स्पष्ट प्रयोग दृष्टिगोचर होता है।[7]

गुरू जी ने मुस्लिम काल की प्रवृतियों को देखते हुए उनहोंने एक महान् यात्रा करने का संकल्प बनाया जिसका उद्देश्य था एक सीधे–सादे, स्पष्ट धर्म तथा सत्य का सन्देश सारी जनता को मिल सके और भारतीय समाज गलत परम्पराओं से मुक्त हो जाए। इस प्रकार की चार पाँच यात्राएं अपने जीवन की सम्पूर्ण की। इन यात्राओं को 'उदासी' कहा जाता है। इस प्रकार लगभग 30 वर्ष गुरू जी ने भारतवर्ष तथा एशिया महाद्वीप खण्डों में भ्रमण किया। इन 'उदासियों' में उनका प्रिय मित्र अथवा शिष्य भाई मरदाना उनके साथ रहा जो रबाब वाद्य बजाता था और गुरू जी अपनी रचनाओं का गायन करते थे। कई स्थानों पर दोनों ने मिलकर गायन तथा केवल भाई मरदाने का गायन का उल्लेख भी है।

इतिहासकारों के मतानुसार गुरू जी ने अपना भ्रमण प्रथम उदासी में लगभग 8 वर्षों में पूरा किया। इस सफर का कुल जोड़ 6500 मील बनता है जो लगभग 3015 दिनों में गुरू जीन ने पूरा किया।

सबसे पहले गुरू जी सैदपुर गए वहाँ पर 'सत्यकर्म' और 'पाप की कमाई' न करने का सफल उपदेश दिया। यहाँ से गुरू जी 'तुलबां' गांव (मुलतान) में गए । इस गांव में ठगों का सरदार सज्जन ठग्ग रहता था। इसके दो रूप थे एक महात्मा का, दूसरा पापी का। इस मनोरथ के लिए उसने अपने घर में एक मन्दिर तथा एक मस्जिद बनवाई हुई थी ताकि हिन्दू तथा मुस्लिम यात्रियों को यहाँ ठहरा कर उनका धन लूटा जा सके।[8]

गुरू तथा मरदाना भी वहाँ गए। इनके साथ भी ठग ने धोखा करने का प्रयत्न किया। लेकिन रात्रिकाल में गुरू जी के गायन का पद सुनकर सज्जन ठग को अपने पापों का अहसास हो गया। अन्त में गुरू जी के चरणों में नतमस्तक होकर क्षमा याचना करने लगा। तब गुरू जी ने उसे ईश्वरीय ज्ञान दिया ओर उसने वह धर्मशाला गुरुद्वारा के रूप में बदल दी।[9]

यहाँ से गुरू जी कुरूक्षेत्र, हरिद्वार, गोरख , मता, अयोध्या, प्रयाग इत्यादि से होकर काशी पहुंच गए बनारस तथा काशी दोनों नगर पास–पास ही हैं । यह दोनों नगर प्राचीन भारत के महान् तीर्थ हैं । इन्हीं नगरों में गुरू जी ने अन्य समकालीन भक्त रामानन्द, कबीर, रविदास, सैन, तथा पीपा इत्यादि की काव्य संगीत रचनाओं का संग्रह किया ।[10]

काशी से लगभग 128 मील पूर्व की तरफ 'गया' नामक तीर्थ है। इस तीर्थ पर 'वैसाखी ' के समय उत्सव होता है। भाई मरदाना तथा गुरू जी वैसाखी पर्व पर 'गया' नगर पहुंचे और कीर्तन संगीत के द्वारा विशाल जन समूह को मनुष्य के शरीर का अन्तिम क्रिया के सम्बन्ध में सत्य मार्ग का पथ प्रदर्शन किया। पूर्वीय क्षेत्रों के भ्रमण काल में गुरूजी आसाम भी गए। यह प्रांत उन दिनों जादू, मन्त्र आदि के कारण बड़ा बदनाम था। यहाँ उनका मेल एक प्रसिद्ध तथा सुन्दर जादूगरनी 'नूरशाह' से हुआ । उसने अपने आकर्षक हाव–भाव, सौन्दर्य तथा जादू द्वारा गुरू जी को अपने वश में करके गिराने का प्रयत्न किया। गुरू जी ने केवल एक शब्द पद से उसके सारे प्रयत्न विफल कर दिए। इसी गीत का नाम आदि ग्रन्थ में 'कुचजी' है। इसके विपरीतार्थक भी गुरू जी ने एक पद लिखा जिसे 'सुचजी' कहा जाता है। इस प्रकार गुरू जी ने अपने विचारों द्वारा नूरशाह के सौन्दर्य, कामना तथा विषय विकारों का खंडन किया। यह भी गुरू जी के संगीत प्रभाव का एक विशिष्ट प्रमाण है।

इसके उपरान्त गुरू जी कई अन्य स्थानों से होते हुए गोहाटी तथा बंगाल प्रांत में भी गये। इस प्रकार बरदवान बालेश्वर तथा मिदनापुर की यात्रा के बाद जगन्नाथपुरी पहुंचे। मिदनापुर से जगन्नाथपुरी दक्षिण पश्चिम की तरफ लगभग 200 मील है। यहाँ पर जनसमूह के सामने गुरू जी ने अपने विचार प्रकट किए कि ईश्वर की प्राप्ति मूर्ति पूजा से नहीं होती। यहीं पर गुरू जी ने अपनी रचना "आरती" का गायन सुनाया जिसमें निराकार, निरवैर, निरभौ, निर्विकार तथा कण–कण में व्यापक ईश्वर की उपमा है। यह आरती वास्तव में सभी आरतियों तथा प्रार्थनाओं से उत्तम है। इस रचना को गुरू जी ने राग धनाश्री में निबन्ध किया। आज भी यह आरती सिख स्थानों पर साँयकाल को बड़ी धूम–धाम से गाई जाती है। इसके आरम्भिक शब्द हैं –

"गगन मय थाल, रवि चन्द दीपक बने ।

तारिका मंडला जनक मोती ।।"

धूप मल आनलो पवन चवरौ करे ।

सगल बनराय फुलत जोती ।।

कैसी आरती होय भव खंडना तेरी आरती ।

अनहद शब्द वांजत भेरी रहाओ ।"

यहाँ से गुरू जी कुड़ापे, रामेश्वर, सिंहल द्वीप (लंका) होते हुए मुम्बई प्रांत में आ गए। यहाँ से कोचीन, पालघाट, रंगपटन इत्यादि नगरी में अपने कीर्त्तन संगीत द्वारा ब्रह्म ज्ञानमय विचारों का प्रचार किया।[11]

फिर गुरू जी पंढरपुर पहुंचे। भक्त नामदेव जी ने अपनी आयु का अधिक भाग यहाँ ही व्यतीत किया था। यहाँ से गुरू जी ने भक्त नामदेव जी के पदों का संग्रह किया। पंढरपुर से लगभग 45 मील उत्तर–पूर्व को 'बरसी' नाम गांव में पहुंचे। भक्त त्रिलोचन जी के पदों का संग्रह भी गुरू जी ने यहाँ से किया।

इसके पश्चात् गुरू जी उज्जैन, द्वारका, बड़ोदा, सोमनाथ, भावनगर से पालीटाणा, नगर पहुंचे। इसी स्थान पर गुरू जी का विचार विमर्श जैन साधुओं से भी हुआ। इनको भी गुरू जी ने अहिंसा का यथार्थरूप बताया। इन्हीं दिनों गुरू जी जूनागढ़, सुदामा पुरी भी गये। अंतिम बीसनगर, उदयपुर, नाथ द्वारा अजमेर, पुवकर तीर्थ गोकुल, मथुरा, वृन्दावन होते हुए कुरूक्षेत्र में पहुंचे। इस प्रकार गुरू जी पानीपत, सरसा इत्यादि से होते हुए सुल्तानपुर अपने पंजाब में वापिस आए।

इस लम्बी यात्रा में भाई मरदाना गुरू जी के साथ रहा। सैंकड़ो नगरों में गुरू जी ने अपने सरल तथा स्पष्ट विचार जनता के सामने रखे और अपने काव्य संगीत के प्रदर्शन से प्रभावित किया। यह निसंकोच कहा जा सकता है कि गुरू जी ने अनेकों भक्तों, सन्तों का कीर्तन भी समय–समय पर सुना होगा। अनेक तीर्थों पर भक्ति गीत भी सुने होंगे। अनेक प्रांतों के भक्ति गीतों का अनुकरण भी किया होगा। क्योंकि गुरू जी की रचनाओं से अनेक प्रकार के गीतों तथा गीत शैलियों का संकेत मिलता है। इसलिए गुरू जी के संगीत को किसी वर्ग विशेष का संगीत नहीं कहा जा सकता। गुरू जी का संगीत तो सारे भारतवर्ष का मिश्रित रूपी संगीत था, ऐसा संगीत जिसको

सुनकर प्रत्येक भाषा का और प्रत्येक प्रांत का व्यकित सुनकर आनन्द उठा सके। गुरू जी इस रहस्य को भली भान्ति अपनाते थे कि "नादसर्वव्यापी",। नाद से वर्ण, वर्ण से शब्द, शब्द से वाक्य, वाक्य से भाषा बनती है और भाषा से मानव मात्र का व्यवहार चलता है। अतः यह ब्रह्मांड ही नादमय है। नाद सौन्दर्य व उसकी आत्मा संगीत अथवा नाद विद्या है। अन्य भाषाएं एक देशीय हैं परन्तु नाद की भाषा प्राणी मात्र की है।

गुरू जी ने भी प्राचीन महार्षियों व महायोगी श्री कृष्ण के इस पवित्र कथन की पुष्टि की है –

"मद् भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद"

कलियुग में मन को एकाग्रता प्रदान करने में संगीत सर्वोत्तम साधन है। प्रभु प्राप्ति के लिए एकाग्रचित होना अनिवार्य है।[12]

द्वितीय 'उदासी' के अंतर्गत 1517 ई0 के लगभग गुरू जी ने वैष्णव देवी जाने का संकल्प किया। रास्ते में 'सियालकोट' तथा जम्मू नगर थे। सियालकोट में गुरू जी ने "पीर हमाज़ागौस' को अपने विचारो से प्रभावित करके नगर को कष्ट पहुंचाने से वर्जित किया। जिस स्थान पर गुरू जी ने विश्राम किया था। वहाँ आज भी "गुरूद्वारा बाबे दी बेरी" इतिहासिक स्थान सुरक्षित है।

जम्मू से वैष्णो देवी होते हुए गुरू जी ने अमरनाथ की यात्रा का कार्यक्रम बना लिया। अमरनाथ के मार्ग में ही गुरू जी की याद में एक ऐतिहासिक गुरूद्वारा 'मटन साहिब' आज भी सुरक्षित है। इन पर्वतों पर गुरू जी का मेल 'सिद्ध' लोगों से हुआ। इनसे जो भी वार्तालाप हुआ उसे गुरू जी ने 'सिद्ध–गोष्ट' नामक शीर्षक से काव्य संगीत मे निबद्ध किया।

सन् 1518 ई0 में तृतीय 'उदासी' के अन्तर्गत गुरू जी ने मक्का–मदीना जाने की योजना बनाई। जब गुरू जी पटन (अजोधन) पहुंचे। उन दिनों बाबा फरीद जी की "गुरू गद्दी" पर ग्यारहवां व्यक्ति "शेख ब्रेहम" बैठा हुआ था। गुरू जी ने इससे मिलकर फ़रीद जी के पदों का संग्रह किया।

हाजियों के एक काफिले से मिलकर श्री गुरू नानक देव जी मुलतान, बहावलपुर, सरवर, शिकमपुर, लासाबेला, तथा मेकरान इत्यादि इलाकों में से होकर आगे बढ़े और

'मक्का' तीर्थ के लिए गये। सन् 630 में हज़रत मुहम्मद ने यह आज्ञा दी थी कि प्रत्येक मुस्लमान भविष्य में 'काबा' की ओर मुख करके निमाज़ पड़ेगा। यहीं से मुस्लमानों की श्रद्धा भावना इस विश्वास में बदल गई कि काबे में ही ईश्वर का निवास है। इसी भ्रम का निवारण करते हुए गुरू जी आए थे। इस अंधविश्वास को समाप्त करने के लिए आपने एक नाटकीय योजना से काम लिया। उस तीर्थ में ऐसा अनोखा कार्य कोई ही माई का लाल कर सकता था। एक निश्चित समय पर गुरू जी काबे की ओर पांव पसार कर सो गए। प्रातःकाल सभी ने बुरा भला कहा, इतिहास में तो यह भी आता है कि 'जीवन' हाजी ने तो गुस्से में आकर गुरू जी को लात जमाई और कहा कि तुम्हें मालूम नहीं कि इधर खुदा का घर है। गुरू जी ने मुस्कुरा कर शान्त स्वर में कहा कि कृपया मेरे पाँव उस तरफ कर दो जिस तरफ खुदा का घर नहीं है। इस उत्तर से सभी एक – दूसरे का मुंह ताकने लगे। इस प्रकार एक गलत परम्परा का खण्डन गुरू जी ने क्रान्तिकारी के रूप में किया।

इसी स्थान पर गुरू जी का काजियों तथा हाजियों के साथ तर्क–विर्तक भी हुआ। गुरू जी ने यह सिद्ध कर दिया की न कोई हिन्दू है न मुसलमान, सभी ईश्वर निर्मित मानव हैं और हमारा धर्म मानवीयता, सत्य तथा ईमानदारी है। सभी हाजियों के साथ गुरू जी मदीना भी गए और मदीना से बगदाद की ओर चल पड़े। गुरू जी ने इस्लाम के गढ़ बगदाद नगर में पहुंच कर, राग को हराम समझने वाले लोगों को, राग ही द्वारा खुदा की उपमा गायन करके सुनाई और राग का पवित्र उद्देश्य तथा महत्त्व कायम कर के दिखाया। गुरू जी की याद में एक शिलालेख बगदाद रेलवे स्टेशन के पास मौजूद है। इस्लाम के गढ़ में निर्भयतापूर्वक संगीत का प्रदर्शन करके गुरू जी ने राग का महत्त्व, उद्देश्य, तथा प्रयोग बतलाया। यह एक सराहनीय कार्य था।

बगदाद के पश्चात् गुरू जी इरान तथा तुर्कीस्तान देशों के मार्ग से 'अफगानिस्तान' देश में पहुंचे। मार्ग में फहान, बेतरान, मृशहद, बुखादा, समरकंद, मजारशरीफ और अंतिम काबुल पहुंचे। काबुल अफगानिस्तान की राजधानी है। आज भी वहाँ गुरू जी की याद में गुरूद्वारा सुरक्षित है। काबुल से गुरू जी जलालाबाद पहुंचे। यहाँ भी एक धर्मशाला तथा एक चश्मा गुरू जी की याद दिलाता है। इस स्थान का नाम "चौहा साहिब" है।

1521 ई0 के लगभग गुरू जी हसन अबदाल नगर पहुंचे। सिख इतिहास में इस स्थान की घटना "वली कंधारी" के नाम से प्रसिद्ध है। पीर हमज़ा गौस की तरह यह पीर भी कई प्रकार की रिद्धियों–सिद्धियो का मालिक था। कुछ विशेष कारणों से अहंकार से चूर था, परन्तु गुरू जी ने इसका घमंड चूर कर दिया। इसे गुरू जी ने "मानव सेवा" तथा "नम्रता का उपदेश दिया। इस जगह पर गुरू जी की याद में ऐतिहासिक गुरूद्वारा स्थापित है। इस गुरूद्वारे का नाम "पंजा साहिब" है। हर वर्ष हजारों यात्री गुरूद्वारों का दर्शन करने पाकिस्तान जाते हैं।

"पंजा सहिब से गुरू जी कई नगरों और गावों से होते हुए सैदपुर पहुंचें । इन दिनों बाबर बादशाह काबुल की तरफ से आक्रमण करता हुआ भारतवर्ष की तरफ बढ़ता आ रहा था। इसी सैदपुर में बाबर ने अधिकार प्राप्त कर लिया। विजय के मद में चूर बाबर ने सैनिकों को मनमानी करने का आदेश दिया। इसी समय भाई मरदाना और गुरू नानक देव जी को बंदी बना कर बंदी गृह में डाल दिया गया। बंदी गृह में सभी कैदियों को आटा पीसना पड़ता था। अन्य कैदी बंदी गृह में बाबार के जुल्मों से रोते चिल्लाते थे। परन्तु गुरू जी तथा भाई मरदाना आटा पीसने के समय भी भक्ति गीतों का गायन करते थे।

प्रातः तथा रात्रि समय में भी कीर्तन किया करते थे। इस प्रकार बन्दी गृह के सभी कैदी गुरू जी की ओर आकर्षित हो गये। चलते–चलते यह बात बादशाह तक पहुची तो उसने खुद आकर गुरू जी के भक्ति गीतों का श्रवण किया। "बाबर" अत्यन्त प्रभावित हुआ। नतमस्क होकर क्षमा मांगी और पश्चाताप के रूप में सभी कैदी बंदीगृह से मुक्त कर दिए। यह घटना ऐतिहासिक तथ्यों से भी प्रभावित होती है और गुरू जी के बाबर सम्बन्धी लिखे गये चार पदो से भी। इन पदों का शीर्षक "बाबर बाणी" है। इस प्रकार गुरू जी ने अपने संगीत से कठोर दिल बाबर बादशाह को भी नम्र बना दिया। वास्तव में गुरू जी एक महान् संगीतकार थे जिन्होंने विपदा में भी संगीत से अत्यन्त प्रभावशाली उदाहरण उपस्थित किया। लगभग तीन वर्ष की लम्बी यात्रा के पश्चात् गुरू जी वापिस आकर फिर करतारपुर अपने प्रचार कार्य में संलग्न हो गए।[13]

चतुर्थ 'उदासी' के अंतर्गत गुरू जी का संपर्क भाई लहना के साथ हुआ। भाई लहना भी आपका श्रदालु भक्त बन गया, गुरू जी ने अनेक परीक्षा लेकर उसे मन ही

मन अपना उत्तराधिकारी मान लिया। भाई मरदाना की मृत्यु के पश्चात् गुरू जी को दुख होना स्वाभाविक ही था क्योंकि वह उनका पुराना मित्र तथा प्यारा कलाकार था। उनकी रचनाओं से ही स्पष्ट होता है –

"तूटी तंत रबाब की, वाजै नाहि विजोग ।।"
विछुड़ियां में ले प्रभु, नानक कर सयोग ।।" (राग : रामकली)

फिर अपना विछोड़ा कम करने के लिए लिखते हैं –

"जो उसारे सो ढाहसी, तिस बिन अवर न कौये ।
गुरू परसदि तिस संभला ता तन दुख ना होय ।।"

अंतिम समय निकट आ जाने पर गुरू नानक देव जी ने गुरूगद्दी भाई लहना जी को देकर उनका नामकरण गुरू अंगददेव स्थापित कर दिया। गुरू गद्दी देने के समय अपनी सारी आयु की कमाई (रचनाओं का संग्रह) अपनी तथा अन्य भक्तों की वाणी संग्रह भी अर्पित कर दिया। इस प्रकार मध्यकाल का यह महान् संगीतकार 22 सितम्बर, 1539 में करतारपुर में ही ज्योतिज्योत समा गए। श्री गुरू नानक देव जी ने भक्ति संगीत की परम्परा को नया जीवन दिया। आदि ग्रन्थ का आदि निर्माण भी आपके प्रयत्नों का फल है। आज से 500 वर्ष पूर्व मध्यकाल के भक्तों के संग्रह आदि ग्रन्थ के कारण सुरक्षित तथा एक सूत्र में आपके ही प्रयत्नों से बंधे हैं। वास्तव में उनकी यह संगीत को महान् देन है।[14]

श्री गुरू नानक देव जी की सारी वाणी का संग्रह गुरू अंगद देव जी को प्राप्त हुआ, अंगद देव जी से अमरदास जी को प्राप्त हुआ । गुरू अमरदास जी से गुरू रामदास जी के पास सुरक्षित रही और अनत में यह सारी वाणी अखण्ड रूप में श्री गुरू अर्जुन देव जी को प्राप्त हुई।

सारी वाणी का सम्पादन श्री गुरू अर्जुनदेव जी के द्वारा हुआ । जितनी भी वाणी आदि ग्रन्थ में सम्पादित हुई है, वो प्रमाणिक तथा मूल रूप में गुरूजनों की है, क्योंकि गुरू अर्जुनदेव जी जैसे महान् कवि, संगीतकार तथा विद्वान् की प्रतिभा से किसी प्रकार की भूल की आशंका सम्भव नहीं । एक विशेष बात यह भी है कि गुरू अर्जुन देव जी ने सारी रचनाओं का सम्पादन किया है, उन्होंने किसी भी रचना में कांट–छांट अथवा

नवीन शब्द अपनी ओर से बिल्कुल नहीं जोड़ा ।[15]

गुरूवाणी के विद्वानों के मतानुसार गुरु ग्रन्थ साहिब में मुख्य राग 31 हैं । रागों के प्रकार 29 हैं , आदि ग्रन्थ में कुल 3384 शब्द तथा 15575 पद संग्रहित हैं ।

पाद–टिप्पणियां

1. डॉ0 कृपाल सिंह नारंग, पंजाब का इतिहास, पृ0 53
2. डा0 कर्लट इप्सन, Historical Research of Indian Music. i`0 112
3. उमेश जोशी , भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0 218
4. ओसाली मिलडस्टन, Internal Light of Kabir, पृ0 22
5. उमेश जोशी , भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0 229
6. थोमस आस्टर, The History of Moguls Age, पृ0 55
7. डी0एस0 नरुला, गुरू नानक संगीतज्ञ, पृ0 1
8. डॉ0 कृपाल सिंह नारंग, पंजाब का इतिहास, पृ0 54
9. वही, पृ0 54
10. डा0 दर्शन सिंह, गुरू नानक जीवन दर्शन में काव्य–कला, पृ0 17
11. डॉ0 कृपाल सिंह नारंग, पंजाब का इतिहास, पृ0 56
12. डी0एस0 नरुला, गुरू नानक संगीतज्ञ, पृ0 7
13. A Simple History of Punjab 1969
14. डा0 दर्शन सिंह, गुरू नानक जीवन दर्शन ते काव्य कला, पृ0 26
15. डी0एस0 नरुला, गुरू नानक संगीतज्ञ, पृ0 23



गुरमति संगीत का परिचय

सिख धर्म के आधार ग्रन्थ श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में संकलित वाणी का संकलन पांचवें गुरू श्री अर्जुन देव जी ने किया है जिसमें गुरू साहिबान की बाणी और भक्तों की बाणी को अलग–अलग रागों सहित अंकित किया गया है। यह वाणी या शब्द गाये जाने के लिए, अनेकों आदेश, गुरू साहिबान की बाणी में मिलते हैं। श्री गुरू अर्जुन देव जी का कहना है कि

"गुरूवाणी गावह भाई । ओह सफल सदा सुख दायी " ।।[1]

गुरवाणी के गायनसे यह स्पष्ट होता है कि यह वाणी सहज शब्द नहीं है और न ही सहज काव्य है । यह इलाही वाणी तो परमात्मा से आई है –

धुर की वाणी आई ।। तिनी सगली चिंत मिटाई ।।[2]

इस दुर की बाणी को गाने के आदेश तीसरे गुरू अमरदास जी ने किया जो इस प्रकार है –

"आबहु सिख सति गुरू के पियारिहो गावहु सची बाणी" ।।[3]

उपरोक्त से स्पष्ट है कि गुरू अर्जुनदेव जी से पूर्व श्री गुरू अमरदास जी ने गुरूवाणी के गायन का आदेश दिया है। उनसे पूर्व श्री गुरू अंगददेव जी के अनेकों श्लोक, अलग–अलग रागों में मिलते हैं जिस से पता चलता है कि गुरू अंगद देव जी के समय यह परम्परा जारी थी जिससे हमें भली प्रकार ज्ञान प्राप्त होता है कि शब्द गायन प्रथा श्री गुरू नानक देव जी ने ही चलाई ।

श्री गुरू नानक देव जी अपने आप की

"ढाढी सचै महलि खुसमि बुलाइआ"

हउ ढाढी बेकारू कारै लाईआ "[4]

खसमै कै दरबारि ढाढी वसिआ सचचा

खसमु कलाणि कमलु विगसिआ ।।[5]

बताते हैं कि जो "खसम के स्नेह को जगत में फैलाने आए है, गुरू नानक देव जी को अकाल पुरुष ने इस जगत को जीवित रखने के लिए भेजा था। जो उन्होंने अकाल पुरुष से प्राप्त किया वह लोगों तक पहुंचाने के लिए दुनियाँ के दूर–दूर खित्तों तक पहुंचे। भाई गुरूदास जी का कहना है –

पहिल बाबे पाथा बक्शदर पिछो दे फिर धाल कमाई।

चड़या सोद न धरती लुकाई ।।[6]

श्री गुरू नानक देव जी के वचन हैं कि जो उपदेश रूप में फरमान रहे हैं यह सर्व शक्तिमान अकाल पुरुष का फरमान ही है कि जिस तरह उसने हुक्म किया है उसी तरह ही विचारधारा साधारण तक पहुँचा रहे हैं। उनका कथन है कि –

जैसी में आवौ खसम की बाणी तैसड़ा करी गिआनु वे लालो ।।[7] इस भगवान के हुक्म को जनता तक संचार करने के लिए जो साधन श्री गुरू नानक देव जी ने अपनाएं वह कीर्तन, या सगीत ही था । यह कीर्तन सिर्फ शब्दों के स्वरों में गाने को ही नहीं कहा जाता बल्कि गुरू नानक देव जी ने इसको प्रस्तुत करने के लिए एक विशेष विधान चुना । इस विधान को ही **गुरमत संगीत प्रबन्ध** कहा जाता है ।

गुरू और संगीत की हजूरी में कीर्तनकार जब तंत्री साजों के साथ निर्धारित रागों में गुरूवाणी का स्वर ताल बद्ध, रस से भरपूर, अखंड कीर्तन करते हैं जिसमें रहाओं और पद्यों के अंकों का विशेष ध्यान रखा गया हो जो प्राणी मात्रा के चित को नाम सिमरण द्वारा, सहज अवस्था के द्वारा, अकाल पुरुष के साथ जोड़े, उसको गुरमत संगीत कहते हैं।

मध्यकालीन धार्मिक संगीत परम्पराओं में संगीत का मौलिक और विलक्षण स्थान है। इस प्रबन्ध की यह मौलिकता और विलक्षणता इसके विशेष संगीत प्रबन्ध के द्वारा मूर्तिमान होती है।

श्री गुरूनानक देव जी ने वाणी के सत्य को लोगों के सामने प्रस्तुत करने के लिए संगीत को एक विशिष्ट माध्यम से अपनाया। उनकी इस मौलिक युक्ति द्वारा

भारतीय संगीत में एक नई संगीत धारा का उदय हुआ जिसको गुरूमति संगीत या सिखसंगीत कहा जाता है। इस संगीत परम्परा में भारतीय संगीत उपकरणों का सफल और मौलिक दृष्टिकोण से प्रयोग किया गया है। इस महान परम्परा की विशिष्टता यह है कि यह संगीत आम जनता के सम्बोधन के लिए होता है। जिसके अन्तर्गत यह श्रोताओं की मानसिकता के साथ एक सुर होकर कार्यशील रहता है इसमें श्रोताओं के बौद्धिक स्तर और सांस्कृतिक स्तर को भी आंखों से अलग नहीं किया गया बल्कि इनको एक विशेष संतुलन के अधीन प्रस्तुत किया गया है। गुरूवाणी की प्रस्तुति लोकमुखी होने के कारण ही एक विशिष्ट प्रबन्ध की सृजना करती है जो हमको भारतीय संगीत और समकालीन संगीत परम्पराओं के साथ अलग कर पाता है। गुरूवाणी के इस सच्चे संगीत का अध्ययन इसके विशिष्ट संगीत प्रबन्ध अधीन किया जाना जरूरी है।

गुरू नानकदेव जी ने राग के विशिष्ट सौन्दर्य मूलक भाव प्रकाशन से, भाव बोध के अपार शक्ति से इसको अपनी वाणी के गायन के लिए प्रयोग किया और इस परम्परा में निर्धारित रागों द्वारा गुरूवाणी गायन की परम्परा का संस्थागत प्रचलन भी किया। काव्य के गायन और राग का प्रयोग श्री गुरूनानक देव जी से पहले भी मिलता है। परन्तु जो नवीन अर्थ व्यवहारक रूप में राग को गुरू साहिब जी ने प्रदान करवाये हैं वे गुरमति संगीत की मौलिकता और विलक्षणता प्रकाशित करते हैं। वाणी में राग का महत्व और प्रयोग भारतीय संगीत के राग प्रचलन से भिन्न है। इस परम्परा अधीन राग को वाणी के गायन के लिए प्रयोग करके सदा आनन्द की प्राप्ति में लीन होने का संदेश है। ऐसे आदेश की प्राप्ति में ही गुरूवाणी में राग का नवीन और मौलिक दृष्टिकोण से प्रयोग किया गया है जिसने न केवल गुरूमति संगीत को विलक्षनता प्रदान की है बल्कि यह प्रयोग भारतीय संगीत में भी विशिष्टता का धारणी है।

गुरूमति संगीत की पृष्ठभूमि

मध्यकालीन धार्मिक संगीत परम्पराओं में संगीत का मौलिक और विलक्षण स्थान है। इस प्रबन्ध की यह मौलिकता और विलक्षणता इसके विशेष संगीत प्रबन्ध को मूर्तिमान करती है। इससे पहले कि हम इसके क्रमिक विकास और संगीत प्रबन्ध संबंधी विचार करें, गुरमति संगीत के बीच की समाजिक, धार्मिक और संगीतक अवस्था के बारे में जानना अति जरूरी है ।

गुरूमति संगीत का आरम्भ श्री गुरूनानक देव जी के आगमन के साथ हुआ है। गुरू जी के अवतार धारण समय भारतीय समाज की हालत बहुत चिंताजनक थी। लोगों में धार्मिक गिरावट आ चुकी थी (धार्मिक अवस्था यह थी कि मुल्ले और पंडित जनता को बुरे रास्ते पर ले जा रहे थे और धर्म के नाम पर खुद ही खा रहे थे और जनता को आपस में लड़वा रहे थे) सच किनारे रहि गया खहि मर्दे ब्राह्मण मायो लागे।[1] सभी तरफ अधर्म का बोल बाला था सच कहने वाला कोई नहीं था। राजा प्रजा की रक्षा करने की जगह उन पर जुल्म कर रहे थे।

राजे पाप कमांवदे

उल्टी बाड़ खेत कोऊ खाई ।[8]

समाज, धर्म, जात, ऊंच–नीच के खाली भ्रमों में पड़ा हुआ था। हिन्दु चार वर्णों में बांटे हुए थे और मुसलमानों में भी चार फिरके चल रहे थे।

चार वरन चार महजबाँ ।

जग विच हिन्दु मुस्लमानो ।।[9]

सभी तरफ गलत लोग फैले हुए थे। हाकिम मुसलमानों की तरफ से हिन्दुओं पर जबर, जुल्म किया जा रहा था और उनको जबरी हिन्दुओं से मुस्लमान बनाया जा रहा था। कट्टर मुस्लमान हाकिमों के हुक्म से मंदिर तोड़ते जा रहे थे और उनकी जगह मस्जिदें बनाई जा रही थीं ।

ठाकुर दूआरे डाहि कै ठोडी मसीत उसार ।[10]

परन्तु धर्म केवल कार्यक्रमों में उलझ कर रह गया था। आगमणों (आने वाले को) को ठीक रास्ते पर डाला जाये इसलिए उन हिन्दु और मुस्लमानों के धर्म स्थानों पर जाके 'सच' का संदेश दिया।

बाबा देखे ध्यान धर जलती सब पृथ्वी दिस आई

बाजोड़ गुरू गुबार दै, है है करदी मुणी लुकाई ।

बाबे मेख बनाया उदासी की रीत चलाई

चड़िया सोधन धरत लुकाई ।[11]

अकाल पुर्ख के हुक्म को लोगों तक पहुंचाने के लिए गुरू साहिब ने संगीत को माध्यम बनाया। गुरू जी ने शब्द और कीर्तन के सुमेल से एक विधान बनाया जो गुरूमति संगीत प्रबन्ध के साथ प्रकट हुआ। इस संगीतक प्रबंध के पीछे भारतीय संगीत के आध्यात्मिक संगीत (धार्मिक संगीत)की एक विशाल परम्परा मौजूद थी जिसकी संक्षेप रूप में जानकारी हासिल करनी जरूरी है कि वैदिक काल से ले करके श्री गुरूनानक देव जी के समय तक संगीत की विभिन्न धाराएँ और परम्पराएं प्रचार में रही हैं। मुख्य तौर पर इस समय के संगीत को 'हम मार्गी' और 'देशी' नामक दो धाराओं अनुसार विभाजन कर सकते हैं।

मार्गी संगीत

प्राचीन काल में ऋषियों मुनियों ने मुक्ति के उद्देश्य से इस संगीत का प्रयोग किया। शास्त्रकारों द्वारा निर्धारित नियमों का पालन कर ईश्वर की अराधना के उदेश्य से इस संगीत का प्रयोग किया जाता था उसको 'मार्ग संगीत' कहा जाता था।[2]

मार्गी संगीत व्यक्तिगत निष्ठता, कठोर साधना और संयम पर आधारित था। मार्गी संगीत के विकास पर शास्त्रकारों ने इसके अध्ययन पर ध्यान दिया है और इसके अध्ययन उपरान्त शास्त्रबद्ध शास्त्रीय-संगीत का जन्म हुआ। इस तरह शास्त्रीय-संगीत प्राचीनकाल में प्रचलित मार्गी संगीत का ही परिवर्तित रूप है।

देशी संगीत

शास्त्रीय संगीत के अलावा समूह संगीत देशी संगीत कहलाता है। भिन्न-भिन्न देशों के प्रचलित संगीत को ही शास्त्रकारों ने "देशी संगीत" का नाम दिया जाता है।[12]

देशी-संगीत या लोक-संगीत परम्परा शास्त्र के नियमों से स्वतन्त्र है। यह जन-साधारण की रुचि अनुसार कार्यशील और परिवर्तनशील है देशी संगीत मनुष्य जीवन के साथ संबधित रस्मों रीतों के प्रभाव अधीन व्यक्तिगत और समूहिक, रूप में प्रचलित था। यह संगीत किसी इलाके, क्षेत्र या जाति के लोगों की मानसिकता के साथ एक होकर पैदा होता है जो देशों के प्रभाव से भाषा और संगीत में विलक्षणता और मौलिक पहचान सहित उजागर होता है देशी संगीत अलग-अलग प्रान्तों क्षेत्रों, और

जातियों के लोगों का जन्म से मौत तक के विभिन्न गीतों और गीत प्रकारों के संगीतिक रूपों के साथ–साथ भरपूर संगीत रूप है।

'देशी संगीत' के अधीन अलग–अलग संतों, संत–कवियों ने लोक मानसिकता के अनुकूल और अनुरूप लोक गीत प्रकारों को अपनी वाणी में विशेष स्थान दिया। उन्होंने जहाँ भाषा की तरफ से देशी संगीत के गीत और सर्वसाधारण भाषा का प्रयोग किया वहाँ विभिन्न धुनों, सुरावालियाँ और गायन रूपों को भी संगीत के रूप में अपनाया है। संगीत और धर्म के गहरे सम्बन्ध के अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। संगीत की उत्पत्ति और संगीत के विकास के इतिहास के विश्लेषण समय विद्वानों ने संगीत की उत्पत्ति देवी देवताओं से मानी है इस सम्बन्ध में कई उल्लेख और दंत कथाएं प्रचलित हैं।[13] जिनमें रबी फरिश्ते अकालवोल[14], हजरत मुसां[15] ईसा मसीह[16] और दैवदूत जीवां[5] आदि में विभिन्न धर्म मतों अनुसार संगीत की उत्पत्ति स्वीकारी है। उत्पत्ति के इलावा, भारतीय संगीत का धर्म और धार्मिक देवी देवताओं के साथ अटूट संबंध दर्शाया गया है जैसे कि प्राचीनकाल में जिस संगत को आत्म–ज्ञान या मोक्ष प्राप्त करने के लिए महापुरुषों द्वारा अपनाया गया उस विशेष प्रकार के संगीत को ही 'मार्गी संगीत' कहा जाता है।[17]

इस तरह एक और परिभाषा भी इस प्रकार है – "ब्रह्म द्वारा उत्पन्न यह संगीत जिसका वर्णन भरत ने महादेव के सम्मुख किया मुक्ति दाता है और इसको "मार्गी संगीत" का नाम दिया जाता है।"[18]

उपयुक्त परिभाषा से धर्म और संगीत का संबंन्ध आदि समय से ही प्रकट होता है। मनुष्य जीवन के विकास के अधीन भिन्न–भिन्न धाराओं के अंतर्गत प्रवाहित रहा है। यह धाराएँ मुख्य रूप से मार्गी संगीत धारा अपने आरम्भिक रूप में धर्म के साथ संबंधित रही हें। विभिन्न धार्मिक परम्पराओं स्थानों और मतों में संगीत के प्रयोग को उत्साहित किया जाता रहा है। भारतीय परम्परा अनुसार धर्मों के विकास के अधीन प्रयुक्त होने वाली विभिन्न संगबी परम्पराओं को हमने पूरे तौर पर अध्यात्मिक संगीत का नाम दिया है जिसके अन्तर्गत वैदिक संगीत से लेकर के गुरुमति संगीत तक की समूह धार्मिक संगीत परम्पराएं आ जाती हैं। उस संगीत में प्रयोग होने वाले मूल उपकरण और तंत्र वाद्य चाहे भारतीय संगीत में ही लाए गये है परन्तु इसके साथ यह परम्पराएँ देशी समकालीन और विविध प्रभाती संगीत परम्पराओं से भी प्रभाव ग्रहण करती हैं।

भारतीय धर्मों की इन परम्पराओं में संगीत को एक संचार माध्यम के तौर पर स्वीकारा गया है और इनमें संगीत का किसी गम्भीर चिन्तन या विकास आदि के पहलुओं को दूसरे स्थान ही प्राप्त हुआ है क्योंकि यह परम्पराएँ मूल रूप में अपने–अपने धर्म के साथ जुड़ी हुई हैं। इसके साथ धार्मिक संगीत की इन परम्पराओं में कुछ परम्पराओं ने अपने धार्मिक संगीत द्वारा विलक्षण पहचान बनाई है।

गुरमति संगीत के अन्तर्गत प्रस्तुत विषय से सम्बन्धित निम्नलिखित विद्वानों के कार्य महत्त्वपूर्ण हैं :–

भाई कानसिंह नाभा

भाई कानसिंह नाभा ने अपनी पुस्तक गुरू शब्द रत्नाकर महान कोष के पृष्ठ 12 पर लिखा है कि भाई मर्दाना ने गुरू नानक देव जी की सभी 'उदासियों' में साथ दिया सिख सम्प्रदाय में उदासी शब्द का अर्थ भ्रमण होता है। कुछ विद्वानों के अनुसार गुरू जी ने अफगानिस्तान और अरब भ्रमणकाल में अपने प्रिय अनुचर मर्दाना को खो दिया विद्वानों के अनुसार इनका देहान्त करतारपुर में हुआ और गुरूनानक देव जी ने अपने हाथों उनका संस्कार किया था।

भाई कानसिंह नाभा गुरू शब्द रत्नाकर महानकोष के पृष्ठ 12 पर लिखते हैं बल्बडं और सत्ता परस्पर भाई थे।

भाई काहनसिंह नाभा राग के बारे में लिखते हैं संगीत विधि अनुसार जिसके सुनने से मन में राग उपजे राग हैं राग का मोल षडज,ऋषभ गन्धार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद यह सब स्वर हैं।

और भाई काहन सिंह नाभा पृष्ठ 1014 पर लिखते है कि यह गाने वाले की मर्जी है कि रहाऊ की पंक्तियों में से जिस मर्जी पंक्ति को स्थाई माने पर वाणी के अर्थ को ध्यान में रखते हुए देखा जाए तो यह विचार ठीक नहीं बैठता क्योंकि जहां रहाऊ कि पंक्ति बदल जाती है वहां समस्या ही बदल जाती है। अतः शब्द के प्रयोग के लिए निश्चित स्वर संकेत के अनुसार वाणी का गायन जरूरी है।

भाई काहनसिंह नाभा अपने ग्रन्थ महानकोष के पृष्ठ 441 पर लिखते हैं 'गुरमति संगीत' के अनुसार घर के दो अर्थ हैं एक ताल दूसरा स्वर ओर मूर्च्छना के भेद करके

एक ही राग के सरगम प्रस्तार अनुसार गाने के प्रकार हैं।

भाई काहनसिंह नाभा के अनुसार संगीत की धारधा का नाम जति है और मृदंग के बोल का जहाँ विश्राम हो उसे भी जति की संज्ञा दी जाती है।

भाई काहनसिंह नाभा अपने ग्रन्थ महानकोष के पृष्ठ 502 पर जति के बारे में लिखते हैं कि जब दोनों हाथ खुले काम कर आवाज भी खुली निकाले जिसे कुड़कुट कहते हैं तो उसकी संज्ञा साथ होती है ।

भाई कानसिंह नाभा महानकोष के पृष्ठ 1025 पर लिखते हैं कि भक्त रविदास का कोई अलग ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। अधिकतर ग्रन्थकारों का मत है कि 14वीं शताब्दी में पैदा हुआ इनके 40 पद आदि ग्रन्थ में उपलब्ध हैं और पृष्ठ 219 पर लिखते हैं कि सैन भक्त के जीवन सम्बन्धी प्रामाणिक तथ्यों का अभाव है अधिकतर ग्रन्थकारों ने उसे रामानन्द का शिष्य स्वीकार किया है। इसलिए इसका जीवन काल 14वीं शताब्दी माना गया है। कहा जाता है कि वह रीवा के राजा का नाई था। आज भी रीवा में सैन वंशियों का अस्तित्व है और पृष्ठ 85 पर लिखते हैं कि अलाहुणी शब्द अलाहणा से बना है, जिसका अर्थ हे गाना। अलाहुणी का शाब्दिक अर्थ है शलाघा या स्तुति की कविता यानी वह गीत जिसमें किसी के गुण गाए जाएँ। खास करके दिवंगत प्राणी के गुण–कर्म कहकर जो गीत गाया जाता है उसका नाम अलाहुणी है। महान कोष के पृष्ठ 449 पर लिखते हैं कि कीर्तन चौकी की परिभाषा देते हुए भाई कानसिंह नाभा कहते हैं –1) चार रागियों की मंडली "गावत चऊकी शब्द प्रकाश" 2) भजन मंडली, जो परिक्रमा करती हुई शब्द गाये।" और महानकोष के पृष्ठ 449 पर भाई कानसिंह नाभा ने गुरू अर्जुन साहिब द्वारा आसा दीवार की चौकी, चरणकमल की चौकी सोदरु की चौकी, कलियाण की चौकी इन चार चौकियों का प्रचलन बताया है।

भाई कानसिंह नाभा गुरू छन्द दिवाकर के पृष्ठ 260 पर लिखते हैं कि श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में दर्ज बारामास में से महीने से सम्बन्धित शब्द का हर महीने संक्रान्ति के दिन पाठ और गायन करने की प्रथा है। प्रकृति का मन के साथ अटूट सम्बन्ध होने के कारण कवि बारह महीनों में हुए ऋतु परिवर्तन को आधार मानकर उस प्रभु की जुदाई में अपने मनोभावों को प्रकट करता है । यह कोई छन्द–जाति नहीं । किसी भी छन्द के बारह महीनों के वर्णन होने के कारण यह संज्ञा हो जाती है ।

भाई कानसिंह नाभा ने गुरू शब्द रत्नाकर के पृष्ठ 128 पर लिखा है कि सारिन्दा का आविष्कार गुरू अर्जुनदेव ने किया है। कानसिंह ने महानकोष के पृष्ठ 319 पर काफी को एक राग भी कहा है। इसके अतिरिक्त भाई कानसिंह ने काफी का अर्थ पीछे चलने वाला अनुचर, अनुगामी, छन्द का वह पद जो स्थाई हो और जिसे पीछे गाते समय और तुकें जोड़ी जाए जो मुड़ के गीत के ताल विश्राम पर आवे निरूपित किया है ।

डा0 गुरनामसिंह

डा0 गुरनाम सिंह ने अपनी पुस्तक Musical Study of Guru Nanak Bani , Page No. 108 में दक्षिणी रागों के बारे में लिखा है कि यदि "रामकली दक्षिणी महला 1 लिखा हो तो ऐसे रागों को दक्षिणी पद्धति का राग स्वीकारा जाए ।

डा0 गुरनामसिंह गुरमति संगीत अंक के पृष्ठ 67 पर लिखते हैं कि वर्तमान संगीत आचार्य 'जति' को इस तरह परिभाषित करते हैं कि जोड़ी पर दायां हाथ खुला बोल बजाए और बायां हाथ बन्द बोल बजाए ऐसी ताल प्रक्रिया को 'जति' का नाम दिया जाता है। इसलिए गुरू ग्रन्थ साहिब में दर्ज सिरलेख से भाव है कि राग बिलावल अधीन धिति के विशिष्ट विश्रामों को ध्यान में रखते हुए दसवें घर की लय में इस शबद का गायन करना है।

डा0 गुरनाम सिंह गुरमति संगीत अंक के पृष्ठ 69 पर लिखते हैं कि शबद गुरु का संचार संगीत द्वारा ही सम्भव है। ऐसा श्री गुरू ग्रन्थ साहिब की सम्पादना से स्पष्ट हो रहा है। इसलिए सिख धर्म में गुरमति संगीत के विशिष्ट रूप में श्री गुरू नानक देव जी से लेकर वर्तमान में श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी के अंग–संग विद्यमान है। इस वाणी के प्रकाश एवं बोध के लिए संगीत मुख्य संचार माध्यम के रूप में प्रयोग हो रहा है। गुरूमति संगीत के सिद्धान्त परम्परा के दर्शन श्री गुरू ग्रन्थ साहिब का रागात्मक सम्पादन और वाणी के भिन्न फरमानों उद्धरणों और संकेतों से किए जा सकते हैं। इसके साथ ही गुरू नानक देव जी से लेकर अब तक यह परम्परा कियात्मक रूप में सिख धर्म पैरोकारों के नित्य प्रति के आध्यात्मिक कर्म के अभिन्न अंग हैं। इस कियात्मकता ने भारतीय संगीत में विलक्षण और पहचान योग्य जगह बनाई है। इस

परम्परा ने अपनी पूर्वकालीन और समकालीन धार्मिक और संगीत परम्परा में से अनेक तत्त्वों और उपकरणों को गुरमति अनुशासन का धारणी बनाकर "गुरमति संगीत" नाम की विशिष्ट परम्परा के तौर पर स्थापित किया है ।

डा0 गुरनाम सिह "आदि ग्रन्थ राग कोष" के पृष्ठ–22 पर लिखते हैं कि गुरू अमरदास जी ने 24 रागों में अपनी वाणी को "गुरमति संगीत– के अन्तरगत निबद्ध किया। राग रामकली में उनकी प्रसिद्ध रचना "आनंद साहिब" अंकित है। कानूने मौसीकी के अनुसार उन्होंने ही "सिरदा" नाम से राग का आविष्कार किया।

डा0 गुरनाम सिंह अपनी पुस्तक "संगीत निबंध" पृष्ठ 86–87 पर लिखते हें कि आदि ग्रन्थ की स्थापना से 'गुरमति संगीत का' विधिवत् विकास हुआ ।

डा0 गुरनाम सिंह "आदि ग्रन्थ राग कोष" के पृष्ठ 23 पर लिखते हैं कि गुरू तेगबहादुर जी के श्लोक एक विशेष धुन पर आज भी गाए जाते हैं। जिनसे श्रोतागण मुग्ध हो जाते हैं। जौनपुर के एक रागी को गुरू जी ने मृदंग वाद्य भेंट स्वरूप दिया जो कि आज भी वहाँ पर सुरक्षित है उस स्थान को "गुरुद्वारा संगीत मृदंगावली" कहा जाता है।

डा0 गुरनाम सिंह गुरमति संगीत अंक के पृष्ठ 63 पर गुरमतिसंगीत की विलक्षणता पर लिखते हैं ओर गुरमति संगीत के सब पहलूओं पर अपने सुलझे हुए विचार रखते हुए लिखते हैं कि उक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि यह परम्परा केवल सिक्ख धर्म के कियात्मक संगीत / कीर्तन के जैसी प्रणाली नहीं, अपितु इसके विशिष्ट सिद्धान्त, स्वरूप प्रकृति है। दस गुरू साहिबानों के उपरान्त 'श्री गुरु ग्रन्थ साहिब' को गुरुगद्दी बख़्श देना महज इत्तफाक नहीं अपितु शब्द गुरू के केन्द्रीय गुरमति सिद्धान्त को स्पष्ट रूप में मान्यता देना है। इस शब्द गुरू का संचार संगीत द्वारा ही सम्भव है। ऐसा 'श्री गुरुग्रन्थ साहिब' की सम्पादना से स्पष्ट हो रहा है। इसलिए सिक्ख धर्म में संगीत गुरमति के विशिष्ट रूप में श्री गुरू नानक देव जी से लेकर वर्तमान में "श्री गुरू ग्रन्थ साहिब" जी के अंग संग विद्यमान है। इस वाणी के प्रकाश एवं बोध के लिए संगीत मुख्य संचार माध्यम के रूप में प्रयोग हो रहा है। 'गुरमति संगीत' की सिद्धान्त परम्परा के दर्शन श्री गुरुग्रन्थ साहिब की रागात्मक सम्पादन और वाणी में भिन्न–भिन्न फरमानों, उद्धरणों और संकेतो से किए जा सकते हैं। इसके साथ ही श्री नानक देव

जी से लेकर अब तक यह परम्परा क्रियात्मक रूप में सिक्ख धर्म के पैरोकारों के नित्य प्रति के आध्यात्मिक कर्म के अभिन्न अंग हैं। इस क्रियात्मकता ने भारतीय संगीत में विलक्षण और पहचान–योग्य जगह बनाई है। इस परम्परा में अपनी पूर्वकालीन और समकालीन धार्मिक और संगीत परम्पराओं में से अनेक तत्त्वों और उपकरणों को गुरमति अनुशासन का धारणी 'गुरमति संगीत' नाम की विशिष्ट परम्परा के तौर पर स्थापित किया है।

डॉ0 गुरणाम सिंह संगीत निबन्धावली पंजाबी युनिवर्सिटी पब्लिकेशन ब्योरो , पृ0 136 पर लिखते हैं कि तीन स्थानों की प्राप्ति हो सकती है इसलिए 'मूर्च्छना' का प्रयोग आसानी से हो सकता है। मुर्च्छनाएं 21 होती हैं। सात मन्द्र, सात मध्य और सात तार सप्तक की।

प्रो0 गीता पैन्तल

प्रो0 गीता पैन्तल अपनी पुस्तक पंजाब की संगीत परम्परा के पृष्ठ 11 पर लिखती हैं कि गुरू नानक देव जी को संगीत का ज्ञान देवी सम्पदा के रूप में प्रापत हुआ। गीता पैन्तल इसी पुस्तक के पृष्ठ 88 पर लिखती हैं कि गुरू नानक देव ने स्वयं कहा है जैसी मै आवै खसम की वाणी, तैसडत्रा करी गियानु वे लालो अर्थात् मुझे मालूम नहीं गाते कैसे हैं। मै तो जैसा ऊपर वाला आदेश देता है वैसा ही गाता हूं।

पृष्ठ 114 पर गीता पैन्तल लिखती हैं गुरू साहिब ने क्रियात्मक रूप में उतरी और दक्षिणी पद्धति के रागों का प्रयोग किया। आपने अनेक गायन शैलियों और कवि रूपों का सदुपयोग किया जो पंजाबी साहित्य और भारतीय संगीत का उत्तम नमूना है। गुरू जी ने सबसे पहले श्री राम उच्चारा परन्तु उनका सबसे प्रिय राग 'आसा' था इसलिए 'आसा' राग में उन्होंने "आसा की बार" नामक लोभी कविता गाई जिसकी मर्यादा को संगीत के माध्यम से लोगों तक पहुंचाया और अपनी इसी किताब में लिखती हैं कि गुरू जी ने (गुरू नानक देव जी) गुरूवाणी का संगीतिक महत्व के साथ प्रचार किया। गुरू जी ने धार्मिक और कलात्मक तौर पर भारतीय संगीत की सुरक्षा की।

गीता पैन्तल इसी पुस्तक के पृष्ठ 118 पर लिखती हैं कि गुरू अंगद देव जी के दरबार में भाई सत्ता और बलवंडा के पुत्र भाई सहिजाद, भाई सददू भाई मददू नामक रवाबी कीर्तन करते थे।

गीता पैन्तल अपनी पुस्तक के पृष्ठ 90 पर लिखती हैं कि गुरू अमरदास जी ने विवाह और मौत के अवसरों पर कीर्तन करने का आदेश दिया। अपने पूर्ववर्ती गुरू साहिबान की वाणी और अपनी वाणी को संकलित करके अपने पौत्र सहस राम के द्वारा दो भागों में लिपिबद्ध करवाया।

गीता पैन्तल अपनी पुस्तक के पृष्ठ 127 पर लिखती हैं कि गुरू हरिगोविन्द साहिब जी राग में उच्चारित वाणी का कीर्तन श्रवण करते थे।

गीता पैन्तल अपनी पुस्तक के पृष्ठ 98 पर लिखती हैं कि गुरू गोबिन्द सिंह जी ने दसवें ग्रन्थ की रचना की जिसमें शब्द हजारे 24 अवतार के पद भी गायन की दृष्टि से उपयुक्त हैं और इनके ऊपर केवल रागों के नाम अंकित हैं यह पद रागों में रचित हैं :– परज, सोरठ सूही, रामकली, धनाश्री, सारंग, तिलंग, केदारा, देवगन्धारी कल्याण, मारु, भैरव, गौरी, काफी, अड़ाना, बसन्त आदि।

गीता पैन्तल अपनी पुस्तक के पृष्ठ 100 पर लिखती हैं कि गुरू गोबिन्द सिंह जी के दरबार में बहुत सारे संगीतकार और वादक भी थे जो रवाब और तऊस के साथ कीर्तन करते थे और इसी पुस्तक के पृष्ठ 32 पर लिखती हैं कि राग क्रिया के माध्यम से संगीत की साधना के साथ सिख धर्म की ईश्वर उपासना पूर्ण होती है। सिख गुरू साहिबान ने संगीत को दरबारी वासनाओं से निकालकर भक्ति भावना की तरफ ले जाकर, समाज के प्रति उपकार किया, और उसके साथ भारतीय संगीत का निखरा हुआ रूप हमारे सामने आया। गायन और वादन कला–कीर्तन के रूप में आज भी गुरूद्वारों में प्रतिष्ठित है। पृष्ठ 146 पर लिखती हैं कि गुरमति संगीत के अन्तर्गत स्वतन्त्र भारत में जिन रागियों रबाबियों़ ने योगदान दिया है उनके नाम वह इस प्रकार से लिखती हैं – सरमुख सिंह, सनमुख सिंह, भाई शान सिंह एकटाबाद, हरदत्तसिंह, जगनसिंह, ज्वालासिंह, भाई सुमंदसिंह, खड्गसिंह, कुन्दनसिंह, लाभसिंह, प्रतापसिंह, भाई सनता सिंह, पूरनसिंह, प्रेमसिंह, शेरसिंह, शामसिंह, सुजानसिंह, भाई सुन्दर सिंह, ज्ञानसिंह अलमस्त, गोपालसिंह, हरबंस सिंह, धर्मसिंह जख्मी, भाई बख्शीशसिंह, अवतार सिंह, शमशेरसिंह जख्मी, रणजीतसिंह, भाई रणजोध सिंह, गुरचरण सिंह, अवतारसिंह, बलदेवसिंह, सतनामसिंह इत्यादि।

(इसी पुस्तक के पृष्ठ 134–135 पर वह लिखती हैं कि – गुरू नानक देव जी

के प्रथम कीर्तनकार सहयोगी के रूप में भाई भरदाना का नाम आज भी अमर है ढाढ़ी परम्परा के लोग गायन वादन के कार्य में अपनी गुजर–बसर करते थे। यह लोग बेशक इस्लाम धर्म में पैदा हुए परन्तु फिर भी इन्होंने "गुरमति संगीत" में पूरी श्रद्धा व आस्था के साथ कार्य किया।)

इसी पुस्तक के पृष्ठ 121–123 पर लिखती हैं कि गुरू अर्जुनदेव जी ने गुरूवाणी द्वारा "राग विद्या" सीखने की प्रेरणा दी। वे खुद एक प्रवीण संगीतकार थे इसके कई उदाहरण सिख इतिहास में उपलब्ध हैं। सारंदा वाद्य का आविष्कार भी इन्होंने किया। उन्होंने शब्दों की (पदों की) धुन रचना, पर विशेष ध्यान दिया। और इसी पुस्तक के पृष्ठ 120–121 पर लिखती हैं कि गुरू रामदास जी ने 31 रागों में 679 पदों की रचना की जो कि आदि ग्रन्थ में उपलब्ध है।

डा0 अजीत सिंह पेन्टल

इन्होंने अपनी पुस्तक 'द नेचर द पलेस आफ म्यूजिक' के पृष्ठ 372 पर लिखा है कि गुरू अमरदास जी के दरबार में भाई उग्रसेन, नखोरी, भाई पान्दा और बूला कीर्तन किया करते थे। भाई दीपा, भाई बूला और भाई नारायण दास को गुरू अंगद देव जी के दरबार में कीर्तन करने का अवसर प्राप्त हुआ। यह अपनी पुस्तक Nature and Place of Music के पृष्ठ 126 पर लिखते हैं कि एक विज्ञान के मतानुसार ख्याल राग का प्रकार न होकर उस काल में प्रचलित कोई गायन पद्धति अथवा लोकगीत प्रकार है और अपनी पुस्तक Nature and Place of Music के पृष्ठ 512 पर लिखते हैं कि वर्तमान काल के ढाढ़ी गायक गुरू ग्रन्थ साहिब में दिए गए संकेत के आधार पर वार गायन करना भूल गए हैं और उनके स्थान पर विभिन्न लोक धुनों पर आधारित , खारा साका, साका मातिया, सोहनी, वार दुल्ला, वार सियालकोटि आदि वारों को ही गाते सुनाई देते हैं और अपनी पुस्तक Sikh Devotional Music and its affinity with Indian Classical Music के पृष्ठ 407 पर लिखते हैं कि भाई लाल अमृतसरी के नाम से प्रसिद्ध थे आपने संगीत सेवा कीर्तन गायन से आरम्भ की थी लेकिन उसकी परिणति शास्त्रीय गायन से हुई। कीर्तनकार के रूप में आपने अत्यधिक प्रतिष्ठा प्राप्त की थी और आपका शब्द गायन प्राचीन रीति के अनुसार ध्रुवपद विद्या पर आधारित था युवावस्था में ही आपने ग्वालियरके सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ पण्डित

शंकरराव का शिष्यत्व ग्रहण किया और उसके पश्चात् आपने कीर्तन करना छोड़कर शास्त्रीय संगीत गाने लगे और इसी पुसतक के पृष्ठ 330 पर लिखते हैं कि तबले की उत्पत्ति से पहले पंजाब में केवल मृदंग या पखावज़ ही कीर्तन के कार्य्रों के लिए प्रयोग किया जाता था। मध्यकाल में पखावज़ एक प्रसिद्ध वाद्य था और यह 'कण्ठ संगीत', 'बीन', 'रवाब', वीणा और सुरसिंगार की संगति के लिए प्रयोग किया जाता था। रबाबी और सिक्ख रागी के गायन के साथ पखावज़ या मृदंग की संगति ही पसन्द करते थे क्योंकि शब्द गीत रचनाएं प्रचलित ध्रुपद, धमार और सादरा गीत प्रकारों पर आधारित होती थी। इसलिए इन गीतों के साथ पखावज या मृदंग की संगति से सिक्ख भक्ति संगीत की प्रभावोत्पादकता में वृद्धि हो जाती थी।

डा0 दविन्दर सिंह विद्यार्थी

डा0 दविन्दर सिंह विद्यार्थी अपनी पुस्तक गुरू वाणी के राग संबोध और सार्थकता के पृष्ठ 43 में दक्षिणी रागों के बारे में जिक्र करते हुए लिखा है यदि दक्षिणी शब्द महला एक से पहले आया होता, लेकिन यंह आया महला एक के संकेत बाद इसलिए इसको राग का सूचक समझना उचित नही।

डा0 दविंदर सिंह आदिकालीन पंजाबी साहित्य अमृतसर 1983ई0 के पृष्ठ 170 पर लिखते हैं कि भकत कबीर के श्लोक व पदों का गायन आज भी पंजाब में लोकप्रिय है, गुरू अर्जुनदेव जी ने अपने पूर्ववर्ती गुरूजनों और भकत जयदेव, कबीर फरीद आदि की वाणी को आदि ग्रन्थ में संकलित किया । भक्त कबीर की रचनाएं अन्य भक्तों से अधिक है । कालक्रम में भी उनका नाम प्रथम और आदि ग्रन्थ में भी भक्त वाणी के अन्तर्गत उनका नाम अग्रगण्य है । और पृष्ठ 215 पर लिखते हें कि आदि ग्रन्थ में त्रिलोचन के चार पद उपलब्ध हैं एक श्री राग में, एक धनाश्री और दो गुजरी राग में।

डा0 चरणसिंह

डा0 चरण सिंह जी ने श्री गुरू ग्रन्थ वाणी ब्यौरे में लिखा है जति, गति, सपथ यह तीनों जोडत्री के करतब हैं जिस वक्त दायां हाथ सत का काम करे अथ्रात् गत की तरह उगुलियों के बीच जोड़ी के किनारे और बीच में काम करे और जब दोनो हाथ की उंगलियां हरफ (अक्षर) निकाले और बायां हाथ जेसा खुलासा बजाए तो उसे जति

कहते हैं।

डा0 चरणसिंह "वाणी ब्यौरा" के पृष्ठ 89 पर लिखते हैं कि देशी भाषा में रचित गीत रूप में यश गाने का नाम ही "वार– गायन है युद्धों में ढाढ़ी गायक शूरवीरों के उत्साहवर्द्धन के लिए जो गीत गाते थे, उन्हें ही वार कहा जाता था।

भाई वीरसिंह सन्थया

भाई वीरसिंह ने अपने ग्रन्थ 'गुरु ग्रन्थ कोष' पृष्ठ 302 में लिखा है तीन ग्राम होते हैं ग्राम घर से बनता है इसलिए तीन ग्रामों के स्वरों के स्थानों से घरु हैं घरु एक से भाव गाए जाने वाले राग के प्रधान स्वर की संख्या का संकेत है।

भाई वीरसिंह अपनी पुस्तक "श्री गुरू ग्रन्थ साहिब" पहली पोथी के पृष्ठ 182 पर लिखते हैं कि बहुत से विद्वानों ने 'घरु' को ताल के रूप में स्वीकार किया है। घरु पद के आगे जो 'अक' हो उसके अनुसार समझ लेना चाहिए की शब्द उस ताल में गाना है क्योंकि स्वर, ताल, लय अंग न्यास, ग्रह यह बातें राग का स्वरूप प्रकाशित करती हैं। इसलिए जितने–जितने ताल में जो–जो राग के शब्द में बाणी ऊचारी वही–वही गाने के लिए ताल का पता लिखा है और अपनी पुस्तक "श्री गुरू ग्रन्थ कोष के पृष्ठ 744 पर लिखते हैं कि मुन्दावणी का अर्थ है 'बुझारत, अड़ाउनी', जिसमें भाव या अर्थ गुप्त बंद करके या छुपा के रखा हो। ऐसी बात जो जल्दी में किसी की समझ में न आ सकती हो।

डा0 जागीर सिंह

डा0 जागीरसिंह अपनी पुस्तक "सिख गुरू साहिबान की वाणी और संगीत का सम्बन्ध" के पृष्ठ 41 पर लिखते हैं कि गुरू अमरदास जी की सगीतबद्ध काव्य रचना करते थे। आप जी रामकली में उच्चारित की गई वाणी, आनन्द साहिब बहुत प्रसिद्ध है।

प्रो0 तारा सिंह

इन्होंने अपनी पुस्तक वादनकला के पृष्ठ 273 पर लिखा है कि गुरू जी के परम प्रिय मित्र मर्दाना की न तो कोई समाधि है और न कोई स्मृतिचिन्ह करतार पुर में है।

इसी पुस्तक के 270 पृष्ठ पर प्रो0 तारा सिंह जी लिखते हैं मर्दाना के रवाब वादन की कला में दक्षता गुरू जी की शिक्षा से प्राप्त हुई थी।

प्रो0 तारा सिंह अपनी पुस्तक 'वादनकला' के पृष्ठ 281 पर लिखते हैं कि कुछ लेखक सत्ता और वल्वड को मर्दाना का रिश्तेदार मानते हैं और कुछ लेखक इन दोनों को मर्दाना का पोत्र मानते हैं।

प्रो0 तारा सिंह अपनी पुस्तक 'वादनकला' के पृष्ठ 270 पर लिखते हैं कि गुरूनानाक देव ने अपनी सारी रचनाओं को रागों में उच्चारित करके संगीत और वाणी द्वारा संसार को सत्यमार्ग दिखाया।

प्रो0 तारा सिंह अपनी इसी पुस्तक के 272 पृष्ठ पर लिखते हैं कि गुरू नानक देव जी ने 976 शब्दों की रचना 26 रागों में की जो साहिब श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में दर्ज है। उन्होंने मार्गी व देशी संगीत का सम्मिश्रण करके नई संगीत पद्धति को प्रभु भक्ति का मुख्य साधन बनाया।

प्रो0 तारा सिंह अपनी पुस्तक के पृष्ठ 283 पर लिखते हें कि गुरू हरगोविन्द सिंह जी के दरबार में भाई बाबक, भाई छबीला, भाई अब्दुला, भाई बनबाली और परशुराम जी मध्यात्मक पदर के महान् संगीतकार थे।

प्रो0 तारा सिंह अपनी इसी पुस्तक वादनकला के पृष्ठ 284 पृष्ठ पर लिखते हैं कि गुरू हरिराय और हरिकृष्ण जी बादशाह शाहजहाँ के समकालीन थे। आपने वाणी तो नहीं उच्चारी परन्तु गुरू नानक देव जी की चलाई हुई गुरमति कीर्तन–प्रणाली को विकसित करने के लिए ऊंचे आचरण वाले सिखों को कई स्थानों पर भेजा जिनमें भगवान फेरू गौड़ा का नाम वर्णन योग्य हैं।

इसी पुस्तक में पृष्ठ 286 पर लिखते हैं कि गुरू गोविन्द सिंह जी को संगीत का गहरा अध्ययन था। यह न केवल ब्रज भाषा, फारसी हिन्दी के महान कवि थे बल्कि संगीत के भी अच्छे ज्ञाता थे। भारतीय संगीत क्षेत्र में गुरू जी को बड़ा महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है और गुरू गोविन्द सिंह जी को केवल संगीत का ज्ञान ही नहीं था बल्कि संगीत का बहुत अध्ययन था। आपने ढोल, मृदंग, नगाड़े, सिंझी, तंती , राग, तान, तरंग, ताल,गीत आदि शब्दों का प्रयोग किया है।

प्रो0 तारा सिंह अपनी पुस्तक पर लिखते हैं कि गीतगोविन्द ग्रन्थ के अनेकों भाषाओं में अनुवाद हो चुके हैं। इसमें कुछ 24 अष्टपदी हैं। प्रत्येक रचना के ऊपर राग और ताल का शीर्षक है। प्रयोग किए राग इस प्रकार हैं – राग–मालव, गुजरी, बसन्त, रामकली, देवशाश्व, वैराडी, केदार, गुनकली गोडमालव भैरवी, देशी और विभास। जयदेव के दो पद गुजरी राग के अनतर्गत आदि ग्रन्थ में उपलब्ध हैं जो कि 'गुरमति संगीत' की शैली में आज भी गाये जाते हैं।

वादन कला के पृष्ठ 57 पर लिखते हैं कि गुरू नानक देव जी के द्वारा प्रयोग किए गये रागों की संख्या 26 मानी है। जब कि गुरू नानक देव के द्वारा प्रयोग किए गये रागों की संख्या डा0 गुरचरण सिंह मेहता ने अपनी पुस्तक "गुरमति सहित धार" के पृष्ठ 143 पर 19 मानी है और प्रो0 प्यारासिंह पदम ने अपनी पुस्तक रवाब पटियाला के पृशठ 271 पर 32 मानी है।

वादन कला के पृष्ठ 275 पर लिखते हें कि आदि ग्रन्थ में गुरू अमरदास जी के 907 पद व श्लोक उपलब्ध हैं। यह रचनाएं आज भी गाई जाती हैं। आनन्द साहिब उनकी विशेष लोकप्रिय रचनाएं हैं। सत्ता बलबनता, बुला और सादु–बादु नाम के कीर्तनकार इनके समकालीन थे। उनको भी गुरूवाणी संगीत की प्राप्ति गुरूजनों के आश्रय में हुई। प्रथम दो गुरूजनों ने गुरमति संगीत प्रथा को कायम रखा फिर उन्होंने उस प्रथा को और विकास किया। इन्होंने पंजाब के विभिन्न क्षेत्रों में 22 प्रचार केन्द्र (मांजी प्रथा) स्थापित किए और उनके 146 केन्द्र संचालकों को गुरू नानक संगीत प्रणाली की शिक्षा प्रदान की।

अपने गन्थ के पृष्ठ 280 पर प्रो0 तारा सिंह लिखते हैं कि गुरू अर्जुनदेव जी 30 मई 1606 ई0 को लाहौर में शहीद हुए। आदि ग्रन्थ में इनके सबसे अधिक पद 2216, शब्द 31 रागों में संकलित है।

वादनकला के पृष्ठ 282–283 पर लिखते हैं कि जिस कीर्तन संगीत की महान् परम्परा को गुरू नानक देव जी ने आरम्भ किया था उसका कमबद्ध विकास गुरू गोबिन्द सिंह जी तक हुआ केवल हरगोबिन्द, गुरू हरिराय, व गुरू हरिकृष्ण जी परिस्थितयों ने वाणी रचना का समय नहीं दिया परन्तु उनके दरबारों मे कीर्तन–प्रवाह जारी रहा।

वादनकला के पृष्ठ 286–287 पर लिखते हैं कि गुरू गोबिन्द सिंह जी ने अवधी भाषा में अनेकों ध्रुपदों की रचना की जिसमें से राग मल्हार का "ताल भरे जल पूरन सो" और देव गन्धार में "कान धुने गंवारन को" आज तक लोकप्रिय है यह रचनाएं टकसाली कीर्तनकारों से सुनी जा सकती है। गुरू गोविन्दसिंह जी के पश्चात् गुरमति संगीत परम्परा का विकास गुरूद्वारों व सिख समाज में हुआ इसका क्रमबद्ध विकास आज भी जारी है। और वादनकला के पृष्ठ 288–289 पर लिखते हैं कि डा0 अजीत सिंह पेन्टल ने गुरू गोविन्दसिंह जी के कुल 19 राग माने हैं 7 राग शब्द हजारे में 16 राग परसराम अवतार में। और अपनी पुस्तक वादनकला के पृष्ठ 272–273 पर लिखते हें कि भाई मर्दाना ने रवाब की शिक्षा भाई फरीदे से ली थी गुरू नानक देव जी के गायन के साथ भाई मर्दान रवाब वादन करता था। इनके दो श्लोक आदि ग्रन्थ के राग बिहागड़ा में उपलब्ध है। और पृष्ठ 28 पर लिखते हैं कि भाई मर्दाना का देहान्त अफगानिस्तान के दरिया कुरम के नजदीक 1534 ई0 को हुआ। सत्ता और बलवंडा भाई मर्दाने के पोते थे और वादन कला पृष्ठ 288–289 पर लिखा है कि "कानूने मौसीकी" पुस्तक के रचयिता ने पृष्ठ 306 पर इसका उल्लेख किया है कि तीसरी पातिशाही श्री गुरू अमरदास जी ने "सारंदा" साज का निर्माण किया। श्री गुरू अमरदास जी के दरबार में भाइ सत्ता और वलवड़ के अलावा ढला स्थान के निवासी भाई पान्धा और बूला रबाबी गुरूवाणी का कीर्तन करते थे और अपनी पुस्तक वादन कला के पृष्ठ 270 पर लिखते हें कि सिख धर्म के मानने वालों में ये मत प्रचलित रबाब के इज़ाद श्री गुरू नानक देव जी ने की और उन्होंने ही मरदाने को रबाब बजाने की जाँच सिखाई।

प्रो0 तारासिंह अपनी पुस्तक अमृत कीर्तन के पृष्ठ 7 पर लिखते हैं कि गुरू और संगत की उपस्थिति में कीर्तनकार जब तन्त्री साजों के द्वारा निर्धारित रागों में गुरूवाणी का स्वर ताल बद्ध रसीला और अखण्ड कीर्तन करते हैं जिसमें रहाऊ एवं पदों के अंकों का विशेष ध्यान रखा गया हो, जो प्राणी मात्र के मन को नाम सिमरण के द्वारा सहज अवस्था के माध्यम से अकाल पुरुष से जोड़े, उसे गुरूवाणी संगीत की संज्ञा दी जा सकती है।

पाद–टिप्पणियां

1. आदि ग्रन्थ सोरठि, महला पांचवां, पृ0 – 628
2. वही, वही, पृ0 – 628
3. वही, रामकली महला – 3, पृ0 – 920.
4. आदि ग्रन्थ, महला पहला, पृ0 – 150
5. वही, वही, पृ0 – 148
6. भाई गुरूनाम की वारे : वार पहली पोड़ी – 24
7. आदि ग्रन्थ, महला पहला, पृ0 – 722
8. भाई गुरूदास जी वारां : चार पहली, पोहड़ी 21
9. वारां भाई सूरदास : वार पहली, पोड़ी – 30
10. वारां भाई गुरूदास : वार पहली पोड़ी – 30
11. वही, वार पहली पोड़ी – 30
12. वारां भाई गुरूदास : वार पोड़ी, पोड़ी – 24
13. वंधोपाध्याय श्री पाद : संगीत भाश्य : पृ0 268
14. चौधरी विमलाकान्त राय : भारतीय संगीतकोश, पृ0 – 63
15. ब्रह्मा चतरवेदी ने मदेशवरः निबन्ध संगीत (सम्पादन लक्ष्मी नारायण गर्ग पृष्ठ –1)
16. जोशी उमेश : भारतीय संगीत का इतिहास , पृ0 – 3,
17. .....वही.....पृ0 2
18. वही .....पृ0 9–10
19. ...वही ..... पृ0 4
20. बंधोपध्याए श्रीपद संगीत भाश्य, पृ0 268
21. चतरवेदी नर्मदेशवर : निबन्ध संगीत ; संपादक, लक्ष्मी नारायण गर्ग , पृ0)



गुरमति संगीत का ऐतिहासिक विकास

ईश्वर का स्मरण करने और संसार से ऊपर उठने के लिए संगीत की ऐसी विधाएं समाज में अधिक लोकप्रिय हुई हैं जिनमें राग द्वेष छोड़कर सामाजिक प्रेम, सद्‌भाव और एकता का सन्देश हो। प्रत्येक धर्म में ईश्वर को प्राप्त करने अथवा ईश्वर की कृपा उपलब्ध करने के लिए गद्य और पद्य में प्रार्थनाएं मिलती हैं। दिव्य शक्ति से सम्पन्न होकर जो जीवात्मायें पृथ्वी पर अवतरित हुई उन सभी ने संगीतमय प्रार्थनाओं के जरिए ईश्वर भक्ति का मार्ग प्रशस्त किया है।[1]

भारत एक ऐसा देश है, जिसमें संगीत की अनेक पद्धतियां प्रचलित हैं। 12वीं अथवा 13वीं शताब्दी तक देशी और मार्गी प्रणालियाँ प्रचलित रही इसके पश्चात् उत्तरी और दक्षिणी प्रणालियाँ प्रचलित हुई, जो अपने–अपने क्षेत्रों में आज तक प्रचलित हैं। "वास्तव में दोनों प्रणालियों के मूल सिद्धान्तों में कोई अन्तर नहीं है।"[2] क्योंकि भारतीय संगीत में इतनी बड़ी भिन्नता होते हुए भी इसका मौलिक आधार एक है।[3] शैलीगत भिन्नता के कारण ही, दोनों को अलग–अलग विषय के रूप में मान्यता प्राप्त है।

आधुनिक काल में भी पद्धतियों अथवा शैलियों की विकास परम्परा जारी है। जिसके परिणाम स्वरूप रवीन्द्र संगीत (टैगोर म्यूजिक) का अलग अस्तित्व कायम है। टैगोर म्यूजिक की भिन्नता का कारण यह है कि – "वे अपने गीतों को अपनी विशेष धुनों पर गाते थे। इसी से टैगोर म्यूजिक की अलग शैली बन गई।[4]

स्पष्ट है कि टैगोर म्यूजिक को भी शैली–भिन्नता के कारण ही मान्यता दी गई है। शैली भिन्नता के कारण ही भरतनाटयम् एवं कत्थक नृत्य की भिन्न विषय के रूप में मान्यता है। इसी प्रकार "गुरमति संगीत" (गुरवाणी संगीत) भी शैली भिन्नता के कारण अलग विषय के रूप में स्थापित है।

इस क्षेत्र के प्राचीन आचार्य , प्रो0 तारा सिँह जी ने स्पष्ट लिखा है कि —

गुरूवाणी संगीत कोई अलग संगीत नहीं , भारतीय संगीत का ही अटूट अंग है। इसका मूल आधार भारतीय ही है। परन्तु इसकी कुछ मौलिक विशेषताएं भी हैं। जिससे इसने भारतीय संगीत में एक अलग स्थान प्राप्त कर लिया है।[5]

गुरू जी ने और उनके हजूरी रागियों, रबाबियों ने गुरूवाणी को ऐसी धुनों में निबद्ध किया गया जो दूसरी कीर्तन शैलियों से भिन्न थी। यह भिन्नता इसलिए भी है कि इन धुनों का प्रमुख आधार प्राचीन रागों व लोक धुनों पर है। आज भी गुरूवाणी को फिल्मी धुनों पर गायन करना वर्जित है। इसलिए ये धुनें अलग हैं और इनकी शैली भी अलग है।

गुरूवाणी संगीत (गुरमति संगीत) आज एक विषय के रूप में मान्यता प्राप्त कर चुका है। क्योंकि मध्यकालीन संत संगीतकारों की लगभग सभी रचनाएँ संगीतिक तत्वों से भरपूर हैं। उनमें से सिक्ख गुरूओं ने अपनी रचनाओं को, अपनी धुनों को राग बद्ध करके, एक ऐसी शैली को प्रचलित किया था, जिसे आज हम 'गुरूवाणी संगीत' कहते हैं।[5] इसे ही भाई वीर सिँह जी, डा0 चरण सिँह जी एवं डा0 बलबीर सिँह जी ने 'गुरमति संगीत कहा है और इसे भाषा, विचारधारा, उद्देश्य और संगीतिक पक्ष से अलग माना है।[6]

सन् 1957 ई0 में 40वीं हिंद सिक्ख ऐजुकेशनल कान्फ्रैंस के समागम में सबजैक्ट कमेटी के प्रोफ़ैसर (प्रिंसीपल) सतवीर सिंह जी का इस प्रस्ताव पर विचार विमर्श हुआ कि पंजाब का इतिहास और गुरमति संगीत को पंजाब विश्वविद्यालय में एक भिन्न विषय के रूप में मान्यता दिलवाई जाए, जिस पर यह निर्देश मिला कि प्रथम — "गुरमति संगीत पर अब तक हुई खोज़" उपलब्ध कराई जाए, तब यह कार्य हो सकता है। चीफ़ खालसा दीवान अमृतसर ने उपरोक्त विषय पर पुस्तक प्रकाशित कर दी।[7]

"गुरमति संगीत" विषय पर अब तक लगभग 200 पुस्तकें, पंजाबी, हिन्दी व अंग्रेजीं में प्रकाशित हो चुकी हैं। पंजाबी युनिवर्सिटी पटियाला ने इस क्षेत्र में सबसे अधिक योगदान दिया है।

'गुरमति संगीत' के क्षेत्र में अब तक भाई वीरसिँह, भाई काहन सिँह नाभा, डा0 तारनसिँह, ड़ा0 सुरिन्द्र सिँह कोहली, डा0 शेरसिंह, डा0 सुरैण सिँह विबलसु, डा0 अजीत सिँह पेंटल, डा0 प्यारा सिँह पदम्। सू0 जोगिन्द्र सिँह सोडी एवं डा0 दर्शन सिँह नरुला के नाम विशेष वर्णन योग्य हैं।

अब तक हज़ारों रागियों, रबाबियों, ढाडियों एवं शास्त्रीय संगीतकारों ने गुरमति संगीत की साधना की है। करोड़ों लोगों के हृदय को अपनी मधुर आवाज और कला से आनंदित किया है। गुरूजनों ने संगीत के माध्यम से अमन, शान्ति व कल्याणकारी भावना का सन्देश दिया। आज भी पंजाब में गुरूवाणी संगीत की लोकप्रियता शिखर पर है। गुरू नानक देव युनिवर्सिटी, अमृतसर एवं पंजाबी युनिवर्सिटी, पटियाला ने बी0ए0 तथा एम0ए0 के पाठयक्रम में इसे स्थापित किया है। पंजाब स्कूल ऐजुकेशन बोर्ड ने सन् 1991 मे ही इसे स्कूलों के पाठ्यक्रम में शामिल कर लिया था। पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ में भी निकट भविष्य में इसे मान्यता प्राप्त होने की पूरी सम्भावना है। इसीलिए गुरमति सगीत के ऐतिहासिक विकास पर दृष्टिपात करना आवश्यक हो गया। इसे तीन भागों में इस प्रकार विभाजित किया है –

1. पूर्व काल (आदि ग्रन्थ से) 12वीं से 15वीं शताब्दी ।
2. आदि ग्रन्थ रचना काल (16वीं से 18वीं शताब्दी) ।
3. दशम ग्रन्थ एवं आधुनिक काल (18वीं से 21वीं शताब्दी) ।

पूर्व काल (आदि ग्रन्थ)

आदि ग्रन्थ के पूर्व काल में जयदेव, बाबा फरीद, भक्त कबीर, त्रिलोचन, नामदेव, रामानन्द, सधना, सैन, रविदास एवं भक्त पीपा की वह वाणी जो आदि ग्रन्थ में संकलत है, वह गुरमति संगीत के अंतर्गत गाई जाती है। आदि ग्रन्थ का रचना काल गुरू नानक देव जी से आरम्भ होकर नौवें गुरू तेग बहादुर जी तक माना जाता है, जिसमें पाँचवें गुरू अर्जुन देव जी का विशेष महत्त्व है। क्योंकि उन्होंने ही आदि ग्रन्थ का सम्पादन–प्रबन्ध अपने हाथों में लेकर भाई गुरूदास से लिखवा कर एक ग्रन्थ के रूप में इसे स्थापित किया।

दशम् ग्रन्थ एवं आधुनिक काल

गुरू गोबिन्द सिँह जी द्वारा रचित दशम् ग्रन्थ की वाणी जो 'गुरमति संगीत' के अन्तर्गत् गाई जाती है, इसके इलावा रागियों, रबाबियों, कीर्तनकारों एवं शिरोमणि गुरूद्वारा प्रबन्धक कमेटी की मर्यादा में स्वीकृत वाणी गाई जाती है, उसकी व्याख्या और जानकारी इस काल के अन्तर्गत मानी जाती है।

आदि ग्रन्थ पूर्वकाल

जयदेव–12वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में जयदेव ने 'गीत गोविन्द' ग्रन्थ की रचना की। जयदेव एक प्रसिद्ध कवि और संगीतकार था, जिसे उत्तर भारत का प्रथम गायक होने का मान प्राप्त है। 'गीत गोविन्द' में राधा–कृष्ण सम्बन्धी प्रबन्ध गीत हैं, जो आज भी राग ताल में गाए जाते हैं। जयदेव वीरभूमि ज़िले के केंडुला गाँव (बंगाल) का निवासी था जिसके जन्म स्थान पर प्रत्येक वर्ष संगीत समागम होता है।[9]

'गीत गोविन्द' ग्रन्थ के अनेकों भाषाओं में अनुवाद हो चुके हैं। इसमें कुल 24 अष्टपदी हैं। प्रत्येक रचना के ऊपर राग और ताल का शीर्षक है। प्रयोग किए गए राग इस प्रकार हैं –

राग– मालव, गुज्जरी, बसंत, रामकली, देवशाख, बैराड़ी, केदार, गुणकली, गौड़मालव, भैरवी,देशी और विभास। जयदेव के दो पद गुजरी राग के अन्तर्गत, आदि ग्रन्थ में उपलब्ध हैं जो कि गुरमति संगीत की शैली में आज भी गाए जाते हैं।[10]

बाबा फरीद (1173–1265)

साहित्यिक दृष्टि कोण से ज़िला फ़रीद को इस बात का मान हासिल है कि इसके सदर मुकाम का नाम पंजाबी साहित्य के पितामह शेख फ़रीद शकरगंज पर रखा गया है। यह पंजाबी के प्रथम कवि माने जाते हैं।[11] आदि ग्रन्थ में बाबा फ़रीद के 112 श्लोक और चार शब्द (पद) उपलब्ध हैं जिन्हें "गुरमति संगीत" शैली में गाया जाता है। बाबा फरीद की वाणी का गायन आज भी पंजाब में लोकप्रिय है।

भक्त कबीर (1398–1493)

आदि ग्रन्थ में भक्त कबीर के 224 पद और 247 शब्द श्लोकों के अलावा, बाबन अक्षरी, पंद्रह तिथि और सतवार गौड़ी राग में है।[12] भक्त कबीर के श्लोक व पदों का गायन आज भी पंजाब में लोकप्रिय है। गुरू अर्जुन देव जी ने अपने पूर्ववर्ती गुरूजनों और भक्त जयदेव कबीर, फ़रीद, आदि की वाणी को आदि ग्रन्थ में संकलित किया। भक्त कबीर की रचनाएं अन्य भक्तों से अधिक हैं। काल क्रम में भी उनका नाम प्रथम और आदि ग्रन्थ में भी "भक्त वाणी" के अर्न्तगत उनका नाम अग्रगण्य है।[13]

त्रिलोचन

प्रभाकर माचवे ने त्रिलोचन को मराठी कवियों में कोई स्थान नहीं दिया परन्तु इनका सम्बन्ध महाराष्ट्र से ही माना जाता है। यह नामदेव के समकालीन थे। आदि ग्रन्थ में दोनों के संवाद संकेत मिलते हैं। आदि ग्रन्थ में इनका नाम त्रिलोचन अथवा तिलोचन भी मिलता है। आप ज़िला शोलापुर में संवत् 1324–25 में, वैश्य परिवार में पैदा हुए, आदि ग्रन्थ में इनके चार पद उपलब्ध हैं। एक श्रीराग, एक धनाश्री और दो गुज्जरी राग में।[14]

नामदेव (जीवनकाल 1270–1350)[15]

आदि ग्रन्थ में 61 पद संकलित हैं 16 नामदेओ, नामदेय, व नामदेई शब्दों का प्रयोग मिलता है।[17] इसलिए कई विद्वान् इन्हें महाराष्ट्र और पंजाब के दो नामदेव समझते हें। यथार्थ तो यह है कि महाराष्ट्र के नामदेव ही पंजाब में धर्म प्रचार के लिए गए थे।[18] आपका नाम 1271 ई0 (संवत् 1328) गाँव – नरसी बामनी, ज़िला सितारा का है और जीवनकाल (1271–1351 ई0) संवत् 1328–1403 माना जाता है।[19]

नामदेव की मातृभाषा मराठी थी। उनके पदों में ज्यादा शब्द मराठी और उसके बाद हिन्दी के हैं, इनकी माता का नाम गोणाई, पिता दामा सेठी और पत्नी का नाम रज़ाई था। पंजाब और महाराष्ट्र में प्रत्येक वर्ष इनका स्मृति–समारोह होता है। इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ भावार्थ 'रामायण' "रूक्मिणी स्वयंवर" कूट और अपभ्रंश (हजारों संख्या में) माने जाते हैं।[20] भक्त नामदेव जी के पद महाराष्ट्र एवं पंजाब दोनों में ही लोकप्रिय है। पंजाब मे उनकी रचनाएं "गुरमति संगीत" शैली में गाई जाती हैं। ये रचनाएं आदि ग्रन्थ में संगृहीत हैं।

सधना (13वीं शताब्दी)

आदि ग्रन्थ श्री गुरू ग्रन्थ साहिब– के पृष्ठ 848 पर सधना भक्त का केवल एक पद संकलित है। सधना , नामदेव का समकालीन माना जाता है। महान कोष कृत भाई काहन सिँह नाभा, पृष्ठ 152 के अनुसार, सधना सहेवाल (सिंध) का निवासी था। कसाई का काम करता था।[21] उसके उत्तरवर्ती भक्त रविदास ने सधने का नाम उच्चकोटि के भक्तों में लिया है। उसके जीवन सम्बन्धी ठोस सामग्री का अभाव है। एक हस्तलिखित अनुसार उसके दो पदों का वर्णन मिलता है।[22]

भक्त रविदास (1376ई0–1433ई0)

भक्त रविदास का कोई अलग ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। अधिकतर ग्रन्थकारों का मत है कि वे 14वीं शताब्दी में पैदा हुए। इनके 40 पद आदि ग्रन्थ में उपलब्ध हैं। 23 इनके पद आज भी शब्द गायकी के अनुसार गाए जाते हें। कई ग्रन्थों में इनका नाम रैदास, रविदास के रूप में भी मिलता है। यह काशी के निवासी और चमार जाति से समबिन्धत थे।[24] लगभग यह मत प्रचलित है कि रविदास रामानंद के शिष्य थे और कबीर के समकालीन थे, रविदास व कबीर के समकालीन होने का "कबीर–रैदास संवाद" से भी उदाहरण मिलता है।[25]

अनेक ग्रन्थकारों का मत है कि इनका जन्म रविवार को हुआ था इसलिए माता–पिता ने रविदास नाम रखा, परसराम चतुर्वेदी कृत "हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास" भाग चार, पृष्ठ 143 पर रविदास को बनारस का निवासी और पूर्व जन्म का ब्राह्मण लिखा है।

श्री रामानन्द (1366–1467ई0)

उत्तर भारतीय भक्ति परम्परा में रामानन्द नये सिरे से विकास लाये। रामानन्द के व्यक्तित्व का इतना प्रभाव था कि उनके अनेकों शिष्य जैसे – कबीर, धन्ना, पीपा, सुखा अनंतनंद सुरसुरा, पद्मावती, नरहरि, व अरहरि भी प्रसिद्ध हुए।[26]

रामानन्द ने हर एक वर्ग अथवा जाति के लिए भक्ति परम्परा के दरवाज़े खोल दिए। संस्कृत के स्थान पर लोक भाषाओं का प्रयोग किया। वह खुद ब्राह्मण था परन्तु उसने भक्ति के सम्बन्ध में क्रान्तिकारी कदम उठाए। उसने ब्राह्मण से लेकर चंडाल तक सभी को राम नाम का उपदेश दिया।[27] रामानन्द की रचनाओं और सम्प्रदाय सम्बन्धी अनेकों मतभेद हैं। उसके कई ग्रन्थों का उल्लेख तो मिलता है पर उनकी प्रमाणिकता संदिग्ध है। आदि ग्रन्थ में रामानन्द का केवल एक पद है।[28] रामानन्द की उपलब्ध हिन्दी रचनाओं का एक संग्रह नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा 1953 ई0 में प्रकाशित हो चुका है। रामानन्द भक्ति की सामाजिक चेतना में अग्रगण्य कवि था। इसलिए उसका उत्तरवर्ती भक्ति चिन्तन एक विशेष स्थान बनाता है।[29] आज भी पंजाब में रामानन्द की रचनाओं को "गुरमति संगीत" प्रणाली में श्रद्धा के साथ गाया जाता है।

सैन भक्त (14वीं शताब्दी)

सैनु के जीवन सम्बन्धी प्रामाणिक तथ्यों का अभाव है। अधिकतर ग्रन्थकारों ने उसे रामानन्द का शिष्य स्वीकार किया है। इसलिए उसका जीवनकाल 14वीं शताब्दी माना गया है। कहा जाता है कि वह बाधवगढ़ (रीवा) के राजा का नाई था। आज भी रीवा मे सैन वंशियों का अस्तित्व है।[30] भक्त रविदास ने — नामदेव, त्रिलोचन और सधने की तरह ही सैन का भी वर्णन अपनी रचनाओं में आदर सहित किया है। आदि ग्रन्थ में सैन की एक रचना 'आरती' के शीर्षक से संकलित है।[31] इसके अलावा हिन्दी की रचनाओं में भी एक स्थान उपलब्ध है।[32] नागरी प्रचारणी सभा की एक हस्तलिपी में सैन का एक पद गौड़ी राग में उपलब्ध है।[33]

पीपा (1426ई0) और धन्ना भकत (1416 ई0)

दोनों की रचनाओं को इस काल में शामिल किया गया है। बेशक इनकी रचनाओं के काल का कोई स्पष्ट प्रमाण उपलबध नहीं है परन्तु जन्म के आधार पर काल निश्चित किया जा सकता है। धन्ना भक्त के दो और पीपा का एक पद आदि ग्रन्थ में संकलित है। भक्त पीपा की रचनाओं का एक संग्रह "संत और उनकी वाणी", मुग़ल प्रकाशन, जैसलमेर से प्रकाशित हुआ है।[34]

धन्ना भक्त की आरती "गुरमति संगीत" में बड़ी लोकप्रिय है व आज भी पंजाब के गुरूद्वारों में गाई जाती है।

आदि ग्रन्थ रचनाकाल (1569 से 1675 ई0)

आदि ग्रन्थ की प्रतिष्ठापूर्वक स्थापना 1604 ई0 में हुई, परन्तु इसका रचनाकाल गुरू नानक देव से गुरू तेग बहादुर तक माना जाता है। इसमें नवम् गुरू जी की रचनाएँ (1621–1675) बोहद में संकलित हुई। सिक्ख धर्म में विशिष्ट 'कीर्तन शैली' के क्रमिक विकास का आरम्भ गुरू नानकदेव जी से हुआ। गुरू नानक देव जी की रचनाओं को पश्चात्वर्त्ती गुरूजनों ने "शैली और विचारधारा" के दृष्टिकोण से भी अपनाया और नानक नाम से ही वाणी रचना की। गुरू नानक देव जी से लेकर आधुनिक काल तक **इस परम्परा का संक्षिप्त इतिहास इस प्रकार है।**[35]

गुरू नानकदेव जी (1469–1539)

गुरू नानक देव जी ने अपने संगीतमय पदों से पंजाब प्रान्त को जगा दिया। पंजाब में उन्होंने संगीत में नई ताज़गी व चेतना जाग्रत की। गुरू नानक और उनके शिष्यों ने भारतीय संगीत का प्रचार–प्रसार पंजाब में खूब किया। देश की डांवा डोल परिस्थितियों ने, पंजाबी संगीत पर जो अज्ञानता का पर्दा डाल दिया था, उसे गुरू देव जी ने बड़ी कुशलता से ऊपर उठा दिया।[36]

प्रसिद्ध विद्वान् श्री दिलीप चन्द्र बेदी जी ने लिखा है कि – गुरू नानक देव जी के समय ब्रज भाषा में अनेकों प्रकार की रचनाएँ गाई जाती थी, जिनमें गोस्वामी, रामानन्द, कबीर, नामदेव की रचनाएँ भी प्रसिद्ध थी। जयदेव के संस्कृत अष्टपदी अनेकों रागों में गाई जाती थीं। गुरू जी ने अनेकों लोकप्रिय रागों में अपनी रचनाओं को निबद्ध करके गाया। इस काल में लोक गीत वाले रागों में भी अनेकों कीर्तन पद जनप्रिय हुए। गुरू जी ने इन रागों का खुलकर प्रयोग किया। उस समय में रबाब और मध्यम वीणा (सितार) वाद्य भी प्रचलित थे।[37]

गुरू नानक देव जी के प्रायोगिक रागों की कुल संख्या, कुछ साहित्यकारों ने 19 मानी है।[38] प्रो0 तारा सिंह ने यह संख्या 26 मानी है।[39] परन्तु प्रो0 प्यारासिंह पदम् ने उनके रागों की संख्या 32 मानी है।[40]

यथार्थ तो यह है कि आदि ग्रन्थ की विषय सूची में कवेल 31 प्रमुख रागों की सूची है, उपरागों अथवा रागों के प्रकारों की नहीं। अनेकों साहित्यकारों ने संगत के सूक्ष्म ज्ञान से अनभिज्ञ होने की वजह से अंतर्मुखी रचनाओं के ऊपर दिए गए उपरागों, मिश्र रागों अथवा राग–प्रकारों का वर्णन नहीं किया, जबकि प्रत्येक राग प्रकार, उपराग अथवा मिश्र अपने मूल राग से कुछ अलग तरह का (स्वर, चलन, विस्तार, वादी, सम्वादी) होता है। इसलिए उन्होंने आदि ग्रन्थ के कुल रागों की संख्या 31 मानी है। गुरू नानक देव जी ने 32 रागों मे अपनी वाणी को निबद्ध किया है। जिसमें उनकी 976 पद रचनाएं आज भी गाई जाती है व पंजाब में लोकप्रिय हैं। इन पदों की शैली गत संख्या "आदि भीड़ बारे" कृत प्रो0 साहिब सिंह पृष्ठ 148–152, शैलीगत व्याख्या डा0 तारन सिंह कृत "गुरू नानक चिन्तन ते कला" पृष्ठ 25–26 और संगीतिक व्याख्या डा0 दर्शन सिंह नरुला की पुस्तक गुरू नानक संगीतज्ञ, पृष्ठ 30–43 में देखी जा सकती है।[41]

गुरू अंगददेव जी (1504–1552 ई0)

इनका जन्म 'मत्ते दी सराय' गांव, ज़िला फ़रीदकोट, में 31 मार्च, 1504 में हुआ। पिता का नाम भाई फेरू था। गुरूगद्दी मिलने के पूर्व भाई लहणा के नाम से प्रसिद्ध थे।[42] आदि ग्रन्थ में 10 रागों के अन्तर्गत इनके 63 श्लोक उपलब्ध हैं। आज भी इनकी रचनाएँ गाई जाती हैं और पंजाब में लोकप्रिय है।[43] इन्होंने राग श्री, आसा, मांझ, बडहंस, सोरठी, सूही, रामकली, मारु, सारंग व मल्हार रागों में रचना की।[44]

गुरु नानक देव जी ने अपनी सारी वाणी, गुरु अंगददेव जी को सौंप दी थी, जिनसे यह वाणी गुरु अमरदास जी को प्राप्त हुई।[45]

उपरोक्त विचारों से यह स्पष्ट है कि प्रत्येक गुरु व्यक्ति की वाणी पश्चात्वर्ती गुरुजनों के गुरुगद्धी के समय प्रामाणिक रूप में उपलब्ध होती रही। आप 1538 ई0 को गुरूगद्धी पर सुशोभित हुए।

गुरू अमरदास (1479–1574ई0)

गुरू अमरदास जी का जन्म 'बासर के' जिला अमृतसर में हुआ। गुरू परम्परा के आप तृतीय गुरू थे। बत्तीस वर्ष तक आपने गुरू अंगददेव जी की सेवा की। नित्य प्रति आप दूर से जल लाकर गुरू जी को स्नान इत्यादि करवाते, फिर संगत की सेवा, कीर्तन श्रवण करते और गुरू आज्ञा को सर्वोपरि मानते थे। इनकी सेवा और नम्रता से प्रभावित होकर 1553ई0 को गुरू अंगददेव जी ने आपको गुरू गद्धी सौंप दी (डा0 मनमोहन सहगल कृत गुरू ग्रन्थ एक सभ्यसाचारक सर्वेक्षण, भाषा विभाग, पटियाला, पृष्ठ 25) गुरू जी ने 24 रागों में अपनी वाणी को "गुरमति संगीत" के अन्तर्गत निबद्ध किया। राग रामकली में उनकी प्रसिद्ध रचना 'आनन्द साहिब' अंकित है। कानूने मौसीक़ी के अनुसार उन्होंने ही "सिरदा" नाम, से राग का आविष्कार किया।[46]

आदि ग्रन्थ में आपके 907 पद व श्लोक उपलब्ध हैं। ये रचनाएं आज भी गाई जाती हैं। "आनन्द साहिब" उनकी विशेष लोकप्रिय रचना है। सत्ता, बलवंता, बुल्ला और सादु–बादु नाम के कीर्तनकार इनके समकालीन थे। इनको भी गुरू वाणी संगीत की प्राप्ति गुरूजनों के आश्रय में हुई। प्रथम दो गुरूजनों ने "गुरमति सगीत" प्रथा को कायम रखा फिर उन्होंने इस प्रथा का और विकास किया। इन्होंने पंजाब के विभिन्न

क्षेत्रों में 22 प्रचार केन्द्र (मंजी प्रथा) स्थापित किए और उनके 146 केन्द्र संचालकों को गुरू नानक संगीत प्रणाली की शिक्षा प्रदान की।[47]

गुरू रामदास जी (1534–1581 ई0)

गुरू रामदास जी ने 39 रागों में वाणी रचना की पड़ताल गायकी आपकी मौलिक गायन शैली है। "आसा दी वार" में गाए जाने वाले छंद आपकी प्रसिद्ध रचना है।[48] आपने 31 रागों में 679 पदों की रचना की जो कि "आदि ग्रन्थ" में उपलब्ध हैं।[49] बचपन में इनका नाम भाई जैठा था। 1574 ई0 को गुरूगद्दी के वारिस बने और तब गुरू रामदास जी के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनकी प्रसिद्ध रचना "आसा दी वार" आज भी गाई जाती है।[50] राग श्री, गौड़ी, बिहागड़ा, सौरठ, बिलावल, सारंग एवं कानड़ा में आठ वारे (बार गायन) भी आदि ग्रन्थ में संकलित है।

शब्द, अष्टपद, छंद, वार, श्लोक व पौड़ी आदि विभिन्न गीत शैलियां इनकी संगीत प्रतिभा की प्रामाणिकता की सूचक है।[51]

गुरू अर्जुनदेव जी (1563–1606 ई0)

1581 ई0 को गुरू गद्दी के वारिस बने। इस काल में ब्रज भाषा के कई पद रागों में गाए जाते थे। हित हरिवपंश, गोविन्द स्वामी, बैजुबावरा, स्वामी हरिदास, तानसेन, गोपाल नायक, इत्यादि गुणीजनों के गीत (ध्रुपद) इस काल में लोकप्रिय हुए। गुरू दरबार के कीर्तनकार सत्ता और बलवंडा ने भी ध्रुपद गायकी के आधार पर नई धुनें बना कर गुरूवाणी संगीत को लोकप्रिय बनाया। गुरू अर्जुनदेव एक महान्कवि और वाग्येकार थे, जिन्होंने समी गुरूजनों की एवं समकालीन संत संगीतकारों की प्रामाणिक रचनाओं को उनके निश्चित रागों में संपादित करके एक ही संग्रह "गुरू ग्रन्थ साहिब" आदि ग्रन्थ में संपादित किया। जिसके 1430 पृष्ठ 18"x27" साइज़ में प्रकाशित हैं।[52]

एक बार गुरू जी के दरबारी कीर्तनकार सत्ता व बलवंडा ने कीर्तन करना बन्द कर दिया। इस पर गुरू जी ने अपने सभी सिक्खों को संगीत सीखने व नित्य प्रति गुरूवाणी कीर्तन करने की प्रेरणा दी। अनेकों सिक्खों ने गुरू जी से कीर्तन शिक्षा पाकर "गुरमति संगीत" परम्परा के विकास में महान् योगदान दिया, जबकि इसके पूर्व गुरू

दरबारों में केवल मिरासी, डूम, बावी, व भट्ट इत्यसादि कीर्तन प्रस्तुत करते थे। गुरू जी की कृपा व प्रेरणा से सिख धर्म व समाज में गुरूवाणी संगीत की सार्वजनिक शिक्षा का युग आरम्भ हुआ।[53] गुरू जी 30 मई, 1606 ई0 को लाहौर में शहीद हुए । आदि ग्रन्थ में इनके सबसे अधिक पद 2216, शब्द 31 रागों में संकलित हैं।[54]

इस ग्रन्थ की स्थापना से गुरमति संगीत का विधिवत् विकास हुआ।[55] गुरूद्वारों में कीर्तन के साथ सारंदा और जोड़ी (तबला) का प्रयोग भी इसी काल में हुआ। इससे पूर्व रबाब, मध्यम वीणा (सितार) और तंबूरे (तानपुरे) का प्रयोग होता था। गुरू जी ने संगीत शिक्षा व प्रभु कीर्तन का प्रचार–प्रसार बड़ी लगन से किया।

आपने 44 रागों में पद रचना की कीर्तन संगीत परम्परा को आम लोगों में प्रचलित किया। इससे 'गुरमति संगीत' की लोकप्रियता आगे बढ़ी। आपके समय में भाई झांझ, भाई मुकुंद, भाई किदार, व सत्ता बलवंडा, प्रसिद्ध कीर्तनकार थे।[56]

गुरू जी ने गुरूवाणी द्वारा राग विद्या सीखने की प्रेरणा दी, वे खुद एक प्रवीण संगीतकार थे। इसके कई उदाहरण सिख इतिहास में उपलब्ध हैं। सारंदा वाद्य का आविष्कार भी इन्होंने किया। उन्होंने शब्दों (पदों) की धुन रचना (धारणा अथवा रीतों) पर विशेष ध्यान दिया।[57] धुन, राग कीर्तनकार, व चौकी इत्यादि राग–प्रबन्धों पर भी उन्होंने नई व्यवस्था को कायम किया, जो कि आज भी ज़ारी है।[58] अनेकों लेखकों ने गुरू जी के दरबार में 'तानसेन व अकबर' की संगीत श्रोता के रूप में चर्चा की है। गुरू जी ने कीर्तन संगीत पर केवल विचार ही नहीं, बल्कि इस सम्बन्ध में निर्देशन भी दिए। और इसे योजनाबद्ध ढंग से आगे बढ़ाने के लिए ठोस प्रयत्न भी किए।[59]

जिस कीर्तन संगीत की महान् परम्परा को गुरू नानक देव जी ने आरम्भ किया था, उसका क्रमबद्ध विकास गुरू गोविन्द सिंह जी तक हुआ केवल गुरू हरगोविन्द, गुरू हरिराय व गुरू हरिकृष्ण जी को परिस्थितियों ने वाणी रचना का समय नहीं दिया, परन्तु उनके दरबारों में कीर्तन प्रवाह ज़ारी रहा।[60] उपरोक्त विचारों से प्रो0 तारा सिँह (वादनकला कर्ता) भी सहमत हैं।[61]

गुरू तेगबहादुर जी (1621–1675 ई0)

इनका भारतीय संगीत में महत्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने 16 रागों में 118 पदों की

रचना की। ये रचनाएं इनकी संगीतिक चेतना और आध्यात्मिक परिपक्वता का प्रमाण है। गुरू जी 1664 ई0 को गुरू गद्दी पर विराजमान हुए। इन्होंने अपना निवास स्थान श्री आनन्दपुर साहिब में रखा। गुरू नानक वाणी का सन्देश, कीर्तन संगीत के माध्यम से दूर–दूर तक पहुंचा दिया। औरंगजेब के जुल्मों का विरोध करते हुए व धार्मिक आज़ादी की रक्षार्थ 11 नवम्बर, 1675ई0 को चाँदनी चौक, दिल्ली में शहीद हुए। जहाँ पर "शीशगंज" गुरूद्वारा आज भी एक राष्ट्रीय स्मारक के रूप में स्थित है और वहां पर कीर्तन संगीत की धुनि चारों ओर गूंजती हैं। इनकी एक प्रसिद्ध रचना "साधे मन का मान त्यागो" को प0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी ने गाया। इसे आज भी उस कोटि के ख्याल गायक गाते हैं।[62] इनके श्लोक एक विशेष धुन पर आज भी गाए जाते हैं। जिनसे श्रोतागण मुग्ध हो जाते हैं। जौनपुर के एक रागी को गुरू जी ने "मृदंग वाद्य" भेंट स्वरूप दिया जो कि आज भी वहाँ पर सुरक्षित है। उस स्थान को "गुरुद्वारा संगीत मृदंगावली" कहा जाता हे।[63]

गुरू जी ने 17 रागों में वाणी का सृजन किया। राग और ताल के पक्ष से इनकी रचनाएँ महत्वपूर्ण हैं। "गुरमति संगीत" प्रणाली का कार्य क्षेत्र काफी विशाल था। इसमें जहाँ काव्यबद्ध वाणी की रचना हुई, वहाँ पर "संगीतबद्ध" प्रयत्न भी विशेष अभ्यास एवं प्रचार के लिए किए गए।[64] इस प्रकार "गुरमति संगीत" की धारा प्रवाहित होकर लोगों को शान्ति, कल्याण व अमन के साथ क्रान्ति और बलिदान की प्रेरणा भी देने लगी।

दशम् ग्रन्थ एवं आधुनिक काल (18वीं से 21वीं शताब्दी)

गुरू गोबिन्द सिंह जी (1675ई0 से 1708 ई0) के समय में ताऊस वाद्य (मयूर वीणा) का प्रयोग भी "गुरमति संगीत" के साथ होने लगा था। अब कीर्तन में सारंदा, मध्यम वीणा (सितार) कछुआ, ताऊस, पखावज और तबला इत्यादि वाद्यों का प्रयोग साधारण सतर पर भी होने लगा था। निश्चय ही कीर्तन संगीत की परम्परा प्रगतिशील मार्ग पर आगे बढ़ रही थी। गुरू जी एक ओर सन्त सिपाही थे तो दूसरी और कवि और संगीतकार भी थे। बेशक राजनीतिक परिस्थितियों के कारण कुछ समय युद्ध के वातावरण में भी रहे, परन्तु फिर भी उन्होंने पर्याप्त मात्रा में साहित्य का सृजन किया और संगीत क्षेत्र में भी योगदान दिया। उनकी रचनाओं में संगीतिक लय का महत्वपूर्ण स्थान है।

गुरू जी ने अवधी भाषा में अनेकों धुपदों की रचना की, जिनमें से राग मल्हार का "ताल भरे जल पूरन सो" और देवगन्धार में "कान धुनें गंवारन को" आज तक लोकप्रिय है। ये रचनाएं किसी भी टकसाली कीर्तनकार से सुनी जा सकती है। गुरू गोबिन्दसिंह जी के पश्चात् "गुरमति संगीत परम्परा" का विकास गुरूद्वारों व सिख समाज में हुआ। इसका कमबद्ध विकास आज भी जारी है।[65]

गुरू गोबिन्दसिंह जी को संगीत क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। यह न केवल ब्रज भाषा, फ़ारसी व हिन्दी, के ही कवि थे, बल्कि संगीत के भी महान् ज्ञाता थे। गुरू जी का जन्म 26 दिसंबर, 1666 ई0 में पटना में हुआ। पिता श्री गुरू तेगबहादुर और माता का नाम गुजरी था। यह 1675 ई0 को गुरूगद्दी पर बैठे।[66]

छः रागों में दस पद एवं जाप साहिब, बचित्र नाटक, अकाल अस्तुति, चण्डी दी वार, चौबीस अवतार, शब्द हज़ार, सवैये, ग्यान प्रबोध, शस्त्रनाम माला, पुराण पाख्यान, चरित्र व हिकायत, जफ़रनामा व 'अस्फोटक इनकी प्रसिद्ध रचनाएं हैं। गुरू जी की रचनाओं के सम्बन्ध में प्रो0 प्यारासिंह पदम्कृत "गुरू गोबिन्द के दरबार रत्न"एक महत्वपूर्ण पुस्तक है, जिसमें उनके 52कवियों की जानकारी और उनके विभिन्न पद (रागों में) भी दिए गये हैं। "मित्तरप्यारे नूँ हाल मुरीदां दा कहणा" गुरू जी का लोकप्रिय पद है, जिसका शीर्षक है –– "ख़्याल पातसाही दस"। कई साहित्यकारों ने ख़्याल को राग माना है। जो कि तर्क संगत नहीं। ख़्याल शास्त्रीय संगीत की एक प्रसिद्ध गायन शैली है जो उस काल में प्रचलित थी और आज भी लोकप्रिय है।[67]

बेशक पूर्ववर्ती गुरूजनों की रचनाओं में संगीतिक गुणों का बाहुल्य था, परन्तु इनकी रचनाओं में संगीतिक लय, तुक–गति और वीर रस काव्य का एक अपना ही रंग एवं रस है। इसी मनोरथ के लिए "चंडी दी वार का गायन", गुरूद्वारों में किया जाता था। ढाडियों की ओर से यह सुनाई जाती थी। युद्ध के समय में सिंह सिपाही इसका पाठ करते थे।[68] डॉ0 अजीतसिंह पेंटल ने गुरू जी के कुल 19 राग माने हें। सात राग शब्द हज़ारे में और 16 राग परसराम अवतार में।[69]

भारतीय संगीत में गुरू गोबिन्दसिंह जी रचित "मितर प्यारे नूं हाल मुरीदां दा कहना" प्रथम ख्याल है जिसके आधार पर सदारंग, अदारंग ने (1719–1784ई0) ख्याल गीतों की रचना की।[70]

गुरमति संगीत के प्रामाणिक ग्रन्थ

इस क्षेत्र के पंथ–प्रमाणित ग्रन्थ निम्नलिखित हैं 71 :–

1. दशम ग्रन्थ
2. भाई गुरूदास की वारें
3. आदि ग्रन्थ (श्री गुरू ग्रन्थ साहिब)

इसकी संक्षेप में जानकारी इस प्रकार है :–

दशम ग्रन्थ

यह गुरू गोबिन्द सिंह जी और उनके दरबारी कवियों का संग्रह है। इसका संपादन गुरू गोबिन्दसिंह जी के पश्चात् भाई मनी सिंह ने किया था। यह कुल 18 ग्रन्थों का संग्रह है। ये ग्रन्थ फ़ारसी , हिन्दी, ब्रज और पंजाबी भाषाओं में है।[71]

जिस कीर्तन संगीत (गुरमत संगीत) की महान् परम्परा को गुरू नानक देव जी ने आरम्भ किया था उसी परम्परा का कमबद्ध विकास गुरू गोबिन्द सिँह जी ने किया।

दशम् गुरू जी ने इस परम्परा को कायम रखा और इसकी प्रतिष्ठा को आगे बढ़ाया। भविष्य में भी इसका विकास जारी रहेगा क्योंकि आज भी पंजाब और सिख समाज में इनकी लोकप्रियता शिखर पर है।

भाई गुरूदास की वारें (1558–1639ई0)

यह गुरू अमरदास जी के भाई और श्री दातार चंद भल्ला के सुपुत्र थे। वे गुरूजनों के विश्वास–पात्र और सिख थे। उच्चकोटि के कवि थे। इन्होंने 39 वारों का सृजन किया। इनका संकलन आदि ग्रन्थ में नहीं है।[72] गुरू अर्जुन देव जी द्वारा सम्पादित आदि ग्रन्थ के हस्त लेखन का महान् कार्य भाई गुरूदास ने किया। इस काल के लोक संगीत में "वार" एक लोकप्रिय गायन शैली थी। इसीलिए भाई गुरदास ने "वार" शैली को अपनाया। आज भी गाँब–गाँव के लोग वार (ढड–सारंगी के साथ) गायन को पसन्द करते हैं।

आदि ग्रन्थ (श्री गुरू ग्रन्थ साहिब)

आदि ग्रन्थ (आदि–वीड़) जिसे "गुरू ग्रन्थ साहिब" कहा जाता है यह सिख धर्म का प्रमाणिक, पवित्र व पूजनीय ग्रन्थ माना जाता है। 1604 ई0 को गुरू अर्जुनदेव जी ने इसे हरि मन्दिर साहिब (दरबार साहिब) अमृतसर में स्थापित किया। जिसमें प्रथम पाँच गुरूजनों एवं नवम् गुरू तेगबहादुर जी की वाणी संकलित है। सिख गुरूजनों के अलावा इसमें अनेकों पूर्वकालीन एवं पश्चात्वर्त्ती हिन्दू भक्तों, संतों, मुस्लिम सूफ़ियों व भट्टों इत्यादि की रचनाएं भी शामिल हैं। इस ग्रन्थ में किसी की जीवन गाथा अथवा इतिहास नहीं है। यह एक काव्य ग्रन्थ है जिसे 15वीं, 16वीं और 17वीं शताब्दी के पंजाब की राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, व आर्थिक अवस्था की कुछ लाभदायक एवं प्रमाणिक जानकारी मिलती है।[72]

उपरोक्त ग्रन्थों की रागबद्ध वाणी को निर्धारित रागों के अनुसार "गुरमति संगीत प्रणाली के अनुसार गाया जाता है। अन्य छन्द, प्रबन्ध व काव्य को लोक संगीत शैली के आधार पर सरल शास्त्रीय संगीत में गाया जाता है। भाई नन्दलाल की रचनाएं भी 'गुरवाणी संगीत' में गाई जाती हैं। 'गुरमति संगीत' परम्परा के विकास में रागी–ढाड़ी व रबाबी (मिरासियों) का भी योगदान है। इसलिए भाई मरदाना व अन्य ढाड़ी अथवा रबाबियों की जानकारी यहाँ आवश्यक प्रतीत होती है।

भाई मरदाना (1459–1534 ई0)

भाई मरदाना का जन्म, "राय भोय की तलवंडी" (ननकाना साहिब) में हुआ। माता का नाम लक्खो और पिता का नाम बादरा था। इसके पूर्वज डूम अथवा मिरासियों में से थे। भाई मरदाना ने रबाब की शिक्षा भाई फिरंदे से ली थी। गुरू नानक जी के गायन के साथ भाई मरदाना रबाब–वादन करता था। इनके दो श्लोक "आदि ग्रन्थ" के राग बिहागड़ा में उपलब्ध है।[73] ऐसा प्रतीत होता है कि भाई मरदाना और गुरू नानक देव जी का साथ बचपन में ही हो गया था। बेशक मरदाना आयु में गुरू जी से नौ वर्ष बड़ा था। परन्तु दोनों में मित्रता की भावना बढ़ती गई। वे दोनों 47 वर्ष लगातार इकट्ठे रहे। दोनों की मानसिक एकता का मुख्य कारण संगीत था।[74]

गुरू नानक देव जी के प्रथम कीर्तन्कार सहयोगी के रूप में भाई मरदाना का नाम आज भी अ़मर है। ढाड़ी परम्परा के लोक गायन वादन के कार्य में अपनी

गुज़र–बसर करते थे। यह लोग बेशक इस्लाम धर्म में पैदा हुए परन्तु फिर भी इन्होंने "गुरमति संगीत" में पूरी श्रद्धा व आस्था के साथ कार्य किया।[75]

भाई मरदाने के पुत्र साहिबज़ाद ने पिता की मृत्यु के पश्चात् गुरू नानक देव जी का साथ निभाया। वह भी रबाब वादन में प्रवीण था।[76] भाई मरदाने का देहान्त अफ़गानिस्तान के दरिया कुरम के नजदीक 1534 ई0 को हुआ। सत्ता और बलवंडा भाई मरदाने के पोते थे।[77] गुरू नानक काल के पश्चात् "गुरूमति संगीत" क्षेत्र में योगदान देने वाले सूफियों, रबाबियों आदि के नाम इस प्रकार हैं :–

भाई बाबक, सदु–मदु, नत्था–अब्दुल्ला, भीखा, जालप, साल, रामु, दीया, पीलु, उग्रसेन नगोड़ी, पाधा, बुल्ला और शाह हुसैन आदि।

इसी प्रकार बंदा बहादुर एवं सिख मिसलों के काल में भी (1716–1792ई0) गुरवाणी संगीत का कमिक विकास जारी रहा।[78]

महाराजा रणजीत सिंह (1780–1839ई0)

महाराजा के राज्य में भी गुरमति संगीत का प्रचार द्रुत गति से आगे बढ़ा। इस काल में कीर्तनकारों, रागियों (गायकों) और रबाबियों को मासिक वेतन भी मिलने लगा। महाराजा के दरबारी साहित्यकार श्री सोहन लाल ने –– ज़फरनामा और गणेशदास ने पंजाबी काव्य में "फ़तहनामा गुरू खालसा जी का" पुस्तक लिखी। इस काल में , वार गायन, क़िस्सा काव्य और लोक गीतों की लोकप्रियता थी। श्री दरबार साहिब अमृतसर के हजूरी रागी भाई मनसासिंह जी बड़ा मनोहर कीर्तन करते थे।[79] महाराजा ने इन्हें सुना तो प्रसन्न होकर इनहें बहुमूल्य भेंट व अशर्फ़ियाँ देने के लिए इनके घर पर आए, परन्तु भाई मनसा सिंह जी ने घर का दरवाजा बन्द कर दिया और कहा कि –– "लक्ष्मी के आने से मेरे कीर्तन की तासीर व मेरी श्रद्धा समाप्त हो जाएगी।" इसलिए क्षमा प्रार्थी हूं।[80]

भाई चांद (1840–1910 ई0)

गुरमति संगीत के अन्त्तर्गत भाई चाँद का नाम प्रसिद्ध है । इनका पूरा जीवन ब्यौरा उपलब्ध नहीं । सन् 1900 के लगभग दरबार साहिब (अमृतसर) के हजूरी रागी

थे। कहा जाता है कि सम्पूर्ण आदि ग्रन्थ के गायन की सामर्थ्य रखते थे। ध्रुपद शैली के आधार पर गाते थे। इनके शिष्य गुरूमुख सिँह (अमृतसर) व हरसा सिँह ध्रुपदिए ने कीर्तन विकास में योगदान दिया। इसी काल के प्रसिद्ध संगीत विद्वान् भाई उत्तम सिँह जी ख्याल शैली के प्रवीण गायक, मियाँ पीरबख़्श (तानरस खाँ) के शिष्य थे और संगीत शास्त्र के भी विद्वान थे। ये दिलरुबा भी बहुत अच्छा बजाते थे। इनसे अनेकों रागियों , रबाबियों ने "गुरमति संगीत" की शिक्षा प्राप्त की। तरनतारन के गुरमति विद्यालय में भाई उत्तम सिँह जी ने कई वर्ष संगीत शिक्षा प्रदान की। इनके अनेकों शिष्यों में से भाई सुन्दर सिँह जी एवं श्री दिलीप चन्द्र बेदी बड़े प्रसिद्ध कलाकार एवं विद्वान थे।

इसी काल में महाराजा पटियाला के संगीत उस्ताद महंत गज्जा सिँह (गायक व दिलरुबा वादक) की कीर्तन संगीत के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है।[81] इनके प्रसिद्ध शिष्य भाई हरनामसिँह, जीवनसिँह, मस्तान सिँह थे। महंत जी का देहान्त पटियाला में 1915 ई0 को हुआ।

हरमन्दिर साहब के हजूरी रागी (1910–1927ई0)

दरबार साहिब के हजूरी रागियों ने गुरमति संगीत की महान परम्परा में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इनमें से पूर्व वर्णित रागियों के अलावा पं0 नत्थू राम जी दुआबे वाले (देहांत 1966 ई0), भाई सुरेण सिंह, भाई सुन्दर सिँह, भाई ज्वाला सिँह (ताऊस वादक), भाई महताब सिँह (पखावज वादक), भाई हरनाम सिँह (जम्मू वाले), भाई सन्तु रबानी, भाई बहादुर सिँह (तबला वादक), उस्ताद दास मल्ल (तबला वादक) भाई भगवान सिँह (रागी), भाई ज्ञानसिँह एबटाबाद (कृत गुरवाणी संगीत) इत्यादि ने "गुरमति सगीत" के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया।[82]

इसी प्रकार भाई रूपसिँह (अमृतसर) नसीरा (पखावजी), उस्ताद अल्ला रखा (तबला वादक) भाइ वधावा (रबाबी), भाई अतरा (कीर्तन व्याख्या प्रवीण), इस काल के प्रसिद्ध कलाकार थे। आजकल कीर्तन व्याख्या करना प्रचलित नहीं है।

भाई मोती (देहान्त 1921 ई0)

यह अमृतसर के प्रतिभा सम्पन्न रागी थे । 'गुरमति संगीत' प्रणाली के प्रवीण कलाकार थे । ग़ज़ल, कव्वाली और पंजाबी गीत भी अत्यन्त सुन्दर ढंग से गाते थे ।

कीर्तन में कव्वाली अंग का सुन्दर और रोचक प्रयोग करते थे। इन्होंने संगीत की शिखा पटियाला घराने के फ़तह अली खाँ के शिष्य, मियाँ अल्लादिया मेहरबान से पाई थी।[13]

भाई अरुडा (1927–1947)

यह एक बहुमुखी प्रतिभा के सुरीले गायक थे। ध्रुपद व ख्याल दोनों के आधार पर धुनें बनाकर कीर्तन करते थे। गुरमति संगीत की पुरातन बन्दिशों में पटियाला घराने की गायकी भी प्रस्तुत करते थे। 50 वर्ष की आयु में उनका देहान्त लाहौर में हुआ।

भाई लाल अमृतसरी (1900–1962)

भाई लाल चौमुक्खी गायक थे। कीर्तन के अलावा ख्याल गायकी में भी प्रवीण थे। इनका देहान्त लाहौर में 1962 को हुआ।

इस प्रकार अमृतसर, लाहौर, तरनतारन, दिल्ली, होशियारपुर, जालंधर, व अन्य कई स्थानों पर "गुरमति संगीत" के केन्द्र स्थापित हो गए और वहाँ पर संगीत शिक्षा भी सुचारू ढंग से होने लगी।

पादटिप्पणियां

1. डा0 लक्ष्मी नारयण गर्ग,"संगीत विशारद हाथरस, पृ0 47
2. उमेश जोशी,"भारतीय संगीत का इतिहास", पृ0 43–44
3. "सचित्र विश्वकोष" (हिन्दी अनुवाद), पृ0 34
4. "अमृत कीर्तन" मासिक, प्रो0 तारासिंह, विशेष अंक, पृ0 03
5. डा0एस0 नरुला, "गुरूवाणी संगीत बारें", पृ0 9
6. "गुरमति संगीत पर हुण तक मिली खोज", पृ0 1923–37
7. वही, पृ0 1923–37
8. "पंजाबी दुनिया" मासिक, प्रो0 तारा सिंह, पृ0 2
9. डा0 लक्ष्मी नारायण गर्ग, संगीत विशारद, पृ0 2
10. प्रो0 तारा सिंह, 'वादन कला' , पृ0 246–47

11. डा0 सतपाल सेठी, ज़िला फरीदकोट की पंजाबी देन, पृ0 13
12. प्रो0 साहिबसिँह "आदि बीड़ बारें" , पृ0 152–148
13. डा0 देविन्द्र सिँह, "आदि कालीन पंजाबी साहित्य", पृ0 170
14. वही, पृ0 215
15. ल0ग0जोग, संत नामदेव, पृ0 12
16. प्रो0 साहिबसिँह "आदि बीड़ बारें" , पृ0 152–148
17. डा0 देविन्द्र सिँह, "आदिकालीन पंजाबी साहित्य", पृ0 215
18. ल0ग0जोग, संत नामदेव, पृ0 7
19. रामचन्द्र शुक्ल, "हिन्दी साहित्य का इतिहास", पृ0 66
20. ल0ग0जोग, संत नामदेव, पृ0 17
21. चतुर्वेदी, "हिन्दी साहित्यस का वृहत इतिहास", भाग–4, पृ0 843
22. डा0 धर्मपाल मैनी, संतों के धार्मिक विश्वास, पृ0 346
23. भाई काहनसिँह नाभा, "महान कोष", पृ0 1025
24. श्री गुरू ग्रन्थ साहिब (आदि ग्रन्थ), पृ0 345
25. "मैकालिक सिख–रिलीजन" भाग –6, पृ0 345
26. प्रेम शंकर, "भक्ति काव्य की भूमिका", पृ0 121–22
27. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, "हिन्दी साहित्य की भूमिका", पृ0 56–57
28. श्री गुरू ग्रन्थ साहिब (आदि ग्रन्थ), पृ0 1195
29. डा0 देविन्द्र सिँह, "आदिकालीन पंजाबी साहित्य", पृ0 219
30. भाई काहनसिँह नाभा, "महान कोष", पृ0 219
31. श्री गुरू ग्रन्थ साहिब (आदि ग्रन्थ), पृ0 695
32. डा0 धर्मपाल मैनी, संतों के धार्मिक विश्वास, पृ0 342
33. वही,पृ0 343

34. डा0 देविन्द्र सिँह, "आदिकालीन पंजाबी साहित्य", पृ0 229

35. डी0एस0नरुला, संगीत समीक्षा, पृ0 189

36. डमेश जोशी, "भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0 274–275

37. डी0एस0नरुला, संगीत समीक्षा, पृ0 189

38. डा0 गुरचरण सिँह महता, "गुरमति सहित धारा", पृ0 143

39. प्रो0 तारा सिँह, वादन कला , पृ0 57

40. प्रो0 प्यारा सिँह पद्म, रबाब , पृ0 271

41. डी0एस0नरुला, संगीत समीक्षा, पृ0 10–11

42. पंजाबी साहित्य का इतिहास, पृ0 18

43. "गुरवाणी संगीत बारें", पृ0 11

44. "सिख गुरूओं की भारतीय संगीत को देन", पृ0 3

45. प्रो0 साहिब सिँह, आदि बीड़ बारे", पृ0 46

46. डा0 गुरनाम सिँह, "आदि ग्रन्थ राग कोष" , पृ0 22

47. प्रो0 तारा सिँह, वादन कला , पृ0 275

48. विनय कुमार मनमोहन सिँह, "संगीत निबन्ध", पृ0 186

49. डा0 गीता पेंटल "पंजाब की संगीत परम्परा", पृ0 120–121

50. डी0एस0नरुला, "गुरबाणी संगीत बारे", पृ0 21

51. वही,पृ0 21–22

52. नरुला "गुरू नानक सगीतज्ञ" पृ0 148

53. नरुला "सिख गुरूओं की भारतीय संगीत को देन", पृ0 18–19

54. प्रो0 तारा सिँह, वादन कला , पृ0 280

55. डा0 गुरनाम सिँह, "संगीत निबन्ध" , पृ0 86–87

56. डा0 करतार सिँह सूरी, "गुरू अर्जुनदेव ते सन्त दादु दयाल", पृ0 82–83

57. डा0 गीता पेंटल "पंजाब की संगीत परम्परा", पृ0 121–123

58. डी0एस0नरुला, "गुरबाणी संगीत बारे", पृ0 23

59. वही, पृ0 29

60. प्रो0 तारा सिँह, वादन कला , पृ0 282–83

61. वही, पृ0 84–85

62. डी0एस0नरुला, "संगीत समीक्षा", पृ0 135

63. डा0 गुरनाम सिँह, "आदि ग्रन्थ राग कोष

64. डी0एस0नरुला, "संगीत समीक्षा", पृ0

65. प्रो0 तारा सिँह, वादन कला , पृ0 286–87

66. डी0एस0नरुला, "गुरबाणी संगीत बारे", पृ0 28

67. किपाल सिंह कसेल, "चंडी दी वार बारे", पृ0 25

68. डा0 पेंतल, "नेचर एण्ड प्लेस ऑफ म्यूज़िक (थीसिस) पृ0 126

69. प्रो0 तारा सिँह, वादन कला , पृ0 288–89

70. डॉ0 ए0सी0अरोड़ा, "पंजाब का इतिहास, 1987 ई0 पृ0 25

71. डॉ0 सुरिदर सिंह कोहली, "क्रिटिकल स्टडी आदि ग्रन्थ", पृ0 14

72. डॉ0 ए0सी0अरोड़ा, 'पंजाब का इतिहास, पृ0 25

73. प्रो0 तारा सिँह, वादन कला , पृ0 272–73

74. डी0एस0नरुला, "गुरू नानक संगीतज्ञ", पृ0 3

75. डॉ0 गीता पेंतल, पंजाब की संगीत परम्परा, पृ0 134–135

76. एस0एम0 लतीफ, 'हिस्टरी ऑफ पंजाब, पृ0 135

77. प्रो0 तारा सिँह, वादन कला , पृ0 28

78. वही, पृ0 311–12

79. डी0एस0नरुला, "गुरू नानक संगीतज्ञ", पृ0 149

80. डी0एस0नरुला, "संगीत समीक्षा", पृ0 112

81. वही, पृ0 112–13

82. वही, पृ0 113

83. श्री दिलीपचंद वेदी जी से भेंट वार्ता

84. वही

85. वही

86. डॉ0 गीता पेंटल, पंजाब की संगीत परम्परा, पृ0 146

87. डी0एस0नरुला, "गुरू नानक संगीतज्ञ", पृ0 152

88. वही, पृ0 115–16

89. प्रो0 प्यारा सिंह पदम्, गुरू गोबिन्द सिंह के दरबारी रत्न, पृ0 19

90. नरुला, गुरूबाणी संगीत बारे , पृ0 93



गुरमति संगीत प्रबन्ध

भारतीय संगीत परम्परा और आदि ग्रन्थ का राग प्रबन्ध

गुरमति संगीत परम्परा का स्वतन्त्र और तुलनात्मक अध्ययन, समकालीन संगीतिक परम्पराओं के स्वरूप के प्रति हमारी समझ को स्वच्छ और परिपक्व बनाने में समर्थ हैं। इससे विश्व संगीत में भारतीय संगीत की व्यवहारिक सुदृढ़ता निश्चत होगी।

गुरमति संगीत के विषय का प्रचलन जहाँ गुरमति संगीत की स्वतन्त्र एवं मौलिक पहचान उजागर करेगा, वहाँ अपने विशाल संगीतिक सरमाये के आधार पर विश्व संगीत में हिन्दोस्तानी संगीत के महत्व का प्रतिपादन करेगा।[1]

श्री गुरू नानकदेव जी एवं उनसे पूर्व की भिन्न–भिन्न संगीत परम्पराओं के अध्ययन से यह तथ्य भली भान्ति स्पष्ट हो जाता है कि श्री गुरू नानक देव जी के समय तक भारतीय संगीत की एक विशाल एवं महान परम्परा मौजूद थी। अलग–अलग धार्मिक सम्प्रदायों और संत भक्त कवियों द्वारा संगीत के प्रयोग से भक्ति संगीत की एक अलग परम्परा नज़र आने लगी है। श्री गुरू नानक देव जी ने जैसे भक्ति धर्म दर्शन के क्षेत्र में एक नवीन पथ का सृजन किया, इसी तरह उन्होंने अपने धर्म के प्रचार एवं विकास के लिए नवीन संचार–साधनों का इस्तेमाल भी किया। उनके द्वारा निर्मित संचार का यह विलक्षण प्रबन्ध वैज्ञानिक विशेषताओं सहित उजागर होता हुआ विचित्र रूप में विकसित हुआ। इस संचार–प्रबन्ध का केन्द्रीय और मूल माध्यम संगीत पर ही आधारित था।

'शब्द कीर्तन' की इस परम्परा में भक्ति संगीत के विभिन्न तत्त्वों को मौलिक प्रयोग का धारिणी बनाते हुए नवीन अर्थ दिए गए हैं। इस नवीनता के कारण यह परम्परा अपनी समकालीन धार्मिक और संगीत की परम्पराओं से सहज रूप से अलग हो जाती है। इस विभिन्नता का मुख्य कारण गुरू साहिबान और विशेषकर गुरू नानक

देव जी द्वारा वाणी (शब्द) की प्रस्तुति के सुनिश्चित प्रबन्ध का सृजन है। गुरू साहिबान द्वारा दर्शाई गई "श्री गुरू ग्रन्थ" साहिब के संगीत प्रबन्ध पर "शब्दकीर्तन" की इस प्रस्तुति की सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक परम्परा को "गुरमति संगीत" कहा जाता है। (गुरमति संगीत की केन्द्रीय इकाई "शब्द" है। गुरू साहिबान ने 'शब्द' को जनमानस तक संचार करने के लिए संगीत को माध्यम के रूप में अपनाया। शब्द की प्रस्तुति के लिए जिस विधान का सृजन किया गया। इस समूचे प्रबन्ध को "गुरमति संगीत प्रबन्ध" कहा जाता है। इस संगीत–प्रबन्ध के अधीन प्रयोग में आने वाले विभिन्न संगीतिक तत्व राग , गायन शैलियां, रहाऊ, अंक और अन्य संगीत की विलक्षणता को जानने के लिए और गुरूवाणी के अंतर्निहित परम सत्य के बोध के लिए इसके जीवन प्रबन्ध की विभिन्न इकाइयों के साथ समन्वय अत्यन्त जरूरी है।

राग

शब्द की प्रस्तुति का एक महत्वपूर्ण और मुख्य तत्व राग है। ('श्री गुरू ग्रन्थ साहिब' में 'राग' शीर्षक के रूप में विद्यमान है जो प्रस्तुतीकार के लिए शब्द को निर्धारित राग में गायन करने का निर्देश है। राग सम्बन्धी वाणी में कई किस्म के फरमान अंकित हैं :–

सभवा रागा विच से भला भाई
जितु वसिया मनि आई ।।
रागुनादु समु सचुहै कीमति कई ना जाई ।।
रागै नादै बाहरा इनी हुकमु के न बुझिया जाई ।।
नानक हुकमै बुझै तिना रासि होई
सति गुर ते सोजी पाई ।।[2]
राग नाद सबदि सोहणे
जो लागै सहजि धियानु ।।[3]
ओंकारिं ऐक धुनि एकै ऐकै रागु अलापै ।।
ऐका देसी ऐकु दिखावै ऐको रहिया विआपै ।।

शाली ऐका सुरति ऐका ही सेवा ऐको गुर ते जापै ।।[4]

रागि नादि मनु दूजै भाई

अन्तरि कपटु महा दुख पाई ।।[5]

इन फरमानों से राग का महत्व और सही प्रयोग–विधि स्पष्ट प्राप्त होती है। इसमे राग की नादात्मक शक्ति को स्वीकार किया गया है और राग उसी को अच्छा और उत्तम बताया गया है जिसके गायन करने से सभी तृष्णाएं मिट जाएँ। और उस प्रभु परमात्मा की याद मन में बस जाए। "श्री गुरू ग्रन्थ साहिब" की सम्पादना का आधार भी रागात्मक है। यह राग केवल दिखावे या नाममात्र ही नहीं बल्कि शब्द के भाव एवं संगीत शास्त्र के अनुसार है। वाणी की प्रकृति और राग की प्रकृति में अटूट समन्वय है। इस समन्वय को कायम रखने के लिए गुरू साहिबान ने रागों को कई स्वरूपों में प्रयुक्त किया है जैसे गऊड़ी गुआरेरी , गऊड़ी चेती, गऊड़ी मांझ आदि।)

अंक

"श्री गुरू ग्रन्थ साहिब" में शब्दों को विभिन्न अंकों द्वारा विभाजित किया गया है। शब्द में रहाऊ की पंक्ति से बिना बाकी पंक्तियों की समाप्ति पर 1, 2, 3, 4 आदि अंक मिलते हैं जो अन्तरों के सूचक हैं ताकि "गुरमति संगीत" विधानानुसार रहाऊ की पंक्ति का बार–बार गायन हो सके। इन अंकों में एक पंक्ति के अतिरिक्त दो या तीन पंक्तियां भी पाई जाती हैं। इन अंकों से शब्द की सम्बन्धित काव्य शैली और गायन शैली का भी ज्ञान होता है। उदाहरणार्थ चउपदे में चार, दुपदे में दो पद, और अष्टपदी में आठ पद होते हैं। इन पदों की गिनती हमें अंकों से पता चलती है कि इस शब्द के कितने बंध हैं। ये अंक या अन्तरे की लाइन का सम्बन्ध रहाऊ की पंक्ति के साथ है जो रहाऊ की पंक्ति के केन्द्रीय भाव को दृढ़ करवाने के लिए उपजित समस्या के समाधान के लिए प्रमाणों, दलीलों, उक्तियों और उदाहरणों का रूप है।

शब्द में हर अन्तरे के पश्चात् रहाऊ की पंक्ति के आने की प्रकिया श्रोताओं के मन पर शब्द के अन्तरनिहित भावों का बोध कराने के लिए रोशनी प्रदान करती है।

रहाऊ

गुरूबाणी में काव्य और संगीत के पक्ष से रहाऊ एक महत्वपूर्ण इकाई है। रहाऊ की पंक्ति में शब्द का केन्द्रीय भाव मौजूद होता है। वाणी के विचार के संदर्भ में जहाँ रहाऊ की पंक्ति अहम् भूमिका निभाती है वहां संगीतिक संचार के लिए रहाऊ केन्द्रीय धुरा है। मध्यकाल में भक्ति संगीत में प्रचलित प्रबन्ध और ध्रुपद–गायन शैली का एक धातु "ध्रुव" है, जिसे 'अचल' या चिरस्थाई कहा गया है। ध्रुव का ही दूसरा रूप रहाऊ है। जो विचार गायन के संदर्भ में हमेशा कार्यशील रहता है। रहाऊ को टेक शब्द के साथ भी परिभाषित किया जाता है। मध्यकालीन संत भक्त कवियों ने भी अपनी रचनाओं के लिए ध्रुव, और टेक शब्द का प्रयोग किया है।

श्रीकतकमलाकुचमंडल धृतकुण्डलकलित
–ललितवनमाल जय–जय देव हरे (ध्रुव)।। 1 ।।

टेक – (चरखा अजब रंगीला वे सोहन्द रसना धुन रस मीत ।। टेक) 18वीं सदी के कवि दादू, कानू, शाह हुसैन, शाह शरफ़, की रचनाओं में भी रहाऊ शब्द मिलता है। इनकी रचनाओं के आमतौर पर शब्द का पहला बंध रहाऊ की पंक्ति का है। पर गुरूवाणी में ज्यादातर शब्द के पहले बंध के बाद रहाऊ की पंक्ति आती है। कई शब्दों में रहाऊ दो, रहाऊ तीन और रहाऊ चार दृष्टिगोचर होते हैं। उनके लिए रहाऊ 1, रहाऊ 2 इस तरह अंक विद्यमान हैं।

गुरमति संगीत प्रबन्धानुसार शब्द का गायन रहाऊ की पंक्ति को स्थाई मानकर हर अन्तरे के बाद बार–बार करने की परम्परा है, क्योंकि रहाऊ की पंक्ति में शब्द का केन्द्रीय भाव मौजूद है और अन्तरों में इसकी विभिन्न दलीलों, प्रमाणों सहित दृढ़ हुआ है। जब समस्या का समाधान हो जाता है तो वहां रहाऊ की पंक्ति बदल जाती है। इसलिए रहाऊ दूसरे की लाईन को स्थाई की तरह गायन करता है।

शब्द को निर्धारित वाणी प्रबन्ध अनुसार रहाऊ की पंक्ति का बार–बार गायन जहाँ शब्द के अर्न्तनिहित भावों को प्रकाशमान करने में सहायक होती है, वही भावों में दृढ़ता प्रदान करने में तीव्रता से वृद्धि करती है।[6]

भाई काहन सिंह नाभा के अनुसार "गाने वाले की मर्जी है कि रहाऊ की पंक्तियों में से जिस मर्जी की पंक्ति को स्थाई माने।[7] पर वाणी के अर्थ को ध्यान में रखते हुए

देखा जाए तो यह विचार ठीक नहीं बैठता क्योंकि जहाँ रहाऊ की पंक्ति बदल जाती है वहाँ समस्या ही बदल जाती है। अतः शब्द के प्रयोग की सिद्धी के लिए निश्चित संकेतों के अनुसार वाणी का गायन जरूरी है।

घरु

गुरूवाणी में अगला संगीतिक संकेत घरु 1, घरु 2 आदि इस तरह सिरलेख रूप में अंकित हें। घरु की कुल गिनती 17 है। घर के सम्बन्ध में विद्वानों के विभिन्न मत हैं। भाई वीरसिंह जी के अनुसार , "साज़ों में तीन ग्राम होते हैं, ग्राम घर से बनता है इसलिए तीन ग्रामों के स्वरों के स्थानों से घरु है। घरु 1 से भाव गए जाने वाले राग की प्रधान स्वर की संख्या का संकेत है।[8]

भाई काहन सिंह नाभा घरु सम्बन्धी लिखते हैं –

"गुरमति संगीत" के अनुसार घर के दो अर्थ – एक ताल दूसरा स्वर और मर्च्छना के भेद करके एक ही राग के सरगम प्रस्तार अनुसार गाने के प्रकार9 बहुमत विद्वानों ने घरु को ताल के रूप में स्वीकार किया है। घरु पद के आगे जो अंक हों उसके अनुसार समझ लेना चाहिए कि शब्द उस ताल में गाना है क्योंकि स्वर, ताल, लय, अंग, न्यास, ग्रह, ये बातें राग का स्वरूप प्रकाशित करती हैं। इसलिए जितने–जितने ताल में जो–जो राग के शब्द में वाणी उच्चारी वहीं वहीं गाने के लिए ताल का पता लिखा है।[10]

कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि इरानी ताल पद्धति में ताल रूपों को एक गाह, दो गाह, सिर गाह, चार गाह, आदि कहा जाता है।[11] इसलिए हो सकता है कि गुरू साहिबान ने गाह जिसका अर्थ घर है को ताल दरसाने के लिए प्रयोग किया हो। फारसी बाहर की बुनियाद और यह मत भी प्रचलित है कि अमीर खुसरो ने 17 ताल निर्मित किए जिनके नाम पशतो, जोवहार, कव्वाली, सुलफख्ता, जत, जलद, तिताला, सवारी, आड़ाचौताला, झूमरा, ज़मानी सवारी, दास्ताना, खमस, फरोदस्त, कैद, पहलवान, पट और चम्पक हैं।[12]

यह 17 ताल मध्यकाल में भक्ति संगीत में प्रचलित थे। सम्भव है कि गुरू साहिबान में प्रयुक्त 17 घरु भारतीय संगीत में प्रचलित थे, 17 घरु ही हों कुछ भी हो

बहुत विद्वान घरु को ताल के रूप में ही स्वीकार करते हैं। समय के अन्तराल के कारण व्यवहारिक तौर पर 'घरु' का प्रयोग समाप्त हो गया है।

जति

जति जो भारतीय संगीत में यति के नाम से भी प्रचलित है। यति से भाव है निरन्तर चाल में ठहरने की अवस्थाएं 'श्री गुरू ग्रन्थ साहिब' जति का राग बिलावल अधीन एक सिरलेख अंकित है।[13]

भाई काहन सिंह नाभा के अनुसार "संगीत की धारधा का नाम जति (यति) है और मृदंग के बोल का जहाँ विश्राम हो उसे भी जति की संज्ञा दी जाती है।"

डॉ0 चरणसिँह जी ने श्री गुरू ग्रन्थ वाणी ब्योरे में लिखा है –– जति, गति, सपथ यह तीनों जोड़ी के करतब हैं जिस वक्त दायां हाथ सत का काम करे अर्थात् गत की तरह अंगुलियों के बीच जोड़ी के किनारे और बीच में काम करे और जब दोनो हाथों की अंगुलियों हरफ़ (अक्षर) निकाले और बाया हाथ जैसा खुलासा बजाए तो उसे जति कहते हैं।

जब दोनों हाथ खुले काम करे आवाज भी खुली निकले (जिसे कूड़कुट कहते हैं) तो उसकी संज्ञा साथ होती है।[14] जति का सम्बन्ध जोड़ी बजाने की एक गत के साथ है।[15]

उपरोक्त विचारों से पता चलता है कि मध्यकाल में जोड़ी के बंध बोलों का प्रचलन हो चुका था, परन्तु इन उदाहरणों से कोई भी स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता। वर्तमान संगीताचर्य जति को इस तरह परिभाषित करते हैं कि जोड़ी पर दायां हाथ खुला बोल बजाएं और बायां हाथ बन्द बोल बजाएं तो ऐसी ताल प्रकिया को जति का नाम दिया जाता है। इसलिए गुरू ग्रन्थ साहिब मे दर्ज सिरलेख से भाव है कि राग विलावल अधीन, धिति के विशिष्ट विश्रामों को ध्यान में रखते हुए दसवें घर की लय में इस शब्द का गायन करना है।[16]

गुरूवाणी संगीत प्रबन्ध के अन्तर्गत गुरू साहिबान ने जहाँ ध्रुपद, प्रबन्ध और पड़ताल जैसी शास्त्रीय गायन शैलियों का प्रयोग किया, वहाँ अलाहुणियाँ, घोड़ियां, वार, सोहले, छन्द, मुन्दावणी आदि देशी या लोक रूपों को भी प्रयुक्त किया।

"श्री गुरू ग्रन्थ साहिब" के अध्ययन से स्पष्ट है कि वाणी के लिए प्रयुक्त गायन शैलियों को संगीत विधान के अनुशासन अधीन वाणी के उद्देश्य को मुख्य रख कर प्रयोग किया गया है। गुरूवाणी में मार्गी शैलियों का रागात्मक निर्धारण व्यावहारिक रूप में गुरूमति संगीत प्रबन्ध की विलक्षणता की पहचान है।

गुरमति संगीत प्रबन्ध के संगीतिक संकेतों के अतिरिक्त शब्द की प्रस्तुति संगीत की किसी साधारण प्रस्तुति से भिन्न है। साधारण कलाकार अपने अन्दर मेहनत के द्वारा कमाई हुई कला की ब्रह्ममुखी प्रस्तुति करता है पर गुरवाणी की शब्द गायन प्रस्तुति अधीन प्रस्तुत कार उस परम सत्य का अनुभव एवं बोध करता हुआ सहज आनन्द की प्राप्ति करता है। सहज आनन्द की अवस्था प्राप्त करने के लिए गायक के लिए गुरू साहिबान जहाँ विशिष्ट संगीत प्रबन्ध का सृजन करते हैं, वहीं प्रस्तुति की विधि और लक्षणों का भी वर्णन करते हैं। जो गुरूवाणी के कुछ फरमानों से स्पष्ट है :–

इकि गावत रहे मनि सादु न पाई ।।
हऊमै विचि गावहि बिरथा जाई ।।[17]
आपि गवाए सु हरिगुण गाऊ ।।[18]
गुरमति मनुवा गावै ।।[19]
सहजे गाविआ थाई पवै
बिनु सहजे कथनी बादि ।।[20]

उपरोक्त कथनों से स्पष्ट है कि शब्द की प्रस्तुति के लिए अहम का त्याग, आत्मसमर्पण, गुरमति का अनुयायी होना सहज के रहने जैसे नियमों को पूर्ण रूप में धारण करना है क्योंकि वाणी का आदेश है। इस तरह गुरमति संगीत की गायन प्रस्तुति में कला के आडम्बर, आकर्षण और प्रलोभन का त्याग बुनियादी तौर पर महत्वपूर्ण है। गुरमति संगीत में किसी भी शब्द कीर्तन प्रस्तुति में जब –जब शब्द की जगह राग/

गायन का कलात्मक पक्ष प्रधान होगा, तभी गुरमति संगीत की यह प्रस्तुति अपने लक्षय से बिछुड़ जाएगी।

उक्त वर्णित विलक्षणताओं को प्रबन्ध रूप से स्वीकार करते हुए गुरू साहिबान ने अलग–अलग कीर्तन–चौकियां, कीर्तन–केन्द्र, अलग–अलग साज़, प्रमुख कीर्तनियों के गायन द्वारा मौलिक आदि विलक्षण दृष्टि से प्रयोग किया है और इस परम्परा को व्यावहारिक रूप् से विलक्षणता प्रदान की है। यही गुरमति संगीत प्रबन्ध जब इन प्रस्तुति सहायकों की क्रियात्मकता द्वारा सजीव/ व्यावहारिक रूप प्रदान करता हे तो इसे सहज ही पूर्वकालीन ओर समकालीन परम्पराओं से अलग किया जा सकता है।

कीर्तन–चौकियां

आसा दी वार दी चौकी, बिलावल दी चौकी, सौदर की चौकी, कल्याण की चौकी।

कीर्तन–केन्द्र

करतारपुर साहिब, खडूर साहिब, गोइन्दवान साहिब, श्री हरिमन्दिर साहिब, अमृतसर, आनन्दपुर साहिब।

साज़

रबाब, सरन्दा, सारंगी, ताऊस, ढड्ड आदि ।

प्रमुख कीर्तनी

भाई मरदाना, भाई सत्ता, भाई बलवड, भाई सादू, भाई बादू, भाई रजादा, भाई सजादा आदि।

यह विशिष्ट संगीत प्रबन्ध वाणी के प्रभाव को उजागर करने हेतु या वाणी को प्रकाशमान करने में सहायक होता है। इस विशिष्ट संगीत प्रबन्ध सम्बन्धी वैज्ञानिक पहुँच, गुरमति संगीत के संस्थागत प्रचलन और वाणी की सम्पादना के अर्न्तगत विभिन्न सांगीतिक संकेत विशिष्ट संगीत प्रबन्ध को मूर्तिमान करने में सहायक है वहीं, उसकी पहचान योग्य स्थापत्य और मध्यकालीन पूर्वकालीन परम्पराओं से विलक्षणता का प्रत्यक्ष

प्रमाण हैं।

गुरमति संगीत की उत्पत्ति और विकास सम्बन्धी उक्त चर्चा से इस परम्परा के स्थापित विशिष्ट स्वरूप का आभास सहज ही हो जाता है। गुरमत संगीत की पूर्वकालीन, समकालीन, धार्मिक और संगीत परम्पराओं के संदर्भ में इस परम्परा का पहचान योग्य स्पष्ट हो जाता है। श्री नानकदेव जी ने उक्त वर्णित समूह परम्पराओं के अध्ययन और चिंतन के उपरान्त सिक्ख–धर्म की स्थापना के साथ–साथ गुरमति संगीत का सृजन भी किया। जो अलग –अलग गुरू साहिबों के यत्नों, क्रियात्मक प्रयोग की सैद्धान्तिक विशिष्टता के आधार पर मूर्तिमान हुई है। गुरमति संगीत का मध्यकालीन शास्त्रीय संगीत में अलग स्थान है। भारतीय संगीत के इतिहास के प्रसंग में देखें तो बाबर से औरंगजेब तक के समय में से अकबर काल को भारतीय शास्त्रीय संगीत का स्वर्णयुग स्वीकार किया जाता है। श्री गुरूनानक देव जी बाबर के समकालीन थे और उन्होंने पूर्वकालीन और समकालीन संगीत परम्पराओं के मन्थन से अपने मत के प्रचार के लिए जिस संगीत परम्परा का आरम्भ किया वह "गुरमति संगीत" है। यह परम्परा लगभग भारतीय शास्त्रीय संगीत के स्वर्णयुग के समानान्तर सुदृढ़ और स्थापित रूप में उजागर हुई। श्री गुरू अर्जुनदेव जी अकबर के समकालीन थे और गुरमति संगीत के विकास के संदर्भ में गुरू अर्जुनदेव जी का समय भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है, क्योंकि इस महान् गुरू ने "श्री गुरू ग्रन्थ साहिब" की संपादना कर मध्यकालीन अध्यात्मिक सोच के मंथन में से अमृत (श्री गुरू ग्रन्थ साहिब) का सृजन किया। "श्री गुरू ग्रन्थ साहिब" ही "गुरमति संगीत" का आधार ग्रन्थ है। श्री गुरू अर्जुन देव जी के बाद यह परम्परा निरन्तर विकासशील रही। श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी के उपरान्त "श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी" को गुरू के रूप में मान्यता के पश्चात् यह परम्परा आज भी विद्यमान है।

उक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि यह परम्परा केवल सिक्ख धर्म के क्रियात्मक संगीत, कीर्तन के जैसी प्रणाली नहीं, अपितु इसके विशिष्ट सिद्धान्त, स्वरूप प्रकृति है। दश गुरू साहिबों के उपरान्त 'श्री गुरू ग्रन्थ साहिब' को गुरू गद्दी बख्श देना महज इत्तफाक नहीं अपितु शब्द गुरू के केन्द्रीय गुरमति सिद्धान्त को स्पष्ट रूप में मान्यता देना है। इस शब्द गुरू का संचार संगीत द्वारा ही सम्भव हे ऐसा "श्री गुरू ग्रन्थ साहिब" की सम्पादना से स्पष्ट हो रहा है। इसलिए सिक्ख धर्म में गुरूमति संगीत के

विशिष्ट रूप में श्री गुरूनानक देव जी से लेकर वर्तमान में "श्री गुरु ग्रन्थ साहिब" जी के अंग–संग विद्यमान है। इस वाणी के प्रकाश एवं बोध के लिए संगीत मुख्य संचार माध्यम के रूप में प्रयोग हो रहा है। "गुरमति संगीत" की सिद्धान्त परम्परा के दर्शन"श्री गुरू ग्रन्थ साहिब" की रागात्मक सम्पादन और वाणी के भिन्न–भिन्न फरमानों, उद्धरणों और संकेतों से किए जा सकते हैं। इसके साथ ही गुरू नानक देव जी से लेकर अब तक यह परम्परा कियात्मक रूप में सिक्ख धर्म के पैरोकारों के नित्यप्रति के अध्यात्मिक कर्म के अभिन्न अंग है। इस कियात्मकता ने भारतीय संगीत में विलक्षण और पहचान योग्य जगह बनाई है। इस परम्परा ने अपनी पूर्वकालीन और समकालीन धार्मिक और संगीत परम्पराओं में से अनेक तत्त्वों और उपकरणों को गुरमति अनुशासन का धारणी बनाकर 'गुरमति संगीत' नाम की विशिष्ट परम्परा के तौर पर स्थापित किया है।[21]

पादटिप्पणियां

1. डा0 गुरनाम सिंह , गुरमति संगीत अंक 1997, पृ0 21
2. आदि ग्रन्थ, शलोक महला 4, पृ0 1423
3. वही, महला – 3, पृ0 849
4. वही, रामकली महला – 5, पृ0 958
5. वही, प्रभाती महला –1, पृ0 1342
6. डा0 गुरनाम सिंह , गुरमति संगीत अंक 1997, पृ0 63–65
7. महान कोश, पृ0 1014
8. गुरू ग्रन्थ कोश, पृ0 302
9. महान कोश, पृ0 441
10. भाई वीरसिंह सन्थया, श्री गुरू ग्रन्थ साहिब (पहली पोथी), पृ0 182
11. शब्दार्थ श्री गुरू ग्रन्थ साहिब, पहली पोथी, पृ0 74
12. निबन्ध संगीत, पृ0 557–58
13. आदि ग्रन्थ, विलावल महला 1, धिति घरु 10 जति, पृ0 838
14. महान कोश,, पृ0 502

15. साहब सिँह (यू), श्री गुरू ग्रंथ साहिब दर्पण (पोथी छटी), पृ0 229

16. डॉ. गुरनाम सिंह, गुरूमति संगीत अंक, पृ0 67

17. आदि ग्रन्थ, गऊड़ी गुआरेरी, महला 3, पृ0 158

18. वही, गऊड़ी सुखमनि, महला 5, अष्टपदी–6, पृ0 270

19. वही, गऊड़ी पूर्वी, महला –4, पृ0 172

20. वही, सिरी राग, महला –3, पृ0 68

21. डा0 गुरनाम सिंह, गुरमति संगीत, अंक, पृ0 63–69



आदि ग्रन्थ में प्रयुक्त राग

श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में प्रयुक्त 31 रागों की तालिका इस प्रकार है :–

1. रागु सिरी
2. रागु मांझ
3. रागु गउड़ी
4. रागु आसा
5. रागु गुजरी
6. रागु देवगान्धरी
7. रागु बिहागड़ा
8. रागु बड़हंस
9. रागु सोरठी
10. रागु धनासरी
11. रागु जैतसिरी
12. रागु तोड़ी
13. रागु बैराड़ी
14. रागु तिलंग
15. रागु सूही
16. रागु बिलावली
17. रागु गौड़
18. रागु रामकली
19. रागु नटनारायण
20. रागु माली गउड़ा
21. रागु मारु
22. रागु तुखारी
23. रागु केदार
24. रागु भैरउ
25. रागु बसन्तु
26. रागु सारंगु
27. रागु मलार
28. रागु कानड़ा
29. रागु कलियान
30. रागु प्रभाती
31. रागु जैजैवन्ती ।

श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में प्रयुक्त 31 रागों का परिचय

1. रागु सिरी

ग–ध वर्जित आरोह में, रि–ध कोमल, मा तीख ।
रि–प वादी–संवादि तें, श्री रागहि को सीख ।।

थाट–पूर्वी

वादी–रे, संवादी–प

स्वर–रे–ध कोमल, मे तीव्र

जाति–औडुव–सम्पूर्ण

समय–शाम (सूर्यास्त)

आरोह–स रे रे, स–रे मे प , नि सां ।

अवरोह–सं नि ध, मे ध प , मे ग रे, ग रे, रे स ।

पकड़–रे रे प, मे ध प ।

श्री राग का थाट पूर्वी, जाति औडुव सम्पूर्ण, वादी रिषभ संवादी पंचम है पर कई संगीतक़ार 'स–प' या 'रे ध' वादी सम्वादी मानते हैं क्योंकि शास्त्रों के नियमानुसार 'रे प ' वादी सम्वादी नियम के अपवाद माने जाते हैं पर रागों में स्वरूप और चलन को ध्यान में रखते हुए मारवा राग के समान ही श्री राग के रे–प वादी सम्वादी को भी मानना पड़ेगा। इसके आरोह में ग–ध स्वर वर्ज हैं और अवरोह सम्पूर्ण है । इस राग को सूर्यास्त समय पर गाया जाता है।

यह पूर्वांगवादी और आलाप प्रधान राग है। इसकी प्रकृति गम्भीर और शान्त रस संयुक्त है विलम्बित में यह राग बहुत प्रभाव डालता है इस राग को जानने के लिए कड़ी मेहनत की जरूरत होती है।

सन्ध्याकालीन रागों में श्री एक ऐसा ही रागांग है जो अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है। श्री राग की सबसे बड़ी पहचान कोमल रे का विशिष्ट गमक युक्त प्रयोग है स स ग रे रे स कहते ही श्री का रूप कण गोचर हो जाता है। श्री का रिषभ आन्दोलित गमक है या प्रकम्पित है यह प्रश्न अक्सर किया जाता है। शास्त्रीय दृष्टि से

श्री का 'रे' आहत गमक का एक प्रकार दिखाई देता है इसमें पूर्व स्वर के पश्चातवर्ती स्वर के आघातयुक्त स्पर्श से धीमी लय में गाया जाता है यह स्पर्श कुछ झटके के साथ होता है। श्री के 'रे' का प्रयोग 'ग' के आघात के साथ होता है।

श्री की दूसरी पहचान 'रे प' तथा 'प रे' की मींड युक्त संगति है यह रागांग उपयुक्त स्वर संगतियों अवरोह में स्पष्ट होता है। मे प ध़ प, ध़ म ग रे़, ग रे़, प रे़ ग रे़ स यह अवरोही वर्णमाला श्री राग का स्पष्ट आर्विभाव कर देती है।

2. रागु मांझ

थाट–खमाज

वादी–रे, संवादी–प

जाति–औडुव सम्पूर्ण

स्वर–दोनों गान्धार दोनों निषाद

वर्जित स्वर – आरोह में ग और ध

समय–रात्रि का दूसरा पहर

आरोह–स रे, म प , नी सं ।

अवरोह–सं नी़ ध प, म प ग म , रे प, ग़ रे, ग–स ।

माझ राग की उत्पति खमाज थाट से मानी गई है इसकी जाति औडुव या षाडव सम्पूर्ण मानी जाती है । इसके आरोह में ग ध स्वर वर्जित है लेकिन कई गायक–वादक आरोह में भी गन्धार स्वर का प्रयोग कर लेते हैं । वादी स्वर रिषभ और संवादी स्वर पंचम है और गायन समय रात्रि का दूसरा पहर है । इस राग में दोनों गन्धार दोनों निषाद स्वर लगते हैं और बाकी सब स्वर शुद्ध प्रयोग किए जाते हैं । इस राग का अवरोह वक्र सम्पूर्ण रहता है जैसे – मध्यम स्वर पर थोड़ा ठहर कर फिर "रे प, ग़ रे, ग़ स" यह स्वर प्रयोग करके षडज स्वर पर आया जाता है क्योंकि "प ध म प ग म, रे प–म़ रे, ग़ स " यह स्वर समूह ही राग 'माझ' के स्वरूप को उजागर करते हैं।

3. रागु गउड़ी

गौरी भैरवि ठाठ की, रि–ध कोमल कर मान ।

चढ़ते ध–ग को बरजकर, रि–प संवाद प्रमान ।।

थाट–भैरव

वादी–म, संवादी – स,

समय–रात्रि का चौथा पहर

आरोह–स, नि रे ग मं, प ध नि, सां ।

अवरोह –सं नि ध प म, ग रे नि़, स ।

पकड़ – स, नि़, ध़, नि़, रे ग रे म, ग रे नि़, ध़ नि़ ध़ .प म़ .प ऩी रे स।

गैरी राग के बहुत से प्रकार हैं उनमें से यह एक भैरव थाट से उत्पन्न होने वाला भेद है। कुछ लोग इसकी जाति ओड्व–सम्पूर्ण मानते हैं और इसके आरोह में ग और ध स्वर बर्ज रखते हैं। कईं विद्वान इसकी जाति सम्पूर्ण और कई वक्र सम्पूर्ण मानते हैं। इस़ राग का वादी सम्वादी स्वर रे और प है। कई लोग, वादी सम्वादी रे ध और कई लोग प–स और क़ई लोग म–स भी मानते हैं। इसका गायन समय रात्रि का चौथा पहर हैं। गौरी के इस प्रकार में मध्यम स्वर शुद्ध प्रयोग किया जाता है।

4. रागु आसा

औड्व–संपूरन कहत, आरोहन ग–नि त्याग ।

म–स वादी संवादि तें, सोभित आसा राग ।।

थाट–बिलावल

वादी–म, संवादी–स

वर्जित स्वर–आरोह में गन्धार ओर निषाद

जाति–औड्व – सम्पूर्ण

समय–रात्रि का चौथा पहर (अम्रित वेला)

आरोह–स, रे, म, प, ध, सं ।

अवरोह–सं नि ध, प म ग़ रे स ।

बिलावल थाट जन्य इस राग का वादी स्वर म और संवादी स्वर स है। आरोह

में गन्धार निषाद वर्ज होने से इसकी जाति औडुव–सम्पूर्ण है और गायन समय रात्रि का चौथा पहर है। इसमें सभी स्वर शुद्ध लगते हैं। यह एक उत्तरांग प्रधान राग होने के कारण इसका जीवन स्वर तार सप्तक का सा है। इसमें " प ध सं रें, गं रें गं रें, नि, प प ध सं" या स रे म, प ध सं, नि प, प म ग रे स–रे ग रे स" – तान बार बार लगाया जाता है। यह बहुत ही सरल और भक्ति रस प्रधान राग है। राग की खूबसूरती बढ़ाने के लिए बहुत से विद्वान निषाद और गन्धार कोमल भी लगा लेते हैं जैसे :– " प ध म, रे म प, ध नि ध प म, प ध सं–सं रें गं, सं, ध, ध प, नि सं"

5. रागु गुजरी

थाट–तोड़ी

वादी–ध, संवादी–ग

स्वर–रे ग ध कोमल और मे तीव्र

वर्जित स्वर–पंचम

जाति–षाड़व–षाड़व

समय–दिन का प्रथम पहर (लगभग आठ बजे)

आरोह–सा रे ग, मे ध , नि सां ।

अवरोह–सां, नि ध, मे ग, रे स ।

राग गुजरी तोड़ी थाट का राग है इसका वादी स्वर कोमल ध और संवादी स्वर कोमल ग या रे मानते हैं। गुजरी राग के आरोह और अवरोह में पंचम स्वर वर्ज कर देने से यह षाडव जाति का राग कहलाता है। इसका गायन समय दिन का प्रथम पहर है इसका स्वरूप इस प्रकार है – सा रे ग रे ग रे स, ध ध ऩी ऩी ध ऩी रे ग रे स। स रे ग मे रे, रे ग रे, ग रे स। ग मे ध, मे ध नी सां रे, ध रें रें सं, नी ध मे ध, मे ग रे, ग रे स।

इसके अन्तरे का उठान में ध सं, या ध मे ध, मे ध सं इस प्रकार से होता है।

यह एक गम्भीर प्रकृति का राग है इस राग का विस्तार विशेष रूप से मध्य और तार सप्तकों में होता है। कुछ लोग इसके आरोह में षड़ज की उपेक्षा करके ऩि रे ग

भी जाते हैं। इसमें रिषभ, गन्धार, धैवत और तार षड़ज न्यास के स्वर हैं। इस राग का चलन बिल्कुल तोड़ी की भान्ति है।

6. रागु देवगान्धरी

थाट आसावरी ध नि कोमल दो गन्धार विचार ।

ध ग सम्वाद द्वितीय दिन, गावत देव गन्धार ।।

थाट–आसावरी

वादी–ध, संवादी–ग

जाति–सम्पूर्ण–सम्पूर्ण

समय–प्रातःकाल अर्थात् दिन का दूसरा पहर

आरोह–रे म प, नि ध ऽ नि सं ।

अवरोह–सं नि ध ऽ प, ध म प ग ऽ रे स, रे ग म प ग रे स ।

पकड़–ध म प ग ऽ स रे स, रे नि स रे ग ऽ म ।

देवगंधारी आसावरी थाट का जन्य राग माना जाता है। इस राग में दोनों गन्धार, धैवत और निषाद कोमल तथा अन्य सभी स्वर शुद्ध लगते हैं कुछ लोग इसे भैरवी और काफी थाट का जन्य भी मानते हैं लेकिन आजकल के प्रचलित देवगन्धार को आसावरी थाट के अन्तर्गत मानना ही ठीक है।

कुछ लोग इस राग की जाति षाड़व सम्पूर्ण मानते हैं क्योंकि वे इसके आरोह में गन्धार को वर्ज करके छः स्वरों का ही प्रयोग करते हैं। कुछ लोग इसे औडुव सम्पूर्ण जाति का राग मानकर धनाश्री अंग से गाते हैं लेकिन यहाँ पर आसावरी अंग से गाए जाने वाले देवगन्धार का ही वर्णन करेंगे। इसमें आरोह में 'ग' बर्ज करते हुए 'रे म प ' बार बार प्रयोग करते हैं। किन्तु प्रत्येक आलाप के अन्त में शुद्ध गन्धार का आरोहात्मक प्रयोग बड़ा महत्त्वपूर्ण है। ज़ो एक ओर देवगन्धार को आसावरी तथा जौनपुरी रागों से अलग करता है और दूसरी ओर देवगन्धार राग का रूप बनाए रखता है। अवरोहात्मक स्वरों में सदैव गन्धार का कोमल रूप प्रयोग किया जाता है। दो गन्धार लगाए जाने के कारण कुछ विद्वानों के मतानुसार सर्वप्रथम इसका नाम द्विगन्धार पड़ा जो बाद में बिगड़ता हुआ देवगन्धार हो गया।

यह एक उत्तरांग प्रधान राग है अतः इसकी चलन अधिकतर मध्य और तार सप्तकों में अधिक होती हैं।

कुछ विद्वान् आरोह में निषाद छोड़कर आसावरी के समान म प ध सं लेते हैं और कुछ जौनपुरी के समान म प ध नि सं प्रयोग करते हैं।

इसमें कोमल गन्धार पर मध्यम का और रिषभ पर षड़ज का कण लगाते हैं।

स्वरूप – स, नी, नी स । स, रे म प , म ग स रे, ग म, प ग ऽ स रे स। म प ध ऽ म प , नी ध प, नि, नी सं, रे नि ध प, ध म प ग ऽ, रे स, नी स रे ग म , ग म प ग ऽ रे स।

7. रागु बिहागड़ा

आरोही रे अल्प ले, द्वै निषाद ले मान ।

ग–नि वादी संवादि ते, बिहागड़ा पहचान ।।

थाट–बिलावल

वादी–गन्धार, संवादी–निषाद

वर्ज्य स्वर–आरोह में रिषभ

जाति–षाड़व–सम्पूर्ण

गायन समय–रात्रि का दूसरा पहर

आरोह–ऩि, स ग, ग म प ध नि ध प नीं सं। अवरोह–सां नि ध प, नि ध प , म ग रे स ।

पकड़–ग म प ध नि ध प, ग म ग, रे स।

विशेषता

1. यह बिहाग का एक प्रकार है प्रचलित बिहाग में तीव्र मध्यम न प्रयोग करते हुए वक्र रूप से कोमल नि प्रयोग करने से राग बिहागड़ा होता है।
2. आरोह, अवरोह दोनों में शुद्ध निषाद प्रयोग किया जाता है। इसके

अवरोहात्मक स्वरों में कोमल 'नि' का प्रयोग किया जाता है। जैसे – प ध नि ध प।

3. कुछ विद्वान् इसकी जाति औडुव सम्पूर्ण मानते हैं क्योंकि तार सां पर जाते समय धैवत लङ्गन कर जाते हैं, जैसे प नि सं।

4. इस राग में षड़ज मध्यम और निषाद न्यास के स्वर हैं। इसका समप्रकृतिक राग है – पट बिहाग। जब हम बिहागड़ा शुरू करते हैं तो बिहाग का आभास होता है। और फिर जब मध्यम स्वर पर न्यास करते हैं तो बिहाग राग से अल्ग हो जाता है। लेकिन जब हम कोमल निषाद का प्रयोग करते हैं तो बिहागड़ा साफ प्रकट हो जाता है। वैसे बिहागड़ा में विशेष रूप से मध्यम पर और पट बिहाग में गन्धार और पंचम पर न्यास होता है।

कुछ लोग रिषभ और धैवत वर्ज मान कर इसकी जाति औडुव सम्पूर्ण रखते हैं लेकिन साथ ही इस राग के स्वरूप को सुनने से आरोह में रिषभ और धैवत दुबर्ल अवश्य जान पड़ते हैं किन्तु वर्ज नहीं।

स्वरूप–स, ग, म, ग रे स़ । ऩी, स, प़, ऩी स । सं ग म, ग म प ध <u>नि</u> ध प (प) म ग, रे सं । स ग , म ग म , प ध <u>नि</u> ध प, ग म प <u>नि</u> ध प, गं म प नी सं गं रें सं, प नी सं रें सं, नी ध प, ग म प ग म, ग रे स ।

मतभेद

1. कुछ लोग इस राग को खमाज थाट जन्य भी मानते हैं और अवरोह में कोमल निषाद का सीधा प्रयोग करते हैं । जैसे – स नी ध प ।
2. कुछ लोग इसमें वादी म और सन्वादी सा भी मानते हैं ।

8. रागु बड़हंस

थाट–खमाज

वादी–स, संवादी – प

वर्जित स्वर–आरोह में गन्धार और धैवत

जाति–औडुव–सम्पूर्ण

समय–दिन का दूसरा पहर

आरोह–स रे म प नी सं ।।

अवरोह–सं नि, प ध प म ग, रे नि स।

यह राग खमाज थाट से उत्पन्न होता है । इसकी जाति औडुव सम्पूर्ण है । वादी षडज संवादी पंचम है और गायन का समय दिन का दूसरा पहर है।

बड़हंस एक स्वतन्त्र राग है पर फिर भी इसके पूर्व में तिलक कामोद, मध्य में देस और उत्तर भाग में सारंग राग की झलक दिखाई देती है।

आजकल के समय में कई संगीतकार बड़हंस और बड़हंस सारंग राग को एक ही राग मानते हैं। पर प्राचीन और आधुनिक संगीत ग्रन्थों की खोज से पता चलता है कि बडहंस आर बडहंस सारंग दो भिन्न राग हैं क्योंकि इनके थाट जाती वादी संवादी में काफी अन्तर है।

9. रागु सोरठी (राग सोरठ)

ग–ध वर्जित आरोह में, रि–ध संवाद अनूप ।

दोनों नी नीके लगें, लखि सोरठ को रूप ।।

थाट–खमाज

वादी–रे, संवादी–ध

वर्जित स्वर–आरोह में गन्धार और धैवत

जाति–औडुव–सम्पूर्ण

गायन समय–रात्रि का दूसरा पहर

आरोह–सा रे म प नी सं ।

अवरोह–सं, रें, नी ध, म प ध, म रे नि़, स ।।

चलन–स, रे म प, नी, सं, रें, नी ध, प ध म रे रे प

म रे रे, रे स।

रे , प. म, प, ध, म रे नि, ध, म रे, रे म प नी, सं रे नि ध, मं रे, प, म रे, रे नि, स।

1. सोरठ, खमाज थाट से उत्पन्न होने वाला एक औडुव सम्पूर्ण राग है, खमाज ठाठ के रागों के दो मुख्य वर्ग हैं – 1. वे राग जिनमें गन्धार प्रबल रहता है।
2. वे राग जिनमें गन्धार प्रबल रहता है। सोरठ के आरोह में गन्धार और धैवत स्वर वर्ज होते हैं। अवरोह में भी गन्धार स्वर दुर्बल रहता है। इसका किचिंत प्रयोग मध्यम से रिषभ तक आने वाली मींड़ में किया जाता है। यह मींड सोरठ के लिए जीव भूत अंग ही है। इस राग का देस राग से बहुत साम्य है, कम से कम प्रमाण में गन्धार का प्रयोग कर इसे देस से भिन्न किया जा सकता है। इसके सिवाय 'धम रे' स्वर संगति से भी देस काफी दूर हो जाएगा।

10. रागु धनासरी (धनाश्री)

थाट–काफी

वादी–पंचम, संवादी–षड़ज

वर्जित स्वर–आरोह में रे और ध।

जाति–औडुव–सम्पूर्ण

समय–दिन का तीसरा पहर।

आरोह–नी, स ग म प, नी सं।

अवरोह–सं नी ध प , म ग रे स।

यह राग काफी थाट से उत्पन्न होता है इसमें गान्धार और निषाद कोमल तथा अन्य सभी स्वर शुद्ध लगते हैं। एक प्रकार की धनाश्री को भैरवी थाट के अन्तर्गत भी गाया जाता है किन्तु वह प्रचार में नहीं हैं। इस राग में रिषभ और धैवत का दुर्बल्य तथा पंचम का बहुत्व इसे भीमपलासी राग से अलग कर देता है। इसमें पंचम और गन्धार की संगति बहुत भली मालूम होती है।

11. रागु जैतसिरी (जैतश्री)

रि–ध कोमल, मध्यम कडत्री, ग–नि संवाद बनाय।

आरोही रि–ध बरज कर, राग जैतश्री गाय।।

थाट–पूर्वी

वादी–ग, संवादी–नि

स्वर–रिषभ, धैवत कोमल और मध्यम तीव्र

वर्जित स्वर – आरोह में रे और ध।

जाति–औड़ुव – सम्पूर्ण

समय–दिन का चौथा पहर

आरोह–स ग मे प नी सं।

अवरोह–सं, ऐं नि ध प, मे ग, प ग रे स।।

पकड़–स ग प, ध मे प, सां रें नी ध प, मे ग, प ग रे स ।।

विशेषता

1. इसमें दो रागों 'जैत' और 'श्री' का सुन्दर मिश्रण है इसके पूर्वांग मेगं जैत और उतरांग में श्री राग है । (1) मे प नी सं (2) रे नि ध प श्री रागांग है और (1) ग प, तथा (2) प ग रे सा जैत रागांग हैं ।
2. यह सन्धयाकालीन सन्धिप्रकाश राग है। सन्धिप्रकाश रागों के लिए रिषभ का कोमल होना और गन्धार का शुद्ध होना आवश्यक है। इसके साथ–साथ सायंकालीन सन्धिप्रकाश रागों में तीव्र मध्यम प्रधान होता है। और प्रातःकालीन सन्धिप्रकाश रागों में शुद्ध मध्यम प्रधान होता है। यह सभी बातें इस राग में है इसलिए इसे सांयकालीन सन्धिप्रकाश राग माना जाता हैं।
3. इस राग में ग प, प, ग और रें नि की संगति प्रमुख है ।

यह गम्भीर प्रकृति का राग है। इसकी चलन तीनों सप्तक में समान रूप से होती है।

कुछ लोग इसमें वादी 'प' और सम्वादी 'स' भी मानते हैं , और कुछ लोग इसे प्रातः कालीन राग बताते हैं पर वह उचित नहीं है ।

स्वरूप–सा, ऩि स ग, मे ग मे, ग, प ग रे स । ऩी रे स, नि सा, ़प ऩि सा, ग, प, मे ध मे ग, ग मे, मे ग, ध प , मे ध मे ग मे ग रे स ।

12. रागु तोड़ी

रि–ग धा कोमल, तीव्र मा, ध–ग संवाद बखान ।

संपूरन तोड़ी कही, समय दोपहर मान ।।

थाट–तोड़ी

वादी–गन्धार, संवादी–धैवत

स्वर–रे–ध कोमल, मे तीव्र

जाति–सम्पूर्ण

समय–दिन का दूसरा प्रहर

आरोह–स, रे ग, मे प, ध नी सं।

अवरोह–सं नी ध, प, मे ग, रे स।

पकड़–स, रे ग, रे गे, रे स।

तोड़ी अपने थाट का आश्रय राग हैं। अतः थाट का नामकरण इसी राग से हुआ है। तोड़ी का आरोह–अवरोह सम्पूर्ण है। अतः यह सम्पूर्ण जाति का राग है। तोड़ी में वादी स्वर धैवत तथा सम्वादी स्वर गन्धार है। इस राग में रिषभ गन्धार, धैवत कोमल तथा अन्य स्वर शुद्ध लगते हैं। तोड़ी शान्त प्रकृति का राग है। तथा इस राग के गायन से करुण रस का सृजन होता है। ऐसा विद्वानों का मत है। तोड़ी का गायन समय दिन का दूसरा पहर माना गया है। कोई–कोई आसावरी, जौनपुरी गान्धारी, देसी तथा रवट ये तोडी के प्रकार मानते हैं। तथा उन्हें उसी पहर में गाते हैं। तोड़ी सम्पूर्ण जाति का राग होते हुए भी इसके आरोह में पंचम अल्प मात्रा में प्रयोग किया जाता है। परन्तु इसको गाते समय पंचम आरोह–अवरोह में छोड़ा नहीं जाता। ऐसा करने से गुजरी तोड़ी हो जाने की सम्भावना रहती हैं। तोड़ी राग के प्राण रे ग ध स्वरों में ही रहते

हैं और स ग ध पर विशेष रूप से न्यास किया जाता है । रे ग स्वरों का सम्वाद इस राग का जीव भूत अंग ही बना हुआ है । तोड़ी राग के गायन में ध़ ऩी स रे ग, रे ग, रे स अथवा स रे, स रे स रे ग, रे स जहाँ यह दो स्वर समूहदाय प्रयोग किए कि राग का स्वरूप प्रकट होकर चमक उठता है तोड़ी के पूर्वांग में ध़ ऩी स रे ग, स रे ग मे ग, मे ग रे, रे, स । और उत्तरांग में मे ध मे ध नी सं, सं नी ध प, मे ध नी ध प, मे ध मे ग रे ग मे ग । इस प्रकार के स्वर लिए जाते हैं । इस राग में गन्धार और धैवत पर अभ्यास पर अभ्यास मूलक बहुत्व दिखाया जाता है । तोड़ी राग जितना मधुर है उतना ही उसे गाना कठिन है ।

तोड़ी का चलन मन्द्र, मध्य तथा तार तीनों सप्तकों में खुलकर होता है ।

इस राग की प्रकृति गम्भीर है और इससे करुण रस की निष्पति होती है ।

13. रागु बैराड़ी

मा तीवर, कोमल रिषभ, ग ध सम्वाद सँजोय ।

थाट मारवा से प्रगट, राग वराटी होय ।।

थाट–मारवा

वादी–ग, संवादी–ध

जाति–वक्र – सम्पूर्ण

गायन समय – दिन का चौथा पहर (सांयकाल)

आरोह–स, ऩि रे̱, ग प, मे ग, मे ध, सं ।

अवरोह–सं, रें̱ नी प,प ध ग, मे ध मे ग,प ग, रे̱ स ।

बैराड़ी मारवा थाट का राग है। इसकी जाति वक्र सम्पूर्ण है। वादी गन्धार, सम्वादी धैवत, तथा गायन समय दिन का चौथा पहर (सांयकाल) है। इसमें रिषभ कोमल, मध्यम तीव्र तथा बाकी सब स्वर शुद्ध लगते हैं। मारवा थाट का विभास और बैराड़ी दोनों समप्रकृत राग हैं लेकिन विभास का वादी स्वर धैवत और सम्वादी गन्धार है और बैराड़ी का वादी स्वर गन्धार और सम्वादी धैवत हैं। विभास उत्तरांग प्रधान राग है और वैराड़ी की प्रधानता पूवार्ग में दिखाई देती है। यह राग मारवा के अंग से गाया

जाता है। परन्तु पंचम स्वर लगने के कारण यह मारवा राग से स्वतन्त्र हो जाता है। इसमें स प व ग प इन स्वर संगतियों का महत्व है। मध्यम इसमें रखना ही उचित है। यह राग तोड़ी, त्रिवेणी व देशकार इनके संयोग से बनता है। ऐसा जानकारों का मत है। कोई इसमें कोमल धैवत लगा कर इसको पूर्वी थाट का मानते हैं। वराटी (वैराड़ी) के बहुत से प्रकार प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित किए गए हैं।

यह एक गम्भीर तथा आलाप प्रधान राग है, इसका स्परूप इस प्रकार है :–

"ऩि रे॒ ग, मे ग प , प ध ग, रें॒ नि प, ध ग, मे ध मे ग , प ग रे॒ स ।

14. रागु तिलंग

रि–धा वर्जित , दै नी लगें, लीख खम्माजहि अंग ।

ग–नि वादी संवादि तें, गावत राग तिलंग ।

थाट–खमाज

वादी–ग, संवादी–नि

वर्जित स्वर–रे, ध

जाति–औड़ुव–औड़ुव

समय–रात्रि का दूसरा पहर

आरोह–ऩि स ग म प नी सं ।

अवरोह–सं , नि॒ प, म ग, स ।

इसकी उत्पत्ति खमाज थाट से हुई है। इसके आरोह में 'शुद्ध निषाद' और अवरोह में कोमल निषाद है। इसमें प्रायः ठुमरी, भजन, गज़ल आदि गाए जाते हैं। इसमें ख्याल गायकी कम सुनने को मिलती है। यह चंचल प्रकृति का राग है। यह श्रृंगार रस प्रधान राग है। इसमें 'नि प ' संगति प्रमुख है। इसमें विवादी स्वर के नाते कभी–कभी रिषभ को अवरोही में ले लेते हैं। जैसे – ग म प नी सं, रें सं, नि प। इसके अवरोही के अन्त में ग म ग सा। इस राग के कोमल निषाद पर पंचम का कण इस प्रकार होता हैं। सां नि॒ प , ग म ग सा।

राग का स्वरूप–"ग म प नि, प म ग, ग म प नी, सं–नि प, म म ग, स" इस प्रकार है । राग की विशेषता ग प नी इन तीनों स्वर पर निर्भर है ।

15. रागु सूही

जब काफी के ठाठ सों, धैवत दियो हटाय ।

गानि कोमल सम्वाद म स , सूहा राग सुहाय ।।

थाट–काफी

वादी–म, संवादी–सं

वर्जित स्वर–आरोह में रिषभ और धवैत, अवरोह में ध

जाति–औडुव–षाड़व

गायन समय–मध्याह काल (दोपहर)

आरोह–ऩि स, ग म ऽ म प, प नि प सं । ।

अवरोह–सं प नि प, म प , म प , ग ऽ म रे स ।

पकड़–ऩि स म ग म प, प नि प , म ग म रे स ।

राग 'सूहा' 'कान्हड़े' का एक प्रकार माना जाता है। इसका प्रत्येक आलाप ग म रे स से समाप्त किया जाता है। जो कान्हड़ा अंग का सूचक है। नि प की संगति, आन्दोलित गन्धार और अवरोह में वक्र गन्धार इस बात को सिद्ध करते हैं कि यह कान्हड़े का एक प्रकार है।

कुछ विद्वान् इस राग में मेघ मल्हार और कान्हड़ा का, कुछ कान्हड़ा सारंग और मल्हार का, और कुछ विद्वान् प्रचलित प्रकार में बहार और सारंग का योग मानते हैं ।

आरोह में कभी–कभी शुद्ध निषाद का प्रयोग करते हुए तार स पर जाने का प्रचलन है। अधिकांश विद्वान केवल कोमल नि प्रयोग करते हैं और शुद्ध नी प्रयोग भी है तो प्रवेशक स्वर के रूप में। दोनों निषादों के प्रयोग से सारंग अंग स्पष्ट हो जाता है। न्यास के स्वर है सा, ग म और प समप्रकृति राग – नायकी, सुघराई , शहाना और देवशारब।

स्वरूप – सा रे सा, ऩी म ग ऽ , म प ग ऽ, म रे स । ऩि स, म ऽ प , ग ऽ म, प म नी प , सं मं गऽ मं रें सं, नी प म प ग ऽ म, सा रे स ।

16. रागु बिलावली

शुद्ध सुरन सों गाइए, ध–ग संवाद बखान ।

राग बिलावल को समय, प्रातःकाल प्रमान ।।

थाट–बिलावल

वादी–धैवत, संवादी–गन्धार

स्वर–सब शुद्ध

जाति–सम्पूर्ण–सम्पूर्ण

समय–प्रातःकाल का प्रथम पहर

आरोह–स, रे, ग , म, प , ध, नि, सं ।

अवरोह–सं, नि, ध, प, म, ग, रे, स ।

पकड़–गरे, ग प , ध नि सं ।

यह बिलावल थाट का आश्रय राग है। इस राग में सभी स्वर शुद्ध लगाए जाते हैं। यह राग बहुत कुछ कल्याण जैसा प्रतीत होता है। अतः कुछ लोग इसे प्रातःकालीन कल्याण भी कह देते हैं। इसी राग के आरोह में जब मध्यम वर्ज कर दिया जाता है। तथा अवरोह में किंचित कोमल निषाद लेते हैं। तब गुणी जन इसे अल्हैया बिलावल की संज्ञा दे देते हैं। यह बिलावल अंग का प्रकार है। यह श्रृंगार रस का राग है इसकी प्रकृति चपल है।

17. रागु गौड़

थाट–बिलावल

वादी–म, संवादी–स

जाति–वक्र सम्पूर्ण

समय–दिन का दूसरा पहर

आरोह–स ग, रे म , ग प, नि ध नि सं ।

अवरोह–सं नि ध नि प, म–ग रे स ।

गौड़ रागों की गिनती अप्रचलित रागों में की जाती है। यह बिलावल थाट का राग है। इसकी जाति वक्र सम्पूर्ण, वादी मध्यम, सम्वादी षड़ज हे और गायन समय दिन का दूसरा पहर है, सगीत परिजात, राग विबोध ओर संगीतसारमृत आदि ग्रन्थकारों ने गौड़ में सब स्वर शुद्ध माने हैं। इसके इलावा पुरातन शब्द जिनको गायक गाते आ रहे हैं उनमें भी शुद्ध स्वरों का प्रयोग किया गया है। गौड़ का एक प्रकार पंडित विष्णुनारायण भातखण्डे अपनी कमिक पुस्तक मालिका भाग ठटा के पृष्ठ नं0 339 पर इसका वर्णन इस प्रकार करते हैं – "गौड़ काफी थाट से उत्पन्न होने वाले अप्रसिद्ध स्वरूप है पूवार्ग में कान्हड़ा और उत्तरांग में मल्हार ऐसे संयोग से इस राग का स्वरूप बनता है जाति सम्पूर्ण है" राग दर्शन द्वितीय भाग में, पं0 माणिक बुआ ठाकुर दास इस राम का वादी संवादी ग ओर नि स्वर मानते हैं । ग्रह स्वर निषाद होने से स्वाभाविक गन्धार महत्त्वपूर्ण होता है ।

18. रागु रामकली

जब मा–नी के रूप दो, भैरव ठाठ लखाय ।

धा कोमल, संवाद प–स, रामकली बन जाए ।।

थाट–भैरव

वादी–प, संवादी–स

जाति–वक्र– सम्पूर्ण

समय–रात्रि का चौथा पहर (अमृतवेला)

आरोह–स, ग, म, प , ध नि सं ।

अवरोह–सं नि ध प, मे प ध नि ध प, ग, म, रे,स ।

पकड़–ध प, मे प , ध नि ध प ग, म, रे स ।

आजकल भी रामकली के दो तीन रूप प्रचलित हैं। इसका एक रूप सम्पूर्ण रामकली कहलाता है। रामकली का रूप भैरव के बहुत ही निकट है। इसमें पंचम को

प्रबल करके भैरव अंग को युक्तिपूर्वक टालने का प्रयत्न किया जाता है। रामकली में षड़ज, मध्यम और पंचम, महत्त्वपूर्ण स्वर हैं। इसके विभिन्न प्रकारों में इन्हीं तीन स्वरों में से कोई स्वर वादी बना हुआ दिखाई देता है। रामकली एक औडुव प्रकार भी प्रचलित है। इसके आरोह में मध्यम तथा निषाद वर्जित हैं। तथा धैवत वादी स्वर है किन्तु यह प्रकार बहुत ही कम सुनाई देता है।

रामकली के जिस प्रकार का विवेचन हम कर रहे हैं। वह भैरव थाट का वक्र सम्पूर्ण जाति का राग है। इस प्रकार में दोनों मध्यम प्रयुक्त होते हैं। तीव्र मध्यम का प्रयोग प्रायः 'मे प ध नि ध प ' इस प्रकार से होता है। इस टुकरे में कोमल निषाद भी आ गया है। 'भैरव ठाठ' के आश्रय राग 'भैरव' में भी कोमल निषद विवादी के नाते प्रयुक्त होता है। अतः 'ध नि ध प ' यह टुकरा भैरव अग को इगित कर रहा है।

रामकली प्रातःकालीन संधिप्रकाश राग है। यह प्रायः भैरव के गाने के पहले ही गा लिया जाता है। रामकली में पंचम प्रबल है परन्तु भैरव में अपेक्षाकृत मध्यम प्रबल है। रामकली में मध्यम को गौन स्थान प्रदान करके यदि उचित ढंग से पंचम प्रबल कर दिया जाए तो बिना तीव्र मध्यम के भी रामकली पर्याप्त स्पष्ट हो जाती है।

रामकली का विस्तार मध्य, तार सप्तक में अधिक है।

"अनूप-संगीत रत्नाकर" में रामकली के विषय में

"सत्री रामकली पूर्णा सदा गेया विरागिनी "

कहा जाता है इस कथन से यह संकेत मिलता है कि यह राग रस की दृष्टि से श्रृंगार-रस के वियोग-पक्ष को व्यक्त करता है।

19. रागु नटनारायण

थाट-बिलावल

वादी-म, संवादी-स

जाति-वक्र सम्पूर्ण

समय-रात्रि का दूसरा पहर

आरोह-स, रे स, ग म, प , मे प , ध नि सं ।

अवरोह–सं नि ध नि प या (नि प) मे प ग म म रे स।

जाति वक्र सम्पूर्ण , वादी मध्यम, सम्वादी षडत्रज है। कई संगीत विद्वान् इसका वादी संवादी पंचम रिषभ मानते हैं। पर बहुत से विचार हैं कि वादी मध्यम और सम्वादी षड़ज होना चाहिए क्योंकि प–रे वादी सम्वादी करने के साथ इसको छाया नट से अलग करना कठिन है। इस राग में 'मे ध म' तीव्र का प्रयोग केवल पंचम स्वर के साथ किया जाता है। किसी समय अवरोह में निषाद कोमल भी गायक लगाते हैं। इस राग का चलन – "स, रे स, ग म, ग म प , मेप, धप, पसं, धनी सं, रेंसं, निसं नि ध नि प, या सं ध, नि प , मेप, रेग, मप, म ग म रे स" इस तरह रहेगा। नट और नटनारायण दोनों राग सम प्रकृतिक राग है। इन दोनों रागों में बहुत अन्तर है।

20. रागु माली गउड़ा (माली गौरा)

'रे' कोमल है, तीव्र 'मा,' दोनों धैवत मान ।

'रे' वादी, संवादि 'पा,' माली गौरा जान ।।

थाट–मारवा

वादी–'रे,' संवादी–'प'

जाति–सम्पूर्ण

समय–दिन का चौथा पहर (शाम का समय)

आरोह–स, नि, रे ग, मे ध प, मं ध सं, नि रें सं

अवरोह–सं नि रें, नि ध प, मे ध, मे ग, मे ग रे, स।

माली गऊड़ा राग की उत्पत्ति 'मारवा थाट' से मानी गई है। इसकी जाति सम्पूर्ण–सम्पूर्ण वादी स्वर रिषभ और सम्वादी पंचम और गायन का समय दिन का चौथा पहर है। यह पूरिया अंग का मिश्रित राग है। पूरिया षाडब है। माली गौरा सम्पूर्ण है। पूरिया में श्री अंग का पंचम और कोमल धैवत लगाने से माली गऊड़ा राग की रचना होती है क्योंकि पूरिया में शुद्ध धैवत लगता है।

माली गऊड़ा के आरोह में शुद्ध और अवरोह में कोमल धैवत का प्रयोग होता है। इस तरह से इस राग में दोनों धैवत लगते हैं इसका विस्तार अधिकतर मन्द्र और

मध्य सप्तक में किया जाता है। चलन इस प्रकार है – नि़ ध़ नि़, मे़ ध़ नि़, मे नि़, ग़ मे नि, ग़ नि़, मे़ ध़ स, नि रे़ स, नि रे़ ग, मे रे़ ग, मे ध मे ग, धऽ मे ग, मे ध ग, नि मे ग, मे ध रें सं, नि रें़, गं, में गं रें सं। इन स्वरों में पूरिया का भास हुआ है किन्तु स रे़ ग रे स स, रे ग रे प, रे प रे स स प , मे ध़ प , प मे ध़ प, नि ध प, मे प ध प, रें़ नि ध़ प इस प्रकार का श्री अंग निर्देशक पंचम तथा कोमल धैवत से पूरिया नष्ट होता है। वास्तव में माली गौरा का 'धैवत' न तो 'शुद्ध' है और न ही 'कोमल', चतुर गायक मींऽ में लपेटकर इसे इस प्रकार लेते हैं कि श्रोताओं को पता ही न चले कि धैवत कोमल है या शुद्ध यही माली गौरा राग की विशेषता है।

21. रागु मारु

थाट–खमाज

वादी–ग, संवादी–नि

जाति–औडुव–सम्पूर्ण

गायन समय–दिन का तीसरा पहर

आरोह–सा ग, ग म, ᑊ नि, सं ।

अवरोह–सं नि़ , ध प, म ग, रे स ।

पुरातन समय में जिन शब्दों रीतो (टथूनो) को गुरू घर में कीर्तनीएं (रागी) गाते आ रहे हैं, अतः जो इस समय ताल बद्ध स्वर लिपि में मौजूद हैं वह लगभग सभी रीतें खमाज थाट के मारु राग में आती हैं । मारु राग का थाट खमाज जाति औडुव–सम्पूर्ण वादी गन्धार सम्वादी निषाद गायन समय दिन का तीसरा पहर है । इसके आरोह में रे, प स्वर वर्जित है पर अक्सर निषाद स्वर के साथ थोड़ा धैवत प्रयोग होता है । किसी किसी समय गायक निषाद की जगह धैवत लगाकर सीधे तार षडज पर भी आते हैं । इसका विस्तार अधिकतर मध्य और तार सप्तक में ही किया जाता है । यह आलाप प्रधान राग है ।

22. रागु तुखारी

थाट–मिश्रित

वादी–प, संवादी – स

जाति–औडुव–सम्पूर्ण

गायन समय–दिन का चौथा (4–5 बजे)

आरोह–स, ऩि स, ग मे प, म ध, नि प, नि सं ।

अवरोह–सं नि ध प ध मे प, म ग, रे स ।

तुखारी राग का थाट मिश्रित माना जाता है। इसका वादी स्वर पंचम तथा सम्वादी स्वर षड़ज माना गया है। इसकी जाति औडुव–सम्पूर्ण है। इसका गायन अथवा वादन समय दिन का चौथा पहर है। तुखारी राग में दोनों मध्यम तथा दोनों निषाद स्वरों का प्रयोग किया जाता है।

23. रागु केदार

द्वै मध्यम केदार में, म स संवाद सम्हार।

आरोहन रे, ग बर्ज कर, उतरन अल्प गन्धार।

थाट–कल्याण

वादी–म, संवादी–स

जाति–औडुव–षाड़व

समय–रात का प्रथम पहर

आरोह–स रे स, म–प , ध नि सं ।।

अवरोह–सं नि ध प, मे प ध प म , मे रे , स।

पकड़–स म, म प , मे प धप म, रे स।

प्राचीन शकराभरण मेल (बिलावल) से कल्याण थाट में आने के करण मध्यम तीव्र का प्रयोग है। इस की जाति औडुव–षाड़व है। वादी मध्यम सम्वादी षड़ज है और गायन समय रात्रि का प्रथम पहर है इसके आरोह में रे, ग स्वर वर्ज हैं। और अवरोह में गन्धार गुप्त रहेगा।

तीव्र म आरोह में पंचम के साथ और शुद्ध म आरोह अवरोह दोनों में प्रयोग किया जाता है। कभी–कभी अवरोह में ध से म को आते समय (मींऽ के साथ) दोनों म को एक साथ प्रयोग किया जाता है जो बड़ा ही मनोरंजक मालूम होता है। इस राग में

अवरोह में कभी–कभी मध्यम पर 'ग' का अनुलगन कण लगाया जाता है। जैसे स म ऽऽऽ ग प। इस कण के प्रयोग से राग की सुन्दरता बढ़ती है और प्रयोग न करने से हानि नहीं होती।

हमीर राग के समान इस राग की सुन्दरता बढ़ाने के लिए कभी–कभी अवरोह में कोमल नि विवादी स्वर के नाते प्रयोग किया जाता है। जैसे – सं ध नि़ प , मे प ध प म।

समप्रकृत राग हमीर और कामोद है।

24. रागु भैरउ (भैरव)

थाट भैरव, रे ध कोमल, ध रे स्वर सम्वाद

प्रातः समय मिल गाइये, सम्पूर्ण आश्रय राग ।।

थाट–भैरव

वादी–ध, संवादी–रे

जाति–सम्पूर्ण

समय–प्रातःकाल (अमृत वेला)

आरोह–सा रे ग म प ध नि सां । ।

अवरोह–सां नि ध प म ग रे स ।। ।

पकड़–ग म ध ऽ धऽ प, म प ग म रे ऽ रे स ।

यह अपने थाट का आश्रय राग है, इसे सन्धिप्रकाश राग भी कहते हैं। इसे प्रातः सन्धिप्रकाश के समय ही गाते बजाते हैं। इसमें कोमल रे ध आन्दोलित किया जाता है जैसे– ग म रे ऽ रे ऽ स। ग म ध ऽ ध ऽ प

अवरोह में अधिकतर गन्धार वक्र प्रयोग किया जाता है। जैसे – ग म रे ऽ रे स।

यह एक प्राचीन राग है। मध्यकाल में जिस समय राग रागिणी पद्धति प्रचलित थी उस समय चारों मतानुसार इसे एक मुख्य राग माना जाता था। यह गम्भीर तथा करुण प्रकृति का राग है। इसमें ध्रपद, धमार, बड़ा ख्याल, छोटा ख्याल, तथा तराना गाए तथा बजाए जाते हैं। समप्रकृतिराग–कालिगड़ा और रामकली।

25. रागु बसन्तु

दो मध्यम कोमल रिखब, चढ़त न पंचम कीन्ह।

स–म वादी–सम्वादी ते, यह बसन्त कह दीन्ह।।

थाट–पूर्वी

वादी–तार सं, संवादी – प

जाति–औडुव – सम्पूर्ण

समय–रात्रि का अन्तिम पहर।

आरोह–सा ग म ध रें सं नि सं।

अवरोह–रें नि ध प, मे ग मे ऽ ग, मे ध ग मे ग, रे स।

पकड–मे ध रें सं, नि ध प, मे ग मे ऽ ग।

दोनों मध्यम , कोमल धैवत और पूर्व थाट जन्य बसन्त अधिक लोकप्रिय हैं।

यह राग उतरांग प्रधान राग है। अतः इसकी बढ़त मध्य सप्तक के उत्तरांग तथा तार सप्तक में होती है।

यह एक मौसमी राग हे ओर बसन्त ऋतु में हर समय गाया जाता है।

शुद्ध मध्यम का प्रयोग आरोह में केवल इस प्रकार होता है, सा म, म ग, मे ध सं। कभी–कीी ललित का अल्प अंश दिखा दिया जाता है। जैसे – ऩि सा, म ऽ म, मे म ग। तीव्र म आरोह–अवरोह दोनों में प्रयोग किया जाता है।

मध्य सप्तक के ध और नि से तार सप्तक को जाते हुए कोमल रिषभ प्रयोग करते हैं। जैसे – ध नि रें गं ऽ रें सं किन्तु मध्य सप्तक के आरोह में रिषभ का प्रयोग कभी नहीं होता। इस परज राग से बचाने के लिए आरोह में अधिकतर निषाद लंगन कर आते हैं जैसे – मे ध सं अथवा मे धरें सं।

न्यास के स्वर–ग, प और सं

समप्रकृति राग–परज, पूर्वी और पूरिया धनाश्री ।

26. रागु सारंगु (सारंग)

ग–ध सुर वीर्जत कर दिए, ले काफी को अंग ।
दोनों नि, सम्वाद रि–प, वृदावान सारंग ।।

लक्षणगीत अंक – 1971

जब तीखोहि निषाद है, चढ़ते धैवत नाहिं ।
तब यह सारंग रागहि, बृन्दाबनी कहाई ।।

राग चन्द्रिकासार

थाट–काफी

वादी–रे,

संवादी–प

जाति–औडुव–औडुव

समय–दिन का दूसरा पहर

आरोह–ऩि स, रे, म प नी सं

अवरोह–सं नि प, म रे , स ।

प्राचीन काल में सारंग से शुद्ध सारंग समझा जाता था किन्तु आजकल सारंग से बिन्द्रावनी सारंग समझा जाता है ।

यह एक साधारण राग होते हुए भी अत्यन्त लोकप्रिय है ।

इसके आरोह में कुशलतापूर्वक शुद्ध धैवत का प्रयोग करने से राग हानि नहीं होगी । प्राचीन समय के ध्रपदों में शुद्ध धैवत का प्रयोग मिलता है किन्तु आजकल इसका प्रचलन नहीं हैं । स0 भातखण्डे जी ने अपनी पुस्तक 'क्रमिक पुस्तक मालिका' भाग तीन के कुछ ध्रपदों में कोमल नि के साथ कण के रूप में शुद्ध धैवत का प्रयोग अवश्य किया है।

राजा साहब टैगोर ने भी औडुव मानकर कहा है कि शुद्ध नि पर धैवत का कण है तो हानि नहीं होगी ।

लक्ष्यसंगीत कार, कल्पद्रुम

'अभिनव राग मंजरी' में इस राग का उल्लेख है ।

27. रागु मलार (मल्हार)

रिमौ रिसौ निपमपा निधौ निधौ निसौ पगौ ।
मरिसा मांशको लोके मीयां मल्हार उच्यते ।।

अभिनव राग मंजरी ।
दर्बारी ढंग होत है मियाँ की मल्हार
चन्द्रिका सार

थाट–काफी

वादी–स, संवादी–प

जाति–सम्पूर्ण षाड़व

समय–मध्य रात्रि

आरोह–स म रे ऽ प ग म ऽ ग म रे स, म रे प ,

नि़ ऽ ध नि़ सं ।

अवरोह–सां नि़ प म प, ग॒ म रे स ।

पकड़–रे म प, ग॒ ऽ ग॒ म रे स, नि़ नि़॒ऽ ध़ नि़ऽ सा ।

श्री कृष्ण राव शंकर पंडित तथा श्री विनायक राव पटवर्धन के मतानुसार मल्हार से केवल मियाँ मल्हार समझना चाहिए। इस राग की उत्पत्ति काफी थाट से मानी गई है। इसकी जाति आरोह में तो सम्पूर्ण मानी गई है लेकिन गन्धार स्वर वक्र प्रयुक्त होता है और अवरोह में ध वक्र प्रयोग किया जाता है। इसलिए कुछ लोग इसकी जाति वक्र सम्पूर्ण भी मानते हैं।

यह एक मौसमी राग है। वर्षा काल में इसे कभी भी गा बजा सकते हैं। मियां मल्हार के गीतों में अधिकतर पावस ऋतु का ही वर्णन रहता है। यह एक मिश्रित राग

नहीं है, यह एक स्वतन्त्र राग है। इसकी रचना मियां तानसेन ने की है। इसलिए इसका नाम मियां से सम्बन्धित है। मल्हार का अर्थ–मल का हरण करने वाला अतः वर्षा ऋतु से है।

इस राग में कोमल गन्धार प्रयुक्त होता है। उसको दो तीन बार हिला कर मध यम के कण से आन्दोलित करते हैं रे प , ग ग ग , म रे, नि ध़ नि़ स। इस राग की चलन प्रायः मन्द्र और मध्य सप्तक में ही होती है। इसमें दोनों निषाद पास–पास प्रयोग किए जाते हैं नि ध नि ध, स। इसके पूवार्ग में 'रे ग म ' कभी नहीं लेते। इसके उत्तरांग में सं रें, नि सां, नि ध नि प स्वर होते हैं।

28. रागु कानड़ा (कान्हड़ा)

मृदु ग ध नि शुद्ध रिषभ, वक्रहिं सब स्वर लाग ।
रे प वादी सम्वादी ते, कहत कान्हड़ा राग ।
राग चन्द्रिकासार

थाट–आसावरी

वादी–रिषभ, संवादी–पंचम

जाति–वक्र–सम्पूर्ण

गायन समय– मध्य रात्रि

आरोह–स रे ग म ऽ म रे स, म प ध नि नी सं ।

अवरोह–सं, धऽ, नि प म प , ग म म , रे स ।

पकड़–सा रे गऽ म गऽ (म) स रेऽ स ध नि रे स ।

दरबारी गायक तानसेन ने कान्हड़ा एक नए प्रकार से गाया वह कान्हड़ा अकबर को पसन्द आया। अतः बार–बार इसे दरबार में गाए जाने वाले कानड़ा का नाम दरबारी कानड़ा पड़ गया। इस राग की जाति वक्र सम्पूर्ण है। वादी रिषभ सम्वादी पंचम है। गायन समय मध्य रात्रि यह कानड़ा प्रकार का 'आश्रय राग' माना जाता है। इस राग में गन्धार और धैवत स्वर आन्दोलित होते हैं। यह पूर्वांगवादी राग है। यह राग मन्द्र और मध्य सप्तक में गाया जाता है। इसका आरम्भ मन्द्र नि़ या सास अथवा रे से होता

है। इस राग की प्रकृति गम्भीर है। गम्भीर प्रकृति के कारण विंलबित लय़ में अधिक खिलता है। दरबारी में ग॒ ग॒ ग॒ रे रे ग॒ रे ग॒ रे रे ग॒ स यह भाग दरबारी कान्हड़ा वाचक है। यह मींड प्रधान राग है म रे और नि प की मींड अनिवार्य है गन्धार को आन्दोलित करके म रे और धैवत को आन्दोलित करके नि॒ प जैसे – सं ध॒ नि ध॒ नि म प , ग॒ रे ग॒ रे म रे स।

समप्रकृति राग–अड़ाना है इसमें सारंग अंग से ताने ली जाती हैं और बीच–बीच में कान्हड़ा अंग ग॒ म रे स और ध॒ नि॒ प लगा देते हैं । जिससे दरबारी कान्हड़ा स्पष्ट हो जाता है ।

29. रागु कलियान

शुद्ध सुरन के संग जब , मध्यम तीव्र होय ।
ग–नि वादी–सम्वादी ते, यमन कहत सब कोय ।

थाट–कल्याण

वादी–गन्धार, संवादी – निषाद

जाति–सम्पूर्ण – सम्पूर्ण

समय–रात्रि का प्रथम पहर

आरोह–स रे ग मे प ध नी सं ।

अवरोह–सं नि ध प मे ग रें स ।

पकड़–ऩि रे ग, रे स , प मे ग, प रे स।

कुछ लोगों का कहना है कि जब यवन भारत में आए तभी से, यमन राग का प्रादुर्भाव हुआ है। यह ठाठ कल्याण का आश्रय राग है इसमें 'प रे' की स्वर संगति है। जो कल्याण अंग की द्योतक है। उत्तरी संगीत के दस ठाठों में पहला ठाठ कल्याण अथवा यमन है, उसी ठाठ से उसकी उत्पत्ति होती है। इसमें सब स्वर शुद्ध और मध्यम तीव्र प्रयुक्त होता है। आरोह में षड़ज और पंचम को जान–बूझ कर छोड़ा जाता है। वादी स्वर गन्धार और सम्वादी निषाद है। गायन समय रात्रि का प्रथम पहर है। अवरोह में शुद्ध मध्यम का प्रयोग करने पर यही 'यमन कल्याण' हो जाता है। इस राग

में आलाप का प्रारम्भ निषाद से किया जाता है। ऩि रे ऩि ग, मे ग रे, ऩि रे स, तान के समय आरोह में पंचम और षड़ज दुर्बल रहते हैं, ऩि रे ग मे ध नी सं ऐसा करने से तान में मधुरता आती है।

30. रागु प्रभाती

जब ही भैरव थाट में, मध्यम दोउ लगात ।

म–स वादी–सम्वादी सों, गावत राग प्रभात ।।

थाट–भैरव

वादी–म, संवादी – स

स्वर–रे–ध कोमल, मे तीव्र

जाति–सम्पूर्ण – सम्पूर्ण

समय–रात्रि का चौथा पहर (अमृत बेला)

आरोह–ऩि रे ग म मे, ग म, प ध नि सं ।।

अवरोह–सं नि, ध प म, ग रे ग म मे, ग म, ग रे, स ।

प्रभाती का थाट भैरव जाति सम्पूर्ण, वादी मध्यम सम्वादी षडज, गायन समय रात्रि का चौथा पहर, सुबह के रागों में से प्रभाती एक मनोहर राग है पर इसको गाने वाले बहुत कम हैं ।

31. रागु जैजैवन्ती

तीवर–कोमल रूप दो, ग–नि के दिए लगाए ।

रि–प–वादी सम्वादी सों, जयजयवंति कहाय ।।

लक्षणगीत अंक 1971, पृष्ठ–183

थाट–खमाज

वादी–रिषभ संवादी – पंचम

स्वर–दोनों गन्धारं, दोनों निषाद

जाति–सम्पूर्ण–सम्पूर्ण

समय–रात्रि के दूसरे पहर के अन्तिम भाग में ।

आरोह–स, ध नि॒ रे, रे ग म प, नि सं । ।

अवरोह– सं नि॒ ध प, ध ग म रे, ग॒ रे स । ।

पकड़–रे ग॒ रे स, ऩि सा ध़ ऩि॒ रे ।

विशेषता

आरोह में पंचम के साथ शुद्ध और धैवत के साथ कोमल निषाद प्रयुक्त किया जाता है जैसे – म प नी सं, ध़ ऩि॒ रे, किन्तु अवरोह में सदैव कोमल निषाद प्रयोग किया जाता है।

इस राग की प्रकृति गम्भीर है तथा चलन तीनों सप्तकों में समान रूप से होता है। एवं इसमें बड़ा ख्याल, छोटा ख्याल, ध्रुपद , धमार सभी शोभा देते हैं।

यह राग क्रमशः दो अंगों से गाया जाता हैं। देश और बागेश्वरी, देश अंग के आरोह में धैवत वर्ज कर, शु:द नि प्रयोग करते हैं। जैसे – रे ग म प नी सं, किन्तु बागेश्वरी अंग के आरोह में ध और नि प्रयोग करते हैं। देश अंग की जयजयवंति, जिसके बीच में कभी–कभी बागेश्वरी अग भी दिखा देते हैं। प्रचार में अधिक है। दोनों प्रकारकी जयजयवन्ति में ध नि रे, राग वाचक स्वर समूह माना गया है। सोरठ तथा देश अंग से यह राग अत्यन्त रंजक होता है।

कोमल गन्धार का अल्प प्रयोग केवल अवरोह में दो रिषभों के बीच में होता है। जैसे –रे ग रे स।

इसमें प रे की संगति प्रचुरता से होती है। प – रे में पंचम मन्द्र सप्तक का होना चाहिए। दोनों मध्य सप्तक के स्वर नहीं होते।

इसे परमेल प्रवेशक राग कहा जाता है क्योंकि इसके बाद काफी थाट के रागों का समय शुरू होता है। इसमें खमाज और काफी दोनों थाटों के स्वर लगते हैं।

पाद–टिप्पणियां

1. हरीशचन्द्र श्रीवास्तव, राग परिचय, भाग तीन, पृ0 – 84–85
2. कुमकुम सहदेव, भारतीय शास्त्रीय संगीत में रागों का परिचय, पृ0 – 144

3. लक्षण गीत अंक, जनवरी 1971, पृ0 189
4. रागरागिनी अंक, जनवरी 1972, पृ0 – 138
5. गणेश प्रसाद शर्मा, राग प्रवीण, पृ0 145
6. गणेश प्रसाद शर्मा, राग प्रवीण, पृ0 – 162
7. हरीशचन्द्र श्रीवास्तव, पृ0 – 31
8. हरिश्चन्द श्रीवास्तव, राग परिचय, भाग चार, पृ0 109
9. गणेश प्रसाद शर्मा, राग प्रवीण, पृ0 – 237
10. लक्षण गीत अंक , 1971, पृ0 – 167
11. भातखंडे, कमिक पुस्तक मालिका, पृष्ठ – 280
12. गणेश प्रसाद शर्मा, राग प्रवीण, पृष्ठ – 213
13. गणेश प्रसाद शर्मा, राग प्रवीण, पृ0 – 220
14. हरिश्चन्द श्रीवास्तव, राग परिचय, भाग चार, पृ0 100
15. लक्षणगीत अक, जनवरी 1971, पृष्ठ – 184
16. हरीशचन्द्र श्रीवास्तव, रागपरिचय, भाग तीन, पृष्ठ – 51
17. डा0 कुमकुम सहदेव, भारतीय शास्त्रीय संगीत में रागों का परिचय, पृष्ठ – 52
18. विष्णुनारायण भातखण्डे कमिक पुस्तक मालिका, भाग–6, पृष्ठ –
19. लक्षण गीत अंक, जनवरी 1971, पृष्ठ 188
20. कुमकुम सहदेव, भारतीय शास्त्रीय संगीत में रागों का परिचय, पृष्ठ – 46, 47
21. भगवत शरण शर्मा, हिन्दोस्तानी संगीत शास्त्र भाग–3, पृ0 182
22. हरीशचन्द्र श्रीवास्तव, राग परिचय, भाग–एक, पृष्ठ – 53
23. गणेश प्रसाद शर्मा, राग प्रवीण, पृष्ठ 99,100
24. प्रो0 हरीशचन्द्र श्रीवास्तव, राग परिचय, भाग– चार, पृष्ठ – 68,69
25. कुमकुम सहदेव, भारतीय शास्त्रीय संगीत में रागों का परिचय, पृष्ठ – 96, 97

25. लक्षणगीत अंक, जनवरी 1971, पृष्ठ – 190
26. राग रागिनी अंक, जनवरी 1972, पृष्ठ – 137
27. कुमकुम सहदेव, भारतीय शास्त्रीय संगीत में रागों का परिचय, पृष्ठ – 22, 23
28. लक्षणगीत अंक जनवरी 1971, पृष्ठ – 79
29. डा0 विश्वम्भरनाथ भट्ट क्रमिक तान आलाप, भाग–4 (संगीत कांदबिनी), पृष्ठ 124,2125,127
30. विक्रमादित्य निगम, संगीत कौमुदी, पृष्ठ – 179
31. डा0 कुमकुम सहदेव, भारतीय शास्त्रीय संगीत में रागों का परिचय, पृष्ठ –21
32. भगवतीशरण शर्मा, हिन्दोस्तानी संगीत शास्त्र, तृतीय भाग,पृष्ठ – 180
33. श्रीपद वन्धोपाध्याय, सितार मार्ग, भाग तृतीय, पृष्ठ – 283
34. अप्रकाशित राग तीसरा भाग जे0के0 पत्की, पृ0 75
35. हरीशचन्द्र श्रीवास्तव, राग परिचय भाग–दो, पृष्ठ – 26,27
36. लक्षणगीत अंक, जनवरी 1971, पृष्ठ – 182
37. हरीशचन्द्र श्रीवास्तव, राग परिचय भाग–दो, पृष्ठ – 23,24
38. हरीशचन्द्र श्रीवास्तव, राग परिचय, भाग – 3, पृष्ठ – 90,91
39. भगवतशरण शर्मा, हिन्दोस्तानी संगीत शास्त्र, तृतीय भाग, पृष्ठ–178
40. विक्रमादित्य निगम, संगीत कौमुदी , पृष्ठ – 197
41. रमा सराफ, संगीत उपासना, पृष्ठ – 88
42. डॉ0 विश्वम्भरनाथ भट्ट, क्रमिक तान आलाप, भाग – 4, पृ0 – 149
43. डा0 कुमकुम सहदेव, भारतीय शास्त्रीय संगीत में रागों का परिचय, पृ0– 28, 29
44. हरीशचन्द्र श्रीवास्तव, राग परिचय, भाग – 4, पृष्ठ – 62
45. श्रीमती शान्ति गोवर्धन, संगीत शास्त्र दर्पण, भाग – 2, पृ0 – 239
46. कुमकुम सहदेव, भारतीय शास्त्रीय संगीत में रागों का परिचय, पृष्ठ –

44,45

47. हरीशचन्द्र श्रीवास्तव राग परिचय, भाग–3, पृष्ठ – 20,21
48. भगवतीशरण शर्मा, हिन्दोस्तानी संगीत शास्त्र, तृतीय भाग, पृष्ठ –180
49. पं0 विष्णुनारायण भातखण्डे, कमिक पुस्तक मालिका, भाग–चार, पृष्ठ –562
50. श्रीपद वन्धोपाध्याय, सितारमार्ग, तृतीय भाग, पृष्ठ – 389
51. डा0 विश्वम्भरनाि भट्ट, कमिक तान आलाप, भाग–4, पृष्ठ – 229
52. कुमकुम सहदेव, भारतीय शास्त्रीय संगीत में रागों का परिचय, पृष्ठ – 83,84
53. हरीशचन्द श्रीवास्तव, राग परिचय भाग तीन, पृष्ठ – 40,41
54. डा0 विश्वम्भरनाथ भट्ट, कमिक तान आलाप, भाग–चार, पृष्ठ – 262
55. श्रीपद वन्धोपाध्याय, सितार मार्ग, तृतीय भाग, पृष्ठ – 418
56. लक्षण गीत अंक जनवरी – 1971, पृष्ठ – 19
57. हरीशचन्द्र श्रीवास्तव, राग परिचय, भाग – 2, पृष्ठ – 71–72
58. लक्षणगीत अंक 1971, पृष्ठ – 183
59. डा0 विश्वम्भरनाथ भट्ट, कमिक तान आलाप, भाग –4, पृष्ठ – 112
60. श्रीपद वन्घ्योपाध्याय, सितार मार्ग, भाग तृतीय, पृष्ठ – 267



आदि ग्रन्थ में प्रयुक्त 31 रागों का ऐतिहासिक परिचय

1. राग सिरी

यह राग प्राचीन है। उसे ग्रन्थाधार प्राप्त है। श्री राग प्राचीन काल में प्रचलित रागों में से एक है। इसका उद्भव श्री शिवजी के पश्चिम मुख से हुआ, ऐसी प्राचीन संगीतकारों की धारणा है। कुछ महत्त्वपूर्ण स्थित्यन्तरों में से होते हुए उसका वर्तमान रूप अपने मूल रूप से नितान्त भिन्न हो चुका है। काफी मेल से लेकर खमाज से होते हुए पूर्वी मेल तक का प्रवास अनेक शताब्दियों की नित्य प्रति बदलने वाली संगीत सम्बन्धी मान्यताओं का परिणाम है। वर्तमान समय में श्री नाम से सम्बद्ध कुछ ऐसे राग पाये जाते हैं जो इस राग के दशान्तरों को प्रकट करते हैं। इनमें से कुछ जो काफी व खमाज से अपने पुराने सम्बन्ध की याद दिलाते हैं, उनकी गणना प्रायः अल्पगेय रागों में होती है। धनाश्री, लाजेश्री, लंकाश्री, वंगेश्री, व रागेश्री, ऐसे ही रागों में से ही है। मध्यकालीन संगीत ग्रन्थों में इनमें से कुछ एक का 'श्री' के जन्य रागों में अन्तर्भाव पाया जाता है। इन रागों का तत्कालीन 'श्री राग' के स्वरूप से सम्बन्ध बराबर रहा है, काल क्रम के अनुसार पूर्वी की 'श्री' के अनुरूप इन्हें ढाला गया ऐसा प्रतीत होता है।

परिवर्तनशीलता उत्तरात्य संगीत प्रणाली की एक विशेषता है। दाक्षिणात्य प्रणाली में 'श्री' का सम्बन्ध आज भी काफी से माना जाता है। दक्षिण के प्रायः सभी ग्रन्थों में 'श्री' काफी स्वरों की पाई जाती है। उत्तरी पद्धति के मध्यकालीन 'राग तरंगिनी' में श्री राग कर्णाट (आधुनिक खमाज) के अन्तर्गत रखा गया। "श्री' का मिश्रण कुछ अन्य रागों से होता था। यह बात उस काल में प्रचलित धनाश्री, गौरी, जयंतश्री, आदि से स्पष्ट होती है।

प्राचीनकाल में जब रागरागिनी पद्धति प्रचलित थी, उस समय चारों मतों में इसे शिव, नारद तथा हनुमत मतों के प्रधान रागों में से 'श्री' भी एक मुख्य राग माना गया

था। जिसमें 'ग' तथा 'नि' कोमल थे। शिवमत के 6 (छः) रागों में से 'श्री' राग भी एक राग है और इसकी छः रागनियां इस प्रकार हैं – मालवी, त्रिवेणी, गौरी, कैदारी मधुमाधवी, पहाड़िका।

आजकल श्री राग को पूर्वी थाट के अन्तर्गत गाया जाता है। पूर्वी थाट के रागों को दो भागों में बांटा जा सकता है। कुछ राग पूर्वी अंग में गाए जाते हैं और कुछ राग श्री अंग से गाए जाते हैं।

2. राग मांझ

मांझ एकप्रांतिक और अप्रचलित राग है। उत्तर या दक्षिण भारत के किसी संगीत ग्रन्थ में इसका उल्लेख नहीं है और न ही दूसरे ग्रन्थों के अन्त में लिखित राग माला में। लेकिन इस राग का नाम राग–रागिनी पद्धति को मान्यता देने वाले मतों में से 'भरत मत' वालों ने इसको 'मेघ राग' की वधु लिखा है। बाकी किसी भी मत में इसका कोई भी जिक्र नहीं है। संगीतकार इस तथ्य से अवगत हैं कि भारतीय संगीत में अनेक राग प्रांतिक लोकगीतों की धुनों पर आधारित हैं। इन प्रसिद्ध धुनों को शास्त्रकारों ने नियमबद्ध करके भिन्न–भिन्न प्रांतिक रागों का रूप प्रदान किया है, उदाहरण मुलतान से मुलतानी, कालीग से कालीगंड़ा, बगल से बंगाल भैरव, सौराष्ट्र से सोरठ, तिलांगना से तिलंग इत्यादि। इसी तरह पंजाब की लोक–धुनों से मांझ राग विकसित हुआ है।

3. राग गौरी (गउड़ी)

दामोदर पण्डित – कृत 'संगीत दर्पण' शिव मत को मानने वालों के लिए महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। सम्भवतः यह पुस्तक 1625 ई0 के लगभग जहांगीर के शासनकाल में लिखी गई थी। शिवमत के अनुसार छः (6) प्रमुख राग तथा उनमें से प्रत्येक राग की छः रागिणियां मानी जाती हैं। इन छः रागिणियों में गौरी रागिणि का भी वर्णन मिलता है।

हनुमन्त मत के छः रागों में से कौशिक राग की पांच रागिनियों में से 'गौरी' भी एक रागिनी है।

'रागार्णव' मत के छः राग और उनके 30 (तीस) आश्रित रागों में से पांचवे राग गौड़मालव राग पर 'गौरी' आश्रित रागिनी है। 'चत्वारिंशच्छतराग निरूपणम्' में छः रागों

की जगह 10 (दस) पुरुष राग माने गए हैं। इनमें दसवें पुरुष राग 'हंसक' की 5 (पाँच) स्त्रियां रागिनियों में से 'गौरी चौथी' रागिनि है।

पंजाब प्रान्त के गायक 'गौरी' राग को खास तौर पर गाते हैं और इसे शुद्ध मध्यम की गौरी कहते हैं। यह भैरव थाट की गौरी है। इसी गौरी राग में शुद्ध मध्यक की जगह पर तीव्र मध्यम कर देने पर पूर्वी थाट की 'गौरी' हो जाएगी जो श्री अंग के साथ शाम को गाई जाती है।

4. राग आसा

यह एक देशी राग है, जिसका सम्बन्ध उत्तरभारत की लोक–धुन के साथ विशेष रूप से है। प्राचीन ग्रन्थों में इसका जिक्र नहीं है। लेकिन पंजाब का यह एक प्रसिद्ध और लोकप्रिय और मनोहर राग है।

5. राग गुजरी

संगीत के अति प्राचीन इतिहास को पढ़ने से पता चलता है कि अधिकतर रागों के नाम अलग–अलग प्रांतों के नाम पर रखे गए हैं जैसे – मतंग पंडित ने अपने 'वृहद्देशी ग्रन्थ' में टक, मालव, बंगाल और गुजरी आदि नाम लिखे हैं। इस तरह "संगीत मकरद" 'समयसार' रत्नाकर आदि ग्रन्थों में कौशिक, अंधाली, सौराष्टी, अहीर और गुजरी इत्यादि नाम लिखे मिलते हैं। गुजर जाति से 'गुजरी' नाम पढ़ गया।

इस राग का नाम गुजरी तोड़ी इसका तोड़ी के प्रकार होने का परिचायक है। यह एक प्रचीन और अप्रचलित राग है। कुछ विद्वानों के मतानुसार यह राग गुजरात प्रान्त से निकला है। इसलिए इसका नाम गुर्जरी तोड़ी पड़ा। इसके नामकरण के विषय में एक किम्वदंत्ती प्रसिद्ध है कि 15वीं शताब्दी में ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर की गुजरी रानी मृगनयनी ने कुछ रागों की रचना की थी जिनमें से एक राग यह भी है।

6. राग देवगान्धरी

प्राचीनकाल के प्रसिद्ध रागों मे से 'देवगन्धारी' एक ऐसा राग है जो आजकल बहुत कम गाया जाता है। संस्कृत ग्रन्थों में इसके अलग–अलग नाम लिखे हैं जैसे – 'गन्धार', 'देवगन्धार', 'देवगन्धारी', 'गन्धारी' और 'गन्धारी तोड़ी' आदि तथा कुछ संगीत ग्रन्थों में इसके स्वर रूप भी भिन्न दिखाई देते हैं। जैसे लोचन ने अपने ग्रन्थ "राग

तरंगिनी'' तथा हृदयनारायण देव ने हृदय कौतुक में देवगन्धारी को गौडी मेल (भैरव थाट) का राग माना है। अर्थात् इसके रे ध कोमल और ग नि तीव्र हैं। लेकिन पुण्डरीक विठ्ठल ने अपने ग्रन्थ राग माला में इसको श्री राग का पुत्र माना है। इसके अतिरिक्त "स्वर मेल कला निधी" और चतुर्दण्डिप्रकाशिका में देवगन्धारी को श्री राग मेल (काफी थाट) का राग लिखा है। प्राचीन और आधुनिक संगीत ग्रन्थों की खोज करने से पता चलता है कि गन्धार, देवगन्धार और देवगन्धारी एक राग है। और गन्धारी या गन्धारी तोड़ी एक अलग प्रकार हैं।

गन्धारी की भान्ति देवगन्धार भी एक अप्रचलित राग है। इस राग के विषय में लोगों का कहना है कि जिस प्रकार भूपाल प्रान्त से भूपाली और जौनपुर से जौनपुरी राग निकला। उसी प्रकार गन्धार प्रान्त से गन्धारी और देवगन्धार राग निकले। अतः यह स्पष्ट है कि यह एक प्राचीन और शास्त्रीय राग है। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि चूंकि इसमें दोनों गन्धार लगाए जाते हैं इसलिए इसका नाम पहले द्विगन्धार पड़ा और अब धीरे–धीरे देवगन्धार पुकारा जाने लगा।

7. राग बिहागड़ा

आजकल कुछ संगीतकारों ने अपने ग्रन्थो में 'बिहागड़ा' का उल्लेख इस तरह किया है कि प्रचलित बिहाग में तीव्र मध्यम का प्रयोग न करते हुए, वक्र रूप से कोमल नि का प्रयोग करने से 'बिहागड़ा राग' की उत्पत्ति हो जाती है। इसको बिहाग का ही नया प्रकार समझना चाहिए। किसी–किसी का कहना है कि बिहाग राग ओर खमाज़ राग के सुमेल से यह राग उत्पन्न हुआ है। लेकिन आधुनिक संगीतकारों के यह विचार मानने योग्य नहीं हैं क्योंकि प्राचीन ग्रन्थों में बिहाग· बिहागड़ा, बिहागरा या बिहागड़ा नामों का उल्लेख है 'संगीतसार' ग्रन्थ में बिहाग और बिहागड़ा दो भिन्न–भिन्न प्रकार बताएं है। इन ग्रन्थों में लिखित जानकारी से मालूम होता है कि 'बिहाग राग' का नाम शास्त्रों में नहीं मिलता। इसलिए इसकी उत्पत्ति बिहागड़ा से हुई है।

बिहागड़ा एक प्राचीन राग है जिससे बिहाग, देवीबहाग, पट बिहाग, नट बिहाग, मारुबिहाग, आदि रागों की रचना हुई है । इनमें से सबसे प्रसिद्ध और सरल राग बिहाग ही है ।

8. राग बड़हंस

प्राचीन ग्रन्थोंमें बड़हंस को खमाज थाट या शंकराभरण मेल (बिलावल थाट) का राग माना है। 'संगीतसारामृत' में भी इसको खमाज थाट का राग माना गया है।

आजकल बड़हंस राग बहुत कम सुनने को मिलता है। लेकिन किसी समय इसकी धुनें पंजाब के गांव में गूंजती थी।

9. राग सोरठी (सोरठ)

सोरठ एक प्रसिद्ध और पुरातन राग है। संस्कृत ग्रन्थों में सोरठ को खमाज थाट का राग माना जाता है। जाति सम्पूर्ण वादी रे सम्वादी ध लिखे हैं अर्थात् सोरठ राग के स्वर रूप में कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ है। शिवमत के छः रागों में से मेघ राग की छः रागिनियों में 'सोरटी' रागिनि का उल्लेख मिलता है। नटनारायण राग के परिवार में सनुषा 'सोरटी' का वर्णन मिलता है। हनुमन्त मत के अनुसार उनकी पुत्र–वधु में सोरठी का वर्णन मिलता है।

10, राग धनासरी

धनाश्री एक प्राचीन राग है और इसका उल्लेख संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों में धनयाश्री, धनाशी, धनाशिका और धनाश्री नामों के साथ किया जाता है। प्राचीन व आधुनिक संगीत में इसके कई प्रकार भी मिलते हैं जैसे – काफी थाट की धनाश्री, भैरवी थाट की धनाश्री, खमाज थाट की धनाश्री, पूर्वी थाट की पूरिया धनाश्री, जो बहुत प्रसिद्ध है।

धनाश्री राग का जो स्वरूप 13वीं शताब्दी में पं0 शारंगदेव ने अपने संगीत रत्नाकर में दिया है, यह उस समय के राग वागेश्री से मिलता जुलता है। उस समय यह काफी थाट का राग था। उसके बाद राग रागिनि परिवार वर्ग के मत आरम्भ हो गए। उसमें से भरत मत में धनाश्री को मालकोश की पुत्र वधु माना है।

यहाँ पर एक बहुत ही अच्छी और ध्यान देने वाली बात यह है कि धनाश्री के इन प्रकारों के नियम आज भी मिलते हैं। भैरवी, काफी, खमाज और पूर्वी थाट की धनाश्री की जाति, वादी सम्वादी, गाने का समय और 'प ग' की स्वर संगति आज भी उसी तरह कायम है।

11. राग जैतसिरी

जैतश्री एक प्राचीन और अप्रचलित राग है। इस राग का स्वरूप मनोरंजक होने के साथ–साथ कठिन भी है। पुरातन ग्रन्थों में जयरी, जयंतश्री , जैताश्री , जैतश्री नाम लिखे हैं। जैतश्री के स्वरूप के संगीतकारों के विभिन्न मत हैं। कोई इसको मारवा थाट का राग मानकर तीव्र धैवत का प्रयोग करता है। दूसरा मत इसकी जाति सम्पूर्ण और पूर्वी थाट मानता हे लेकिन आरोह मे केवल धैवत स्वर वर्जित मानता है। चौथा मत इसका थाट पूर्वी और आरोह में रिषभ धैवत वर्ज करके जाति औडुव सम्पूर्ण मानते हैं। जैतश्री के चार मत कहे जाते हैं। पहला और दूसरा मत छोड़ कर, तीसरा और चौथा मत आजकल प्रचलित है।

12. राग तोड़ी

तोड़ी एक प्रसिद्ध और पुरातन राग है। लेकिन प्रचलित तोड़ी को एक आधुनिक राग कहा जा सकता है क्योंकि प्राचीन संगीत ग्रन्थकारों ने तोड़ी को मालकैशिक मेल 'भैरवी' थाट का राग मानते हैं। पंडित सोमनाथ की शुद्ध वराटी का स्वर सप्तक हमारी आधुनिक तोड़ी जैसा है। दामोदर पंडित के अनुसार तोड़ी बसन्त राग की भार्या हे और गुजरी भैरव की भार्या है।

तेरहवीं शताब्दी में शारंगदेव के मतानुसार छाया तोड़ी तरुण्क तोड़ी अधुना प्रसिद्ध उपांग राग थे। अधुना प्रसिद्ध रागांग राग के रूप में स्वतन्त्र तोड़ी का उल्लेख भी पाते हैं। इन्होंने तोड़ी के परिवार के बारे में उल्लेख भी किया है।

कुछ विद्वानों का कहना है कि युनान देश के संगीत में एक डोरक मेल है जिसको भारतीय लोगों ने अपना लिया ओर उसको बाद में तोड़ी कहने लगे ।

प्राचीन समय में तोड़ी भैरवी थाट में गाया जाता था । लेकिन इस समय उत्तर भारतीय संगीत पद्धति के 10 थाटों में तोड़ी एक जनक थाट माना गया है । तोड़ी के कई प्रकार प्रचलित हैं ।

13. राग बैराड़ी

वैराड़ी एक असाधारण और प्रचलित राग है । संस्कृत ग्रन्थों में इसके भिन्न–भिन्न नाम और प्रकार लिखे हैं । जैसे – वैराटी, वराटी, वराढ़ी, वरारी आदि इसके अतिरिक्त

पण्डित भावभट्ट और अहोबल ने आठ दस प्रकार लिखे हैं – 1) वराटी, 2) शुद्ध वराटी, 3) तोड़ी वराटी, 4) नाग वराटी, 5) पुंनाग वराटी, 6) प्रताप वराटी, 7) शौक वराटी, 8) कल्याण वराटी, 9) कुंतल वराटी, 10) द्राविड़ी वराटी।

मध्यकाल में इसके दस बारह प्रकार प्रचलित थे। आधुनिक समय में यह राग सुनने में नहीं आया। वैसे तो यह सर्वसाधारण राग नहीं है। बल्कि यह एक कठिन राग है। जिसको शुद्ध रूप में केवल उच्चंकोटि के गायक ही गा सकते हैं। श्री राग के परिवार में उसकी स्नुषा. 'वराटी' का उल्लेख ग्रन्थों में मिलता है।

14. राग तिलंग

कल्लिनाथ मतानुसार नटनारायण राग की रागिनि 'तिलंगी' का उल्लेख अवश्य है लेकिन प्राचीन ग्रन्थों में इसके लक्षण नहीं मिलते। 'लक्षण संगीत' में लक्षणसंगीतकार ने इसके लक्षण दिए जो कि प्रचलित राग से मिलते हैं। यह खमाज की भान्ति अति प्राचीन राग नहीं है लेकिन आज क्षुद्र राग होने के कारण यह ठुमरियों के लिए विशेष लोकप्रिय हो रहा है। तिलंग का प्राचीन रूप खमाज राग से मिलता जुलता है। पंजाब प्रान्त में इसे खासतौर पर गुरू घर में गाया जाता है।

15. राग सूही

'सूही' 'बिलावल' थाट का राग है। संस्कृत ग्रन्थों में सूही को सूहो, सूहव और सूहवी मानकर लिखा है जैसे लोचन कवि ने अपने राग तरगिंनी ग्रन्थ में 'शुद्ध सुहव' और 'देसी सुहव' ऐसे दो नाम दिए हैं। उन्होंने इसको खमाज थाट के अंतर्गत रखा है। इनके समकालीन पं0 हृदय नारायण देव ने अपने हृदय कौतुक ग्रन्थ में शुद्ध सुहवा राग का स्वरूप इस तरह लिखा है म प सं, सं रें सं, सं नि प , म म रे स , रे स ग, म प ग, म म रे स। इन्होंने षाडव जाति का राग माना है। देशी सूहवा का स्वरूप लिखा है – "स म प, सं नि सं, ध प ग, म रे स। इसको सम्पूर्ण जाति का राग माना है। सूही बहुत ही मनोहर और श्रृंगार रस प्रधान राग है। इसको खुशी के समय अधि ाक गायम जाता है।

16. राग बिलावली

बिलावल बहुत ही प्रसिद्ध और पुरातन राग है। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में इसका

बिलावली, बेलावली, बेलावल आदि नाम लिखे मिलते हैं। कुछ ग्रन्थों के अनुसार इसके राग रूप में मतभेद भी हैं। जैसे चतुरदण्डिप्रकाशिका, संगीतसारामृत और स्वरमेलकलानिधि ग्रन्थकारों ने इसको काफी थाट का राग माना है। लेकिन सद्रागचन्द्रोदय में बेलावली को केदार मेल में लिखा गया है। कोई–कोई ग्रन्थकाल बिलावल और बिलावेली दो अलग–अलग राग मानते हैं। लेकिन ऐसा नहीं है। 'राग विवोध', संगीत दर्पण और 'लक्ष्यसंगीत' आदि ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से बेलावली को शंकराभरण मेल (थाट) का राग माना है। पंडित सोमनाथ ने अपने ग्रन्थ "राग विबोध" में बेलावली के दो प्रकार बताए हैं – 1) सम्पूर्ण बेलावली, 2) औड़ुव बेलावली। गायन का समय दिन का प्रथम पहर और वादी स्वर धैवत ही है। औड़ुव जाति में 'रे' और 'प' स्वर वर्ज है। आजकल अल्हैया बिलावल का प्रचार शुद्ध बिलावल से अधिक हो गया है।

17. राग गौड़

पुरातन या मध्यकाल के कई प्रसिद्ध रागों में से कुछ तो लगभग समाप्त हो गए और कई ऐसे हैं जिनकी जगह अब दूसरे राग अधिक प्रचलित और लोकप्रिय हो गए हैं। उदाहरण स्वरूप आसावरी की जगह जौनपुरी, सोरठ की जगह देस, धनाश्री की जगह भीम–पलासी, कान्हड़े की जगह दरबारी कान्हड़ा, बैराड़ी की जगह पूर्व कलियाण इत्यादि।

इसी तरह नट नारायण की जगह छाया नट, नटमल्हार, नट हमीर नटबिहाग, शुद्ध मल्हार की जगह मियाँ मल्हार, मेघ मल्हार आदि यही हाल गौड़ राग का है। गौड़ का असल रूप तो छिप गया। लेकिन इसके मेल से उत्पन्न हुए 'गौड मल्हार' और 'गौड सांराग' राग बहुत प्रसिद्ध हो गए।

गौड राग की गिनती अप्रचलित रागों में ही की जाती है।

18. राग रामकली

रामकली एक प्रसिद्ध और पुरातन राग है। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में जहाँ इसका रामकी, रामकीती, रामकिया, रामगिरी, रामकिरी, रामकेली ओर रामकली नामों का उल्लेख मिलता है। वहाँ इस राग के स्वरूप सम्बन्धी मतभेद भी दिखाई देते हैं। जैसे – कोई इसकी जाति औड़ुव सम्पूर्ण, कोई सम्पूर्ण, कोई इसमें दो गन्धार और कोई

दोनों निषाद और कोई दोनों मध्यम लगाकर गायन करते हैं।

19. राग नटनारायण

नटनारायण भारतीय संगीत का पुरातन और प्रसिद्ध राग है। राग–रागिनि पद्धति मानने वाले मतों में , शिवमत, कल्लिनाथ मत और रागर्णवमत, वालों ने इसे छः प्रमुख रागों में माना है। लेकिन समय के परिवर्तन के साथ अब नट नारायण की जगह नट को ही रागांग राग माना गया है।

20. राग माली गउड़ा

गौरा, मारु–गौरा या माली गोरा एक राग का नाम है। माली गौरा चाहें एक प्रसिद्ध राग है। लेकिन यह अप्रचलित रागों के वर्ग में ही आता है। संस्कृत के प्राचीन संगीत ग्रन्थों में इसका वर्णन नहीं मिलता जैसे – संगीत रत्नाकर, संगीत दर्पण, राग विबोध, स्वरमेलकलानिधि, चतुरदण्डिप्रकाशिका, आदि ग्रन्थों में गौरी राग का वर्णन मिलता है। लेकिन माली गौरा राग का कहीं भी उल्लेख नहीं किया गया। मध्यकालीन रागरागिनी पद्धति के अनुसार रागों का वर्गीकरण करने से किसी भी मत ने रागों की वंशावली में शामिल नहीं किया है।

हनुमत मत के अनुसार उनके मुख्य छः रागों में से मालकोश राग का पुत्र मालीगौरा है।

21. राग मारु

मारु एक पुरातन और प्रसिद्ध राग है। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में इसके भिन्न–भिन्न नाम और प्रकार दिखाई देते हैं। कई सिक्ख विद्वानों का विचार है कि "श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में जैसा राग मारू अंकित किया है उसको संगीतकार आम बोलचाल में मारवा या मारविका कहते हैं। पर मारु राग को मारवा कहना या समझना ठीक नहीं क्योंकि पुरातन ग्रन्थ में ऐसा स्वरूप कहीं भी नज़र नहीं आता। जिस में तीव्र मध्यम और शुद्ध धैवता लगता हो। कई ग्रनथकार मालव, मारवा और मारु को भिन्न राग मानते हैं। पुरातन और आधुनिक संगीत ग्रन्थ की खोज करने पर, 'मारु' का स्वरूप, खमाज, बिलावल और पूर्वी थाट में मिलता है। मारवा एक अलग राग है जो 'मारवा थाट' से ही उत्पन्न होता है और आजकल प्रचार में है।

"चत्वारिंशच्छतरागनिरूपणम्" में छः रागों की जगह दस पुरुष राग माने गए हैं । इन दस पुरुष में रागों में तीसरा राग "पंचम" माना गया है । पंचम राग के परिवार में मारु पंचम राग की पुत्रवधु है ।

22. राग तुखारी

तुखारी एक अप्रचलित राग है। भारतीय संगीत के पुरातन, मध्य या आधुनिक किसी भी ग्रन्थ में इस राग का उल्लेख नहीं मिलता केवल "श्री गुरू ग्रन्थ साहिब" जी में गुरू नानक देव जी, गुरू रामदास जी और गुरू अर्जुनदेव जी की रचित वाणी इस राग में उपलब्ध है। कई लोगों का विचार है कि इस राग की रचना गुरू नानक देव जी ने की थी।

23. राग केदार

केदार एक प्राचीन राग है। यह राग साधारण रागों में माना जाता है। यह बहुत ही प्रचलित राग है। पुरातन ग्रन्थों में इसको केदार, केदारा, केदारी और केदारो नाम लिखा है। वहाँ इसको शंकराभरण मेल बिलावल थाट का राग मानते हैं लेकिन वर्तमान समय के संगीतकार इसको भी हमीर, कामोद, छायानट, रागों की तरह ही कल्याण थाट का राग मानते हैं। इसके इलावा प्रसिद्ध विद्वान् संगीताचार्य पं0 फिरोजफरामजी (पूना) ने अपने श्रुति स्वर शिक्षा ग्रन्थ में केदार को सबसे महान् और शुद्ध थाट माना जाता है। वे लिखते हें कि 9 स्वरों के केदार थाट से आधुनिक तीन थाट की उत्पत्ति होती है। ऐसे वर्तमान समय के तीन थाट उत्पन्न करने वाला केदार अब कल्याण थाट का राग मानते हैं। इसी को समय की तब्दीली कहते हैं। प्राचीन शंकराभरण से कल्याण थाट में आने का कारण मध्यम तीव्र का प्रयोग है।

24. राग भैरउ (भैरव)

उत्तर भारत के मुख्य छः रागों में से भैरव एक प्रमुख राग है। पं0 दामोदर ने तो इसको अपने 'संगीत दर्पण' ग्रन्थ में आदि राग कह कर लिखा है। लेकिन क्या भैरव आदि राग हैं। अति प्राचीन इतिहास को पढ़ने से पता चलता है कि वैदिक काल में पहले तीन ही स्वर थे जिनमें वेद मन्त्र उच्चारे जाते थे। आगे चलकर एक–एक स्वर बढ़ कर सात स्वर प्रकार में आए। भैरव राग का रूप भी अलग–अलग काल में अलग–अलग रहा है। राग रागिनि वर्गीकरण के अंतर्गत मुख्य 6 राग, प्रत्येक राग की

छः–छःरागिनियां प्रत्येक रागिनि के आठ–आठ पुत्र राग और प्रत्येक पुत्र राग की आठ–आठ पुत्र वधुएं आदि परिवारिक योजनानुसार लगभग एक हजार रागों का वर्गीकरण हो चुका था। इस वर्गीकरण पद्धति के लिए कुछ मत्तमतान्तर भी पाए जाते थे। इनमें भरत, सोमेश्वर, कंल्लिनाथ तथा हनुमत आदि चार प्रमुख थे।

भरत मत वाले भैरव, हिंडोल, मालवकौशिक, श्री, मेघ और दीपक आदि छः प्रमुख राग मानते थे और हनुमत वाले इनका समर्थन करते थे। परन्तु दोनों में रागनियों तथा अन्य रागों के बारे में मतभेद था। इसी प्रकार सोमेश्वर मत वाले नट नारायण, बसन्त, मेघ , श्री, पंचम और भैरव रागों को मुख्य छः राग मानते थे। कलिनाथ (कृष्ण मत) मत वाले इनका समर्थन करते थे। परन्तु अन्य परिवार के सम्बन्ध में दोनों मत सहमत नहीं थे। लेकिन यह बात तो तय है कि चारों मतों वाले भैरव को अपना प्रमुख राग मानते थे। और इस राग से ही राग की वंशावली चलाई जाती थी।

मध्यकाल में भैरव का स्वर रूप क्या है ?संगीत रत्नाकर का भैरव (रे, प)वर्जित हमारे वर्तमान समय का मालकोस के साथ मिलता–जुलता है। संगीत दर्पण के अनुसार राग चन्द्रकोस की तरह और संगीत पारिजात (17वीं शताब्दी) में निषाद और गन्धार कोमल की जगह तीव्र हो गए। इस प्रकार पंचम वर्जित षाड़व भैरव की रूपरेखा में आया और अब समयानुसार उसी में पंचम स्वर मिला कर आधुनिक भैरव का सम्पूर्ण–सम्पूर्ण स्वर रूप हमें प्राप्त हुआ है।

25. राग बसन्तु (बसन्त)

बसन्त बहुत ही प्रसिद्ध और पुरातन राग है। यह भी रागरागिनी पद्धति में सोमेश्वर मत को मानने वाले और कल्लिनाथ मत को मानने वाले बसन्त राग को प्रमुख छः रागों में से एक राग मानते थे। लेकिन इसके स्वरूप के विषय में विद्वानों में मतभेद है। जैसे कोई कहता है कि इसका थाट मारवा है और जाति सम्पूर्ण है। कोई कहता है कि यह पंचम वर्जित षाडव जाति का राग है। इसी तरह कई संगीतकार इसको पूर्वी थाट का राग मानते हैं। कोई इसमें केवल तीव्र मध्यम का प्रयोग कहते हैं और कोई दोनों मध्यम का प्रयोग बताते हें। इसके अतिरिक्त एक मत और भी है जो इसमें गन्धार कोमल और थाट तोड़ी मानता है। अतः संगीत शास्त्रों में भिन्न–भिन्न प्रकार के बसन्त लिखे हैं।

प्राचीन संगीत शास्त्रों को पढ़ने से पता चलता है कि बसन्त राग में पहले शुद्ध स्वरों का प्रयोग होता है । फिर इसमें थोड़ा परिवर्तन हुआ अर्थात् रिषभ तीव्र की जगह कोमल हो गया और शुद्ध मध्यम के साथ तीव्र मध्यक का प्रयोग होने लगा। बसन्त का यह स्वरूप "संगीत राग कल्पदुमाकुंर" 'अभिनव राग मंजरी' और राग चन्द्रिकासार आदि पुस्तकों में लिखा है ।

26. राग सारंगु (सारंग)

पुरातन संगीत ग्रन्थों में सारंग के कई प्रकार लिखे हैं जैसे शुद्ध सारंग, मध्यमाद सारंग, बिंद्राबनी सारंग, मिया की सारग, सामंत सारंग, बडहंस सारंग आदि। लेकिन इन सारंग के प्रकारों में बिंद्राबनी सारंग ही सबसे अधिक प्रसिद्ध हो। जब किसी को सारंग राग गाने के लिए कहो तो वह बिन्द्राबनी सारंग ही गायेगा। इसीलिए सारंग कहने से बिन्द्राबनी सारंग ही समझा जाता है। सारंग कहो या बिन्द्राबनी सारंग दोनों का अर्थ एक ही है।

27. राग मलार (मल्हार)

मल्हार एक बहुत ही प्रसिद्ध और पुरातन राग है। संगीत ग्रन्थों में इसके 15–16 प्रकार मिलते हैं। जैसे – शुद्ध मल्हार, गौड़ मल्हार, नट मल्हार, जयंत मल्हार, सोरठ मल्हार, रूपमंजरी मल्हार, रामदासी मल्हार, घूंडिया की मल्हार, चरजू की मल्हार, मीरां बाई की मल्हार, इत्यादि। लेकिन इन सब रागों में अधिक मियां मल्हार, गौड़ मलहार, सूर मल्हार और मेघ मल्हार ही अधिक सुनने में आता है

बोलचाल में मल्हार से केवल 'मियां मल्हार' का ही बोध होता है। श्री कृष्ण राव पण्डित तथा श्री विनायक राव पटवर्धन के मतानुसार मल्हार से केवल मियाँ मल्हार ही समझना चाहिए।

मल्हार का अर्थ है मल का हरण करने वाला। अतः वर्षा ऋतु से ही यह कान्हड़ा और मल्हार के योग्य मिश्रण से बना है।

कहा जाता है कि तानसेन ने मल्हार नामक एक नये राग की रचना की थी, जिसे बाद में मियाँ की मल्हार अथवा मियां मल्हार कहा जाने लगा। अति प्राचीन ग्रन्थों में इसका उल्लेख नहीं मिलता।

28. राग कानड़ा (कान्हड़ा)

प्राचीन ग्रन्थों में इस राग के भिन्न–भिन्न नाम मिलते हैं। किसी ग्रन्थ में इस राग का नाम कर्णाट, किसी में कर्णाटी और किसी में कर्णाट गौड़ मिलता है, कान्हड़ा यह नाम कर्णाट का अपभ्रंश है। कुछ लोगों का कहना है कि कान्हड़ा राग का सम्बन्ध भगवान कृष्ण से है। कान्हरा से बिगड़ता–बिगड़ता यह राग कान्हड़ा हो गया। आज कल इस राग को 'कान्हड़ा' अथवा 'दरबारी कान्हड़ा' कहते हैं। यह तीनों नाम एक ही हैं। दरबारी यह शब्द मुस्लमानों के समय से प्राचलित हुआ कहा जाता है कि मियां तानसेन ने अकबर बादशाह के दरबार में कान्हड़ा राग को एक नये तरीके से गाया जिसे सुनकर अकबर बादशाह बहुत प्रसन्न हुए और बार–बार दरबार में गाये जाने पर इस राग का नाम दरबारी कान्हड़ा हो गया। अकबर के पश्चात् औरंगजेब के समय में अर्थात् पं0 भावभट्ट के समय में दरबारी कान्हड़ा का नाम बदल कर शुद्ध कान्हड़ा हो गया। आजकल इस राग को दरबारी कान्हड़ा अथवा कान्हड़ा अथवा दरबारी कहते हैं। कुछ लोग शुद्ध कान्हड़ा भी कहते हैं। यदि किसी गायक को कान्हड़ा गाने के लिए कहा जाये तो वह यही दरबारी कान्हउत्रा गाना शुरू कर देगा। कान्हउ़े कुल 18 प्रकार के माने जाते हैं जिन्हें दरबारी, नायकी, हुसैनी, कौंसी, अड़ाना, शहाना, सूहा, सुधराई, बागेश्री, काफी, गारा, जयजयवन्ती, टकी, नागध्वनि, मुद्रिक, कोलाहल, मंगल और श्याम कान्हड़ा कहते हैं।

दरबारी एक गम्भीर प्रकृति का राग है। यह अतिलोकप्रिय राग है। सुनने में बहुत भला मालूम होता है। आलाप के लिए तो यह राग अत्यन्त उपयोगी है।

29. राग कलियान (कल्याण)

कल्याण शब्द के सम्बोधन से यकायक मंगल का भास होने लगता है। सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो कल्याण थाट के स्वरों में भी भक्तिरस की प्रबलता रहती है। सच कहा जाये तो जितना प्रचार कल्याण थाट एवं उसके अंतर्गत आने वाले रागों का हुआ। उ़तना किसी दूसरे थाट का नहीं। इसके मुख्य दो कारण हो सकते हैं। प्रथम यह कि कल्याण के स्वर सरलता से प्रत्येक व्यक्ति गायक हो या वादक सुगमता पूर्वक ग्रहण कर सकता है। दूसरे हिन्दुओं को इष्ट वन्दना के समय ध्रुपद धमार में अधिकतर इसी का प्रभाव उचित रहता है। तथा मुस्लमान गायक एवं वादक राज दरबार में जब सायं

अपनी कला का प्रदर्शन करते तो राजा तथा उनके वैभव का गुणगान इसी थाट के स्वरों में करते थे। अतः कल्याण थाट के स्वरों का प्रचार दिनों–दिन बढ़ता ही गया।

कुछ लोगों का कहना है कि भारत में जब से यवन आए तभी से यमन राग का प्रादुर्भाव हुआ। कुछ व्यक्तियों के अनुसार 'यमन राग' का जनक अमीर खुसरो माना जाता है।

दक्षिण के विद्वानों का मत है कि 'यमन राग' हमारे 'यमुनाकल्याण' का ही एक प्रकार है। किन्तु ग्रन्थों में हमारे यहाँ 'कल्याण' या 'कल्याणी' नाम ही पाया जाता है।

बाद में जब ईरान से राग यमन का प्रचलन भारतवर्ष में हुआ तो कल्याण और यमन के स्वरों में एकरूपता होने के कारण इधर के लोगों ने उसे 'यमनकल्याण' ऐसा मिश्रित नाम रूप दे दिया और उसमें किंचित् 'कोमल मध्यम' का समावेश भी कर लिया।

कुछ लोग 'यमन राग' को ईरानी राग नहीं मानते और उसे अपने 'यहमन' राग का अपभ्रंश बताते हैं। साथ ही 'यहमन' राग का बड़ा ही मनोरंजक किस्सा सुनाते हैं। जो संक्षेप में इस प्रकार है। एक बार बाबा हरिदास अपने इष्ट देवता के समक्ष सायंकाल मन्दिर में तल्लीन हो कर गा रहे थे "यह मन अर्पण करूं तुम्हारे" इसे उनके किसी प्रमुख शिष्य ने छुप कर सुन लिया और दूसरे दिन आकर बाबा से याचना की कि कल आप जो "यहमन" गा रह थे वह मुझे सिखा दीजिए। बाबा ने उसे सिखा दिया तभी से 'यहमन' राग का प्रयोग भक्ति रस में अधिक होने लगा।

शिवमत के अनुसार मुख्य छः रागों में से 'नटनारायण' एक प्रमुख राग है और इसकी छः रागनियां हैं 'कामोदी, अभीरी, नाटिका, कल्याणी, सारंगी, और नटहंबीरा।' इस प्रकार से 'कल्याणी' 'नटनारायण' राग की एक रागिनि है।

30. राग 'प्रभाती'

'प्रभाती' प्रातःकाल के रागों में से एक मनोहर और पुरातन राग है। लेकिन आजकल यह बहुत कम सुनने में आता है। कई विद्वान 'प्रभावती', 'प्रभाती' और 'प्रभात' को भिन्न–भिन्न राग मानते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी संगीत–कार है जो 'प्रभाती' को 'प्रभात भैरव' या 'प्रभात विभास' की संज्ञा देते हैं। लेकिन हमारी खोज और विचारानुसार प्रभावती, प्रभाती या 'प्रभात' एक ही राग के नाम है। जिस तरह विहंग, बिहंगरा, बिहागड़ा और देव गन्धारी, देव गन्धार, गन्धार एक ही राग है।

पाद–टिप्पणियां

1. पूर्वी थाट अंक
2. हरीशचन्द्र श्रीवास्तव, राग परिचय, भाग – चार, पृष्ठ – 209, 210
3. बसन्त, संगीत विशारद, पृष्ठ – 143, 152
4. गणेश प्रसाद, राग प्रवीण, पृष्ठ – 144
5. सिख
6. गणेश प्रसाद शर्मा, राग प्रवीण, पृष्ठ – 162
7. हरीशचन्द्र श्रीवास्तव, राग परिचय, भाग – चार, पृष्ठ – 109
8. बसन्त संगीत विशारद, पृष्ठ – 143, 150
9. तोड़ी थाट अंक
10. बसन्त, संगीत विशारद, पृष्ठ – 149
11. कुमकुम सहदेव, भारतीय शास्त्रीय संगीत में रागो का परिचय, पृष्ठ – 48
12. बसन्त, संगीत विशारद, पृष्ठ – 149



शब्दों की रागों में स्वरलिपि

राग श्री

लक्षण गीत

श्री राग "गु णि" बरनत, री ध मृदुल मेल जनित, आरोहन ध ग न धुवत, रि ध सुर नित आन्दोलित – श्री रि ध नृप मंत्री समझत, रि प सुर संगत सोहत, शान्त सुखद रस प्रगटत, अस्तं समय गान सुमत[1]

शब्द

ओ सतिगुर प्रसादि ।। सिरी राग की वार
महला 4 सलोका नालि ।। सलोक मः 3 ।।[2]
रागा विचिं स्त्रीरागु है जो सचि धरे पिआरु ।
सदा हरि सचु मनि वसै निहचल मति अपारु ।।
रतनु अमोलकु पाईआ गुर का सबदु बीचारु ।।
जिह्वा सची मनु सचा सचा सरीर अकारु ।
नानक सचै सतिगुरि सेविऐ सदा सचु वापारु ।।31।।मः3।।

शब्द स्वरलिपि श्री राग

तीन ताल में (मध्य लय)

स्थाई

0	3	X	2
ऩि स ग रे	मे प ध् प	प – – ध	मे ग रे स
रा ऽ गां ऽ	वि च सि री	रा ऽ ऽ गुं	है ऽ ऽ ऽ
सं – प प	मे मे ध् ध्	रे – – ग	रे – स –

जे ऽ स चि	ध रे ऽ पि	आ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ रु ऽ

अन्तरा

0	3	X	2
मे प – –	नि नि सं सं	रे़ – रें़ रे़	सं ऽ ऽ ऽ
स दा ऽ ऽ	ह रि स चु	म ऽ नि व	सै ऽ ऽ ऽ
नि – रें़ नि	ध् – प प	रे़ – ग –	रे़ – स –
निह ऽ च ल	म ऽ ति अ	पा ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ रु ऽ

राग गौरी (परज–कालिगड़ा प्रकार)

सा नि़ धु़ नि, रे़ ग रे़ म, ग रे़ सा रे़, नि़ नि़ सा,
गौरी अंग 'गुणी' बतलायो, मेल मृ दु रि ध रचायो –
रि ध वादी सम्वादी बनायो, मध्यम दोनु मिलासयो,
परज कालिगडा रूप सजायो, मंद्र, मध्य गति पायो ।।
रिखब सुर को नित कम्पायो, छाया श्री उपजायो,
रस श्रंगार मधुर प्रग्टायो, अस्त समय रिझायो ।

शब्द रागु गउड़ी (गौरी)

गुन कीरति निधि मोरी ।। 1 ।। रहाउ ।।
तूंही रस तूंही जस तूंही रूप तूंही रंग ।।
आस ओट प्रभ तोरी ।। 1 ।।
तूही मान तूंही धान तूही पति तूही प्रान ।।
गुरि तूटी लै जोरी ।। 2 ।।
तूही ग्रिहि तूही बनि तूही गाउ तूही सुनि ।।
है नानक नेर नेरी ।। 3 ।। 3 ।। 156 ।।
गउड़ी महला 5 ।।

स्वरलिपी शब्द

राग गऊड़ी

तीन ताल (मध्यलय)

0	3	X	2
–रे̱ म ग	रे̱ रे̱ स स	नि़ ध̱ नि़ –	स नि़ रे̱ स
गु न की	र ति नि धि	मो ऽ री ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
–रे̱ म ग	रे̱ रे̱ स स	नि़ ध̱ नि़ –	ध̱ – प़ –
गु न की	र ति नि धि	मो ऽ री ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
–म़ म़ प़	नि़ नि़ स रे̱	नि़ – स –	– – – –
गु न की	र ति नि धि	मो ऽ री´ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ

अन्तरा

0	3	X	2
–म – प	नि नि सं –	– रें̱ – रें̱	नि सं – –
तू ऽ ही	र स ऽ ऽ	ऽ तू ऽ ही	ज स ऽ ऽ
– नि – ध̱	नि – – –	नि नि रें̱ नि	ध̱ – प –
ऽ तू ऽ ही	रु ऽ ऽ ऽ	प तू ऽ ही	र ऽ ऽ ऽ
प ध̱ प ध̱	म म प म	ग रे̱ ग –	रे̱ – स –
ग आ स ओ	ऽ ट प्र भ	तो ऽ री ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ

राग देवगन्धार

"गुणी" देवगन्धार सुनायो, आसावरी के थाट रचायो ,
प स वादी सम्वादी बनायो, आरोहन मों रि ध को छुपायो ।
श्राग धनाश्री रूप सजायो ।। 1 ।।
उत्तर अंग प्रबल चमकायो, प ग सुर संगत नित उपजायो,
द्विदीय प्रहर दिन सुजन रिझायो ।। 2 ।।

रागु देवगन्धारी महला 4 घरू

अब हम चली ठाकुर पहि हारि ।।
जब हम सरणि प्रभू की आई राखु प्रभू भावै मारि ।। 1 ।।
।। रहाऊ ।।

लोकन की चतुराई उपमा ते बैसंतरि जारि ।।
कोई भला कहउ भावै बुरा कहउ हम
तनु दीओ है ढारि ।। 1 ।।
जो आवत सरणि ठाकुर प्रभु तुमरी
तिसु राखहु किरपा धारि ।।
जन नानक सरणि तुमारी हरि जीउ
राखहु लाज मुरारि ।। 2 ।। 4 ।। देवगन्धारी ।।

शब्द स्वरलिपी

राग देवगन्धारी

तीन ताल (मध्यलय)

0	3	X	2
			प पनि ध प
			अ बऽ ह म
– पध म प	ग सरे ग म	प – – म	प पनि ध प
ऽ चऽ ली ठा	कू रऽ पहि ऽ	हा ऽ ऽ रि	अ बऽ ह म
– पध म प	ग सरे म गम	प – – म	ग रे स –
ऽ चऽ ला ठा	कू रऽ पहि ऽ	हा ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ रि ऽ
– सरे रे र	स स स स	ध – प़ ध	स – स –
ऽ जब ह म	स र णि प	भू ऽ की ऽ	आ ऽ ई ऽ
– म ग म	प निं सं रे	सरें गं रें सं	नि ध प –

ऽ रा खु प	भू ऽ भा वै	मा ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ रि ऽ
– पध म प			
ऽ चऽ ली ढा			

अन्तरा

– पध म म	पध प नि नि	सं – सां –	सं सं सं –
लीऽ क न	कीऽ ऽ ऽच तु	रा ऽ ई ऽ	उ प गा ऽ
– नि – नि	सं – सं सं	नि सं रें सं	नि ध प –
ऽ ते ऽ ब	सं ऽ त रि	जा ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ रि ऽ
प सं सं सरें	सं नि ध प	ग ग रे म	ग रे स –
कोई भ ला कऽ	हउ ऽ भा वै	बु रा ऽ क	हउ ऽ ऽ ऽ
– म ग म	प निं सं रें	सरें गं रें सं	नि ध प –
ऽ हम त नु	दी ओ ऽ ह	ढाऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ रि ऽ

राग बिहागड़ा

लक्षण गीत

गावत राग 'बिहागड़ा'

'नी' सुर कोमल भेद दिखावत, राग 'बिहाग' – सरूप मिलावत।
'गा' वादी और नी संवादी, दोनों मध्यम काहु कहे गुनि,
'नी' सुर अंग 'खमाज' बतावत, याम द्वितीय 'चतर' निस गावत।।

स्वरलिपी (शब्द)

बिहागड़ा महला 5 छंत घरु।

अति प्रीतम मन मोहना घट सोहना प्रान अधारा राम।।
सुन्दर सोभा लाल गोपाल दइआल की अपर अपारा राम।।
गोपाल दइपाल गोबिंद लालन मिलहु कंत निमाणीआ।।

नैन तरसन दरस परसन नह नीद रैणि विहाणीआ ।।
गिआन अंजन नाम बिंजन भए सगल सीगारा ।।
नानकु पइअंपै संत जपै मेलि कंतु हमारा ।। 1 ।।

शब्द स्वरलिपी

राग बिहागड़ा

तीन ताल (मध्यलय)

0	3	X	2
–म ग म	प प नि नि	धीन सं नि ध	प – प ध
– अ ति प्री	त म म न	मोऽ ऽ ऽ ह	ना ऽ घ ट
पध नि ध प	प म ग म	गम पध प म	गम गरे सनि़ स
सोऽ ऽ ऽ ह	ना प्रा न अ	धाऽ ऽऽ रा ऽ	राऽ ऽऽ ऽऽ ऽ
स ग ग म	प – ग म	ग – ग म	प – नि नि
म, सुं द र	सो ऽ भा ऽ	ला ऽ ल गो	पा ऽ ल द
धनि सं नि ध	प म ग म	गम पध प म	गम गरे सनि स
इया ऽ ऽ ल	की अप र अ	पाऽ ऽऽ रा ऽ	राऽ ऽऽ मऽ ऽ

अन्तरा

म ग ग म	प – नि नि	सं – – सं	सं – सं सं
गो पा ल दइ	या ऽ ल गो	बिं ऽ ऽ द	ला ऽ ल न
– नि नि –	नि – ध नि	सं – – नि	ध नि धप –
ऽ मि लहु ऽ	कं ऽ त नि	मा ऽ ऽ णी	आ ऽ ऽऽ ऽ
– गं – मं	गं गं रेंसं सं	– नि नि सं	नि नि धप प
ऽ नै ऽ न	त र स न	ऽ द र स	प र सऽ न
प ग – म	प – नि नि	सं – नि ध	पम गरे सनि स
नह नी ऽ द	रै ऽ णि व	हा ऽ ऽ णी	आऽ ऽऽ ऽऽ ऽ

राग बडहंस

लक्षण गीत

ग – ध वजत औडुव कह्यो, रि–प संवाद बतायँ।
राग कह्यो बड़हंस जब, द्वै निषाद लग जायँ ।।

शब्द बडहंसु महला 5 घरु

तू जाणाइहि ता कोई जाणै ।।
तेरा दीआ नामु बखाणै ।। 1।।
तू अचरजु कुदरति तेरी बिसमा ।। 1 ।। रहाउ ।।
तु धु आपे करणा ।। हुकमे जंमणु हुकमे मरणा ।। 2 ।।
नामु तेरा मन तन आधारी ।।
नानक दासु बखसीस तुमारी ।। 3 ।। 8 ।।

शब्द स्वरलिपी

राग बडहंस

ताल कहरवा (मध्यलय)

0	3	X	2
रेस प़ नि़ नि़	स स स स	स स रे प	म म ग –
ऽऽ तू अ च	र जु कु द	र ति ते री	बि स मा ऽ
रेस रे म म	प प प प	प म ध प	म म ग –
ऽऽ तू अ च	र जु कु द	र ति ते री	बि स मा ऽ

अन्तरा

– म – म	प – नि –	नि सं – स	सं – सं –
तू ऽ जा	णाई ऽ हि ऽ	ता को ऽ ई	जा ऽ णे ऽ
– सं – सं	नि – प –	प म ध प	म – ग –
ऽ ते ऽ रा	दी ऽ आ ऽ	ना ऽ मु ब	खा ऽ णै ऽ

लक्षण गीत

राग सोरठ

सोरठ "गुणि" बरनत, ओडव–पूरन संमत,
सिंध काफि मेल जनित, रोहन में ध ग बरजत
रि प के संवाद रचत, उतर दय ग अल्प लसत,
ध म संगत नित सोहत, रात द्वितीय प्रहर रिझत

शब्द सोरठि महला 9

मन की मन ही माही रही ।।
ना हरि भजे न तीरथ सेवे चोअि कालि गही ।। 1 ।। रहाउ
दारा मीत पूत रथ संपति धन पूरन सभ मही ।।
अवर सगल मिथ़िआ ए जानउ भजनु रामु को सही ।। 1 ।।
फिरत फिरत बहुते जुग हारिओ मानस देह लही ।।
नानक कहत मिलन की बरीआ सिमरन कहा नही ।। 2।। 2 ।।

सोरठि महला 9।।

0	3	X	2
			प नि पनि सरें
			म न कीऽ ऽऽ
नि ध पध पम	मगरे – ऩि स	रे – – –	स – – –
म न हीऽ ऽऽ	माऽऽ ऽ ही र	ही ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
ऩि – स स	रे म ग रे	म – प प	धप ध म
ना ऽ ह रि	भ जे ऽ न	ती ऽ र थ	सेऽ ऽ वे ऽ
रे – म –	प नी सं सरें	नि – ध प	

अन्तरा

– म – म	प – नी नी	सं सं सं सं	सं–सं सं

दा ऽ रा	मी ऽ त पू	ऽ त र थ	सं ऽ प ति
– नि नि नि	सं सं सं सरें	नि नि ध –	धप ध प –
ऽ ध न पू	र न स बऽ	म ही ऽ ऽ	ऽऽ ऽ ऽ ऽ
म प प प	धप ध म ग	रे – म –	प – प –
अ व र स	गऽ ल गि थि	आ ऽ ए ऽ	जाऽ नऊ ऽ
म प नि नि	सं सं सं सरें	नि नि ध प	
भ ज नु रा	ऽ मु को ऽऽ	स ही ऽ ऽ	

राग धनाश्री

लक्षणगीत

गुणि गावत राग धनाश्री को, रिझावत प्रभु अविनाशी को,
मिलाकर मेल मृदु ग म नि को, छुपावत रोहन रे ध सुर को,
लगाकर उतरे सब सुर को, रिझावत प्रभु अविनाशी को
बनाकर वादी पंचम को, बचावत भीमप्लासी को
सुनाकर तृतीय प्रहर दिन को, रिझावत प्रभु अविनाशी को,

शब्द – धनासरी महला 9

काहे रे बन खोजन जाई ।।

सरब निवासी सदा अलेपा तोहि संगि समाई ।। 1 ।। रहाऊ
पुहप मधि जिउ बासु बसतु है मुकर माहि जैसे छाई ।।
तैसे ही हरि बसे निरंतरि घट ही खोजहु भाई ।। 1 ।।
बाहरि भीतरि एको जानहु इहु गुर गिआनु बताई ।।
जन नानक बिनु आपा चीनै मिटै न भ्रम की कोई ।।2।। 1 ।।
धनासरी महला 9 ।।

(शब्द) स्वरलिपी

राग धनाश्री

छोटी तीन ताल (मध्यलय)

0	3	X	2
			प म
			का ऽ
प – ग –	– रे – नि़	स – – –	– – नि़ नि़
हे ऽ रे ऽ	ऽ ब ऽ न	खो ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ब न
स ग म प	– ग – रे	नि़ – स –	– –
खो ऽ ऽ ऽ	ऽ ज ऽ न	जा ऽ ई ऽ	ऽ ऽ
			प प
			स र
ग – म प	– नि – –	सं – – –	– – नि –
ब ऽ नि वा	ऽ सी ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ स ऽ
सं – गं रें	– सं – –	नि – – ध	प – नि –
दा ऽ अ ले	ऽ पा ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ, तो ऽ
प – – ग	– प – प	ग – – रे	स –
ही ऽ ऽ सं	ऽ गि ऽ स	मा ऽ ऽ ऽ	ई ऽ

लक्षण गीत

राग जेतश्री

जेतश्री रागनी सुमधुर सुहागनी,
मृदु रि ध तीख ग म नि, मेल समंत गुणी – जेतश्री
रि ध हीन आरोह, संपूर्ण अवरोह,
वादि पंचम रुचिर, षड्ज संवादिनी ।। 1 ।।

ग प सुसंगत मधुर, दिनके चरम प्रहर,

गावत "गुणी" चतर, सुध बिसर गई सुनी ।। 2 ।।

शब्द – जैतसरी महला 5 घरु 3 दुपदे

धीरउ सुनि धीरउ प्रभ कउ ।। 1 ।। रहाउ ।।

जीअ प्राण मनु तनु सभु अरपउ नीरउ पेखि प्रभ कउ नीरउ।।1।।

बेसुमार बेअंतु बड दाता मनहि गहीरउ पेखि प्रभ कउ ।। 2 ।।

जो चाहउ सोई सोई पावउ आसा मनसा

पूरउ जपि प्रभ कउ ।। 3 ।।

गुर प्रसादि नानक मनि वसिआ दूखि न

कबहू झूरउ बुझि प्रभ कउ ।। 4 ।।2।।3।।

जैतसिरी महला 5 ।।

स्वरलिपी

शब्द राग जैतश्री

तीन ताल (मध्यलय)

0	3	X	2
– प – ध़	प मे ग मे	ग रे़ स स	ग – प –
ऽ धी ऽ रउ	सु नि धी ऽ	रउ ऽ प्र भ	कउ ऽ ऽ ऽ
– प मे ध़	प मे गमे पम	ग रे़ स स	ग – प –
ऽ धी ऽ रउ	सु नि धी ऽ	रउ ऽ प्र भ	कउ ऽ ऽ ऽ

अन्तरा

प ग ग	मे मे ध़ू प	सं सं सं सं	नि रें़ सं –
जी अ प्रा	ऽ न म नु	त नु रा भु	अ र पउ ऽ
– सं गं में	गं रें़ सं सं	सं – सं –	निं रेंनि ध़ प

ऽ बी ऽ रउ	पे खि प्र भ	कउ ऽ नी ऽ	रउ ऽऽ ऽ ऽ

राग तोड़ी

लक्षण गीत

तोड़ी राग 'गुणि' बनरत, अत मृदु सुर रि ग ध रचत,
ध ग सुर संवाद करत, पंचम सुर अल्प लसत,
मधुर रूप प्रथम प्रहर दिन दरसत,

टोडी महला 5 घरु 5 दुपदे

मई चरन गुर मीठे ।।
वडै भागि देवे परमेसरु कोटि
फला दरसन गुर डीठे ।। रहाउ।।
गुन गावत अचुत अबनासी काम कोध बिन से मद ढीठै ।।
असथिर भए साच रंगि राते
जनम मरन बाहुरि नही पीठे ।।1।।
बिनु हरि भजन रंग रसा जेते
संत दइआल जाने सभि झूठे ।।
नाम वरतनु पाइओ जन नानक
नाम बिहून चले सभि मूठे।। 2।। 8।।27।। टोडी महला 5।।

स्वरलिपी शब्द

रागतोड़ी

तीन ताल (मध्यलय)

0	3	X	2
– रेग रे स	ध ध स रे	ग – – –	रे – स –
ऽ माऽ ई च	र न गु र	मी ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ठे ऽ

– ग मे मे	ध ध ध –	ग – रे ग	रे – स स
ऽ व डै भा	ऽ गि दे ऽ	वै ऽ प र	मे ऽ स रु
– मे ध ध	सं – सं सं	नि ध प ध	ग रे स –
– को टि फ	ला ऽ द र	स न गु र	डी ऽ सी ऽ

अन्तरा

ध मे मे	ध ध नि नि	सं सं सं सं	रें – सं –
मु न गा	व त ऽ अ	चु त अ बि	ना ऽ सी ऽ
– रे गं रें	सं सं सं सं	धनि संनि ध प	ग रे स –
ऽ का म क्रो	ऽ ध बि न	सेऽ ऽऽ म द	ढी ऽ ठे ऽ

लक्षण गीत

राग तिलंग

गुणी जन कहें राग तिलंग,
सुंदर स्वर अति सुमधुर 'दिलरंग '।
ओड़ुव जाति 'रे – ध ' स्वर वर्जित ,
'निसागमगस निप' स्वर – संगति ,
द्वितीय प्रहर निश, खमाज के अंग।।

तिलंग महला 9 काफी

हरि जसु रे मना गाइ लै जो संगी है तेरो ।।
अउसरु बीतिओ जातु है कहिओ मान लै मेरो।। 1 ।। रहाउ
संपति रथ धन राज सिउ अति नेहु लगाइओ ।।
काल फास जब गलि परी सभ भइयो पराइओ ।। 1 ।।
जानि बूझ के बावरे तै काजु बिगारिओ ।
पाप करत सुकचिओ नही नह गरबु निवारिओ ।। 2 ।।

जिह बिधि गुर उपदेसिआ सो सुनु रेभाई ।।
नानक कहत पुकारि कै गहु प्रभ सरनाई ।। 3 ।।

स्वरलिपी शब्द

राग तिलंग

तीन ताल (मध्यलय)

स्थाई

0	3	X	2
प सं नि सं	प नि प प	ग – म म	ग – स –
ह रि ज सु	रे ऽ म ना	गा ऽ ऽ इ	लै ऽ ऽ ऽ
नि – स –	स म ग –	ग म प नि	पनि सरें संनि पम
जो ऽ स ऽ	गी ऽ है ऽ	ते ऽ ऽ ऽ	रोऽ ऽ ऽ ऽ

अन्तरा

म – ग म	प नि प नि	सं – – सं	पनि सरें सं –
अऊ ऽ स रु	बी ऽ तिओ ऽ	जा ऽ ऽ त	हैऽ ऽऽ ऽ ऽ
गं गं – मं	गं गं सं –	सरें संनि पनि पम	गम पनि सरें सं
क हिओ ऽ मा	ऽ न लै ऽ	मेऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ	रोऽ ऽऽ ऽऽ ऽ

लक्षण गीत

राग सूहा

सुहा राग गाय, "गुणि" शास्त्र परमान,
कानड़ा मेल सो, धैवत बरज जान–सुहा
मृदु ग म नि सुर गहत, चढ दोनु नी लसत,
प ग संग गा वक, अवरोहन धर ध्यान ।। 1 ।।
म स सूर संवदत, पूवांर्ग मन हरत,

द्वितीय प्रहर दीन, व्यस्त मध्यम मान ।। 2 ।।

सूही महला 5 घरु 3

लालनु राविआ कवन गती री ।।
सखी बतावहु मुझहि मती री ।। 1 ।।
सूहब सूहब सूहवी ।। अपने प्रीतम कै
रंगि रती ।। 1 ।। रहाउ ।। पाव मलोवउ संगि
नैन भतीरी ।। जहा पठावहु जांउ तती री ।। 2।।
जप तप संजम देउ जती री ।।
इक निमख मिलावहु मोहि प्रानपती री ।। 3 ।।
माणु ताणु अहंबुधि हती री ।।
सा नानक सोहागवती री ।। 4 ।। 4।। 10।।

सूही महला 5 ।।

स्वर लिपी शब्द

राग सूही

तीन ताल (दुतलय मे)

0	3	X	2
प	– नि – धनि	सं – – –	नि – प –
सू	ऽ ह ऽ बऽ	सू ऽ ऽ ऽ	ह ऽ ब ऽ
म – ग म	– प नि प	म – – ग	म रे – स
ऽ ऽ ऽ सू	ऽ ऽ ऽ ह	वी ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
– – – स	स ऩि ध़ ऩि	स ऩि रे स	– स – –
ऽ ऽ ऽ अ	प ने ऽ प्री	त ऽ ग ऽ	ऽ कै ऽ ऽ
– – – म	– म ग म	प – – –	नि ध नि –

ऽ ऽ ऽ र   ऽ गि ऽ र   ती ऽ ऽ ऽ   ऽ ऽ ऽ ऽ

सं – –

ऽ ऽ ऽ सू

अन्तरा

– प प प   नि ध नि –   सं सं सं सं   सं – सं –

ला ल नु   रा वि आ ऽ   क व न ग   ती ऽ री ऽ

– गं गं मं   रें – सं –   नि नि – नि   सं नि सं –

ऽ स खी ब   ता ऽ बहु ऽ   मु झहि ऽ म   ती ऽ ऽ ऽ

नि प –

री ऽ ऽ

लक्षण गीत

राग बिलावल

सब स्वर शुद्ध सरल संपूरन, शांत सरस जन–रक्ति दायिनी
सुमधुर आश्रय–राग बिलावल, रीझ रीझ गुनि गाए ।
'ध–ग' संवाद सुनिश्चित 'मधुकर', प्रात प्रबल उतरांग–प्रधान ।
मृदु 'नी' लगे तब होत अल्हैया,रीझ रीझ गुनि गाए ।।

रागु बिलावलु महला 5 घरु 4 दुपदे

कवन संजोग मिलउ प्रभ अपने।
पलु पलु निमख सदा हरि जपने ।। 1 ।।
चरन कमल प्रभ के नित धिआवउ ।।
कवन सु मति जितु प्रीतमु पावउ ।। 1 ।। रहाउ ।।
ऐसी क्रिया करहु प्रभ मेरे ।।
हरि नानक विसरु न काहू बेरे ।। 2 ।।1।। 19 ।।

बिलावलु महला – 5 ।।

स्वरलिपी शब्द

राग बिलावल

तीन ताल (मध्यलय)

0	3	X	2
रे ग रे स	ग रे स रे	प – रे ग	म प म ग
च र न क	म ल प्र भ	के ऽ नि त	धिआ ऽ वउ ऽ
प प प ध	सं सं ध प	ग म रे ग	म प म ग
क व न स	म ति जि त	प्री ऽ त भु	पा ऽ वउ ऽ

अन्तरा

प प प प	नि ध नि नि	सं – सं सं	सं रें सं –
क व न सं	जो ऽ ग मि	लउ ऽ प्र भ	अ प ने ऽ
नि नि नि नि	सं सं ध प	ग म रे ग	म प म ग
प लु प लु	नि म ख स	दा ऽ ह रि	ज प ने ऽ

लक्षण गीत

राग रामकली

रामकली "गुणी" गायो अत मृदु रि ध के मेल रचायो

तामे द्वय द्वय म नि को मिलायो – रामकली

ध रि वादी संवादि बनायो,तीख म मृदु नी अल्प लगायो,

कबहु उतर ग वक्र बतायो मृदु मध्यम को सुजन बढायो ।। 1 ।।

चढते री दुर्बल बतलायो, मध्य तार के स्थान जमायो,

भैरव राग सो नित बचायो, प्रातकाल मों नाथ रिझायो।।2 ।।

रामकली बाणी भगता की ।। कबीर जीउ

कवन फलु पाइआ ।। भव निधि तरन तारन

चिंतामनि इक निमख

न इहु मनु लाइआ ।। 1 ।।

गोबिंद हम ऐसे अपराधी ।।

जिनि प्रभि जीउ पिंडु था दीआ

तिस की भाउ भगति नहीं साधी ।। 1 ।। रहाउ ।।

पर धन पर तन ती निंदा पर अपबादु न छूटै ।।

आवा गवनु होत है, फुनि–फुनि इहु परसंगु न तूटै ।। 2 ।।

जिही घरि कथां होत हरि सन्तन इक

निमख न कीन्हो मै फेरा ।।

लंपट चोर दूत मतवारे

तिनि संकग सदा बसेरा ।। 3 ।।

काम कोध भाइआ मद मतसर

ए संपै मो माही ।।

दइआ धरमु अरु गुरू की सेवा

ए सुपनंतरि नाही ।। 4 ।।

दीन दइआल किपाल दमोदर

भगति व छल भै हारी ।।

कहत कबीर भीर जन राखहु हरि

सेवा करउ तुम्हारी ।। 5 ।। 8 ।।

राग रामकली

तीन ताल (मध्य लय)

0	3	X	2
गग मनि धुप	प प ग म	प – ग म,पम	रे – स –

गोंऽ ऽऽ बिंऽ	द ह म ऐ ऽ	से ऽ ऽ अपउ	रा ऽ धी ऽ
रे रे रे रे	स – स –	ध ध स –	रे – स –
जि न प्र भ	जी ऽ ऊ ऽ	पिं डु था ऽ	दी ऽ आ ऽ
नि़ स म मग	प – प प	प पमे प धनि	ध – प –
ति स की ऽऽ	भा ऽ उ भ	ग तिऽ न हीऽ	सा ऽ धी ऽ

अन्तरा

म म प प	ध ध नि नि	सं – सं सं	नि – सं सं
क व न का	ऽ ज सि र	जे ऽ ज ग	भी ऽ त रि
ध ध ध ध	नि नि सं सं	रें ऽ – –	नि संनि ध प
ज न मि क	व न फ लु	प ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽऽ इआ ऽ
प पगे प धनि	ध ध प प	म ग म पम	रे – स स
भ वऽ नि धिऽ	त र न ता	र न चिं ऽऽ	ता ऽ म नि
स गम ग म	प प ध धनि	ध – प –	गम मनि धप प
इक निम खु न	इ हु म नुऽ	ला ऽ हआ	गोऽ ऽऽ बिऽ द

राग मालिगौरा

लक्षण गीत

मालिगौरा "गुणि" बरनत, मेल मृदुल रिखब रचत,
पूरिया श्रीसु मिलत, मंद्र मध्य सूर गहत
ग नि नृप मंत्री संमत, रेखब इतउत चमकत,
अस्त समय सुजन रिझत, सोहत सुर नि प संगत
रागमाली गउड़ा बाणी भगत नामदेव. जी की
धनि धनि ओ राम बेणु बाजै ।।
मधुर मधुर धुनि अनहत गाजै ।। 1 ।। रहाउ ।।

धनि धनि मेघा रोमावली ॥
धनि धनि किसन ओढै कांबली ॥ 1 ॥
धनि धनि तू माता देवकी ॥
जिह गिह रमईया कवलापती ॥ 2 ॥
धनि धनि बन खंड बिंद्राबना ॥
जह खेले स्री नाराइना ॥ 3 ॥
बेनु बजावै गोधनु चरै ॥
नामे का सुआमी आनद करै ॥ 4 ॥ 1 ॥

0	3	X	2
			स रे ऩि
			धऽ नि
रे ग मंध मे	ग रे स स	ऩि – रे –	स – – –
ध नि ओऽ रा	ऽ म बे न	बा ऽ ऽ ऽ	जै ऽ ऽ ऽ
रे रे प प	मे ध प प	मे ग मंध मे	ग रे
म धु र म	धु र धु नि	अ न हऽ त	गा जै

अन्तरा

प प सं सं	सं – सं –	सं नि रें नि	ध प मे ऽ
ध नि ध नि	मे ऽ घा ऽ	रो मा ऽ व	ली ऽ ऽ ऽऽ
सं सं सं सं	नि रेंनि ध प	म ग मेध म	ग रे
ध नि ध नि	कि ऽस न औ	ठै ऽ काऽ ब	ली ऽ

राग केदार

लक्षण गीत

ओड़ुव – षाडव रूप सजे और मध्यम दोऊ, गुप्त गन्धार
मध्यम वादी, 'सा' संवादी, आरोहन मे 'रे – ग' वर्जित ;

रात समय नित प्रथम प्रहर मे, गुणी जन गावत राग केदार ।

केदार महला 5 घरु 5

बिसरत नाही मन ते हरी ।।
अब इह प्रीति महा प्रबल भई आन बिखै जरी ।। रहाउ ।।
बूंद कहा तिआगि चात्रिक मीन रहत न घरी ।।
गुन गोपाल उचारु रसना टेव एह परी ।। 1 ।।
महा नाद कुरंक मोहिआ बेधि तीखन सरी ।।
प्रभ चरन कमल रसाल नानक गाठि बाधि धरी ।। 2।।1।।।। 9।।

स्वर लिपी शब्द

राग केदार

तीन ताल (मध्यलय)

0	3	X	2
स स म मग	प – मेप –	सं सं ध प	पमे धप म –
धि स र ताऽ	ना ऽ हीऽ ऽ	म न ते ह	रीऽ ऽऽ ऽ ऽ
प प ध ध	ध <u>नि</u>ध प प	(म) – रे स	रे <u>सीन्</u> स स
अ ब इ ह	प्री ऽऽ ति म	हा – प्र ऽ	ब लऽ भ ई
स – म मग	प प धनि सरें	सं – – –	ध – प –
आ ऽ न ऽऽ	बि खै ऽऽ ऽज	री ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ

अन्तरा

प – सं –	सं सं – –	ध नि सं रें	नि सं ध प
बू ऽ द ऽ	क हा ऽ ऽ	तिआ ऽ ऽ गि	च ऽ त्रि क
म – म मग	प प धनि संरें	सं – – –	ध – प –
मी ऽ न ऽऽ	रह त नऽ ऽध	री ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ

लक्षण गीत

राग भैरव

'गुणि' भैरव राग सुनायो
रामकली के मेल रचायो,
तीरव मध्यम् छुपायो – गुणि

ध रि वादी सम्वादी बनाओ, उतरे मृदुल नि अल्प मिलायो,
चढते री दुर्बल बतलायो, दोलित रि ध मन भायो ।। 1।।
कबहु उतर ग वक्र लगायो, मन्द्र मध्य सुर चलन सुहायो,
प्रात समय भक्ति रस प्रगटायो, व्यस्त मध्यम दिखायो ।।2।।

शब्द राग भैरउ महला 5 घरु ।

ऊठत सुखीआ बैठत सुखीआ ।।
भउ नही लागै जां ऐसे बुझीआ ।। 1 ।।
राखा एकु हमारा सुआमी ।।
सगल घटा का अंतरजामी ।। 1 ।। रहाउ ।।
सोइ अचिंता जागि हचिंता ।।
जहा कहां प्रभु तूं वरतंता ।। 2 ।।
घरि सुखि वसिआ बाहरि सुखु पाइआ ।।
कहु नानक गुरि मंत्रु द्रिड़ाइआ ।। 3 ।। 2 ।।

स्वरलिपी शब्द

राग भैरव

तीन ताल (मध्यलय)

0	3	X	2
– म ग म	प – म प	ध॒ – प म	रे॒ – स –

ऽ रा ऽ रवा	रे ऽ कु ह	मा ऽ रा ऽ	सुआ ऽ मी ऽ
– ऩि ध़ नि	स – स ऱे	ग – म म	ऱे – स –
ऽ सग ल घ	टा ऽ का ऽ	अं ऽ त र	जा ऽ मी ऽ

अन्तरा

– म प प	ध़ ध़ नि –	सं – सं सं	नि नि सं –
ऽ उ ठ त	सु खी आ ऽ	बे ऽ ठ त	सु खी आ ऽ
– ध़ ऱें ऱें	सं – सं सं	नि – सं नि	ध़ ध़ प –
ऽ भओ न ही	ला ऽ गै जा	ऐ ऽ से ऽ	बु झी आ ऽ

राग बसन्त (मृदु धैवत प्रकार)

लक्षण गीत

कान्ह बैंसि में बसन्त मधुर सुर बजाई,
तीख नी ग मृदल ध री, दोनु मा लगाई,
मृदु म ललित प्रगटाई
सा प सुर संवाद करत, रोहन मों रि प न छुवत,
उत्तर अगं प्रबल धरत, गान अंत निस भाई – कान्ह

शब्द राग बसंतु महला 3

बसंतु चड़िआ फूली बनराइ ।।
एहि जीअ जंत फूलहि हरि चितु लाइ ।। 1 ।।
इन बिधि इहु मनु हरिआ होइ ।।
हरि हरि नामु जपै दिनु राती गुरमुखि
हउमै कढै धोइ ।। 1 ।। रहाउ ।।
सतिगुर बाणी सबदु सुणाए ।।
इहु जगु हरिआ सतिगुर भाए ।। 2 ।।

फल फूल लागे जां आपे लाए ।
मूलि लगै तां सतिगुरू पाए ।। 3 ।।
आपि बसंतु जगतु सभु बाड़ी ।।
नानक पूरै भागि भगति निराली ।। 4 ।। 5 ।। 17 ।।

स्वरलिपी शब्द

राग बसन्त

तीन ताल (मध्यलय)

0	3	X	2
सं (सं) निध ध	प प मे ग	मे ध नि सं	रें – सं –
ब सं ऽऽ तु	च ड़ि आ ऽ	फू ली ब न	रा ऽ इ ऽ
सं (स) निध ध	प प मे ग	ग ग ध मे	ग रे स –
ब सं ऽऽ ल	च ड़ि आ ऽ	फू ली ब न	रा ऽ ई ऽ
स स म म	म म मे म	ग ग मे ध	रें – सं –
ऐ हिं जी अ	जं त फू लहि	ह रि चि तु	ला ऽ इ ऽ

अन्तरा

– मे ध मेध	सं सं सं सं	– नि सं सं	रें – सं –
ऽ इन बि धिऽ	इ हुं म नु	ऽ ह रि आ	हो ऽ इ ऽ
– हरि ह रि	ना ऽ मु ऽ	ऽ ज पें दिन	रा ऽ ती ऽ
– गं गं में	गं रें सं –	– नि सं रें	ध – प ध
ऽ गुर सू खि	हउ ऽ मै ऽ	ऽ क ऽ ढै	धै ऽ इ ऽऽ

राग ब्रन्दावनी सारंग

लक्षणगीत

गायो सारंग, मेल कानड़ा "गुणी" रचायो,

धग. बिन ओडव होत अंग -- गायो

रि प सुर के संवाद बनायो, अतरे कबहु ध अल्प मिलायो,

रेखब पंचम लाग जमायो, दिन मध्यान्ह में मचायो रंग-गायो

शब्द राग सारंग महला 5 दुपदे घरु 4

मोहन धरि आवहु करउ जोदरीआ।।

मानु करउ अभिमानै बोलउ भूल चूक

तेरी प्रिआ चिरीआ ।।1।। रहाउ।।

निकटि सुनउ अरु पेखउ नाही भरमि भरमि दुख भरीआ ।।

होइ क्रिपाल गुर लाहि पारदो मिलउ लाल मनु हरीआ।।1।।

एक निमख जे बिसरै सुआमी जानउ

कोटि दिनस लख बरीआ।।

साध संगति की भीर जउ पाई तउ

नानक हरि संगि मिरीआ ।। 2 ।। 1 ।। 24 ।।

स्वरलिपी शब्द

राग ब्रन्दावनी सारंग

तीन ताल (मध्यलय)

स्थाई

X	2	0	3
		नि	प मरे – स
		मो	हन घऽ ऽ रि
रे – – स	रे म प<u>नि</u> प	रे रे स –	ऩि – ऩि ऩि
आ ऽ ऽ वह	क रउ ऽऽ जो	द दी आ ऽ	मा ऽ नु क
स – म रे	म – प –	प <u>नि</u> प –	म – प –

रउ ऽ अ भि	मा ऽ नै ऽ	बो ऽ लउ ऽ	भू ऽ ल ऽ
नि – स सं	सरें सं<u>नि</u>	प<u>नि</u> पम	रेम रेम निस
चू ऽ क ते	रीऽ ऽऽ प्रिऽ	अऽ चिऽ	रीऽ आऽ

अन्तरा

म म म म	प – नि नि	सं – सं सं	नि – सं –
नि क टि सु	नओ ऽ अ रु	पे ऽ खओ ऽ	ना ऽ ही ऽ
नि नि नि नि	सं सं सं सं	सरें स – –	प <u>नि</u> प –
भ र नि भ	र मि दु ख	भऽ री ऽ ऽ	आ ऽ ऽ ऽ
प रें रें रें	मरें मं रें सं	नि सं रें सं	<u>नि</u> <u>नि</u> प –
हो ऽ इ कि	पाऽ ल गु र	ला ऽ हि पा	ऽ र वो ऽ
म प नि नि	सं सं सं सं	प<u>नि</u> पम रेस	<u>ऩि</u> प़
मि लउ ऽ ल	ऽ ल म नु	हऽ रीऽ आः मो	हन धर – –

राग मल्हार

लक्षण गीत

गाबोरे 'गुणी' मल्हार अब धन बरसे ।
मेल कानड़ा मधुर रचावो, चढते गा दुर्बल बतलावो,
उतरे दोलित वक्र सजावो सुनत हि नित जियरा लरजे।।1।।
रिखब पंचम लाग जमावो, प ग सुर संगत नित उपजावो ।

शब्द राग मलार महला 5

धनु गरजन गोबिंद रूप ।।
गुन गावत सुख चैन '।। 1 ।। रहाउ ।।
हरि चरन सरन तरन सागर धुनि अनहवा रस बैन ।।1।।
पाथिक पिआस चित सरोवर आतम जलु लैन ।।

रि दरस प्रेम जन नानक करि किरपा प्रभ दैन ।।2।।7।।29।।

वरलिपी शब्द

राग मल्हार

तीन ताल (मध्यलय)

0	3	X	2
स़ं सं नि प	म प रे –	प प ग ग	ग म रे स
ध नु ग र	ज त गो ऽ	बिं द रु ऽ	ऽ ऽ ऽ प
नि़ स म –	रे रे स स	म प धनि सरें	निसं – धनि प
गु न गा ऽ	व त सु ख	चै ऽ ऽऽ ऽऽ	ऽऽ ऽ ऽऽ न

अन्तरा

प म म म	नि ध नि –	सं सं – सं	नि – सं सं
हरि च र न	स र न ऽ	त र ऽ न	सा ऽ ग र
– रें रें रे	गं मं रें सं	सं – – –	निसं रेंसं नि प
ऽ धु नि अन	ह ता र स	बें ऽ ऽ ऽ	ऽऽ ऽऽ ऽ न

राग दरबारी

लक्षण गीत

गावत राग "गुणी" दरबारी

मेल मधुर अत ग म ध नि मृदु युत,

डूलत सुर गंधार अरु धेंवत, चमकत लाग प गा नित भारी–गावत

वादी सुर गंधार बनावत, संवादी सुर धनि बतलावत,

उतरे धेंवत वक लगावत,नीं पा संग मधुर सुखकारी ।। 1 ।।

मंद्र मध्य सुर चलन सुहावत, वीर गंभीर रस प्रगटावत,

कानड़ा के सरदार कहावत, निस तृतीय प्रहर अत हितकारी ।।2।।

शब्द राग कानड़ा महला 5

बिसरी गई सभ ताति पराई ।।
जब ते साधसंगति मोहि पाई ।। 1 ।। रहाउ ।।
ना को बैरी नही बिगाना सगल संगि
हम कउ बनि आई ।। 1 ।।
जो प्रभ किनो सो भल मानिओ
एह सुमति साधू ते पाई ।। 2 ।।
सभ महि रवि रहिआ प्रभु एकै
पेखि पेख नानक बिगसाई ।। 3 ।। 8 ।।

स्वरलिपी शब्द

राग कानड़ा

तीन ताल (मध्यलय)

0	3	X	2
सं सं नि प	म प गरे सरे	ग – ग म	रे – स –
बि स रि ग	इ ऽ सऽ बऽ	ता ऽ ति प	रा ऽ ई ऽ
स स रे प	प – प प	ग प नि सं	रें सं निप मप
ज ब ते ऽ	सा ऽ ध सं	ग ति मो हि	पा ऽ ईऽ ऽऽ

अन्तरा

म – म –	प – सं नि	सं सं – सं	से रें सं –
ना ऽ को ऽ	बै ऽ री ऽ	न ही ऽ बि	गा ऽ ना ऽ
नि सं गं मं	रें रें सं सं	सं – नि प	मप निप ग म
स ग ल सं	ऽ गि ह म	कउ ऽ ब नि	आऽ ऽऽ ई ऽ

राग कल्याण

लक्षणगीत

यमन सुनाओ 'प–रे' स्वर संगति, तीवर सब स्वर संपूरन नित ।
वादी गांधार, निषाद संवादी, प्रथम पहर निश सबको रिझावत ।।

शब्द – रागु कलिआनु महला 5 घरु ।

हमारे एह किरपा कीजै ।।
अलि मकरंद चरन कमल सिउ मनु
फेरी फेरी रीझै ।। 1 ।। रहाउ ।।
आन जला सिउ काजु न कछूऐ
हरि बूंद चात्रिक कउ दीजै ।। 1 ।।
बिनु मिलबे नाही संतोखा पेखि दरसनु
नानकु जीजै ।। 2 ।। कलिआन महला 5

स्वरलिपी शब्द

राग कल्याण

तीन ताल (मध्यलय)

0	3	X	2
नि (प) – र	– स ग रे	ग – – मे	– मे प –
ह मा ऽ रै	ऽ ऐह कि र	पा ऽ ऽ की	ऽ ऽ जै ऽ
प प प प	मेग मे ग रे	निरे गमे प रे	ग रे स –
अ लि म क	रंऽ ऽ द ऽ	चऽ रऽ न क	म ल सिउ ऽ
नि – रे –	ग ग मे प	मे ध नि ध	प – – –
म ऽ नु ऽ	फे री फे री	री ऽ झै ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ

अन्तरा

प – सं सं	सं – सं सं़	सं (सं) नि ध	नि ध प –
आ ऽ न ज	ला ऽ सि उ	का ऽ जु न	क छू ऐ ऽ
प मे ग प	रे – <u>सरे</u> स	<u>सरे</u> <u>गमे</u> प रे	ग रे स –
ह ऽ रि ऽ	बू ऽ दऽ चा	त्रिऽ कऽ कउ	ऽ दी ऽ जै ऽ

राग प्रभात

लक्षण गीत

'गुणि' गात प्रभात?रवि उदय के बरवत
रामकली मेल युत, म सा सूर संवदत – गुणि
दोनु मध्यम लसत,सोहत रूप ललित
अल्प पंचम धरत, म ध संग मन हरत ।। 1 ।।
कांलिगडा, गौरि, भैरव मधुर मिलत,
जागत सकल जगत सुर मुनि जप, जपत ।। 2 ।।

शब्द राग प्रभाती महला 1

अंम्रितु नीरू गिआनि मन मजनु
अठसठि तीरथ संगि गहे ।।
गुर उपदेसि जवाहर माणक सेवे
सिखु सो खोजि लहै ।। 1 ।।
गुर समानि तीरथु नही कोइ ।।
सरु संतोखु तासु गुय होइ ।। 1 ।। रहाउ ।।
गुरू दरीआउ सदा जलु निरमलु
मिलिआ दुरमति मैलु हरै ।।
सतिगुरि पाइऐ पूरा नावणु

पसू परेतहु देव करै ।। 2 ।।
रता सचि नामि तल ही अलु सो
गुरू परमलु कहीए ।।
जा की वासु बनासपति सउरै
तासु चरण लिव रहीऐ ।। 3 ।।
गुरमुखि जीअ प्रान उपजहि
गुरमुखि सिव घरि जाईऐ ।।
गुरमुखि नानक सचि समाईऐ
गुरमुखि निज पदु पाईऐ ।। 4 ।। 6 ।।

स्वरलिपी शब्द

राग प्रभाती

तीन ताल (मध्यलय)

स्थाई

0	3	X	2
ग म ग रे	– स नि़ स	ध़ ध़ नि़ नि़	स – स –
गु र स मा	ऽ नि ती ऽ	र थु न ही	को ऽ इ ऽ
ग म म ध	प – म म	ग ग रे रे	ग –म म॑
स रु सं ऽ	तो ऽ खु ता	ऽ सु गु रु	हो ऽ इ ऽ

अन्तरा

मे म म म	ध – नि नि	सं सं सं सं	नि सं सं सं
अं ऽम रि तु	नी ऽ रु गि	आ नि म न	म ऽ ज नु
ध ध ध ध	सं – सं सं	रें – स स	ध प म मे
अ ठ स ठि	ती ऽ र थ	स ऽ गि ग	हे ऽ ऽ ऽ

म म म म	ग रे ग म	ध – प म	ग – म म
गु र उ प	दे ऽ सि ज	वा ऽ ह र	मा ऽ न क
प ध सं –	ध प म –	ग – म रे	ग – म म
से ऽ वे ऽ	सि खु सो ऽ	खो ऽ जि ल	है ऽ ऽ ऽ

राग जैजैवन्ती

लक्षण गीत

"गुणि" जयजयवंति लच्छन बतायो
गौंड,बिलाबल अरु सोरठ मिलायो
रेखब करे वादि, पंचम हि संवादि
द्वितीय प्रहर रात सब को रिझायो

शब्द रागु जैजावंती महला 9

बीत जैहै बीत जैहै जनमु अकाजु रे ।।
निसि दिनु सुनि कै पुरान समझत नह रे अजान ।।
कालु तउ पहूचिओ आनि कहा जै है भाजि रे ।। 1 ।। रहउ
असथिरु जो मानिओ देह सो
तउ तेरउ होइ है खेह ।।
किउ न हरि को नामु लेहि मूरख निलाज रे ।। 1 ।।
राम भगति हीए आनि छाडि दे तै मन को मानु ।।
नानक जन इह बखानि जग महि बिराजु रे ।।2।।4।।

स्वरलिपी शब्द

राग जैजैवन्ती

तीन ताल (मध्यलय)

स्थाई

0	3	X	2
स नि़ स रे	सनि़ स ध़ नि़	रे रे ग मप	म गम रेग रे
बी त जै है	बीऽ त जै है	ज न गु ऊऽ	का ऽजु रेऽ ऽ
नि़ नि़ स स	नि़स रेस नि़ ध़	प़ प़ रे रे	गरे ग म प
नि स दि नु	सुनि कैपु रा न	सम झत न ह	रेऽ अ जा न
नि ध प पध	म प ग म	रे ग म प	म गम रेग रे
का लु तऊ पऽ	हू चिओ आ नि	क हा जै है	भा ऽजि रेऽ ऽ

अन्तरा

म प नि नि	सं नि सं सं	निसं रेंगे रें सं	रें संनि सं सं
अस थि रु जी	म निओ दे ह	सोऽ तऊ ते रऊ	होरे हैऽ खे ह
प सं नि नि	धप ध म प	ध ध ग म	रे ग रे –
किउ न हरि को	नाऽ मु ले हि	मू र ख नि	ला ऽज रे ऽ

पाद टिप्पणी

1. राग लक्षण गीत मालिका, भाग –2 पृ0 152
2. कबीर जी का आदिग्रन्थ, पृ0 83
3. गुरूमत संगीत सागर भाग तीन, प्रिसिपल दयाल सिंह, पृ0 28
4. राग लक्षण गीत मालिका, भाग –2 पृ0 151
5. आदिग्रन्थ, भाग– 1, पृ0 213–214
6. गुरूमत संगीत सागर भाग तीन, प्रिसिपल दयाल सिंह, पृ0 337
7. राग लक्षण गीत मालिका, भाग –2 पंडित फिरोज फामजी,पृ0 152
8. आदिग्रन्थ, भाग– 1, पृ0 527–528
9. गुरूमत संगीत सागर भाग तीन, प्रिसिपल दयाल सिंह, पृ0 299
10. संगीत लक्षणगीत अंक जनवरी 1971, सम्पादक लक्ष्मी नारायण गर्ग, पृ0 150

11. आदिग्रन्थ, भाग– 1, पृ0 542
12. गुरूमत संगीत सागर भाग तीन, प्रिसिपल दयाल सिंह, पृ0 248
13. संगीत लक्षणगीत अंक जनवरी 1971, पृ0 186
14. आदिग्रन्थ, भाग–, पृ0 563–564
15. गुरूमत संगीत सागर भाग तीन, प्रिसिपल दयाल सिंह, पृ0 274
16. राग लक्षण गीत मालिका, भाग –2 पंडित फिरोज फ्रामजी,पृ0 87
17. आदिग्रन्थ, भाग– 1, पृ0 631
18. गुरूमत संगीत सागर भाग तीन, प्रिसिपल दयाल सिंह, पृ0 184
19. राग लक्षण गीत मालिका, भाग –2 पंडित फिरोज फ्रामजी,पृ0 96
20. आदिग्रन्थ, भाग– 1, पृ0 684
21. गुरूमत संगीत सागर भाग दो, प्रिसिपल दयाल सिंह, पृ0 146
22. राग लक्षण गीत मालिका, भाग –2 पंडित फिरोज फ्रामजी,पृ0 156
23. आदिग्रन्थ, भाग– 1, पृ0 700
24. गुरूमत संगीत सागर भाग तीन, प्रिसिपल दयाल सिंह, पृ0 84
25. राग लक्षण गीत मालिका, भाग –2 पंडित फिरोज फ्रामजी,पृ0 126
26. आदिग्रन्थ, भाग– 1, पृ0 717
27. गुरूमत संगीत सागर भाग दो, प्रिसिपल दयाल सिंह, पृ0 400
28. संगीत लक्षणगीत अंक जनवरी 1971, सम्पादक लक्ष्मी नारायण गर्ग, पृ0 31
29. आदिग्रन्थ, भाग– 2, पृ0 727
30. गुरूमत संगीत सागर भाग दो, प्रिसिपल दयाल सिंह, पृ0 54
31. राग लक्षण गीत मालिका, भाग –2 पंडित फिरोज फ्रामजी,पृ0 98
32. आदिग्रन्थ, भाग– 2, पृ0 739

33. गुरूमत संगीत सागर भाग तीन, प्रिसिपल दयाल सिंह, पृ0 288
34. संगीत लक्षणगीत अंक जनवरी 1971, सम्पादक लक्ष्मी नारायण गर्ग, पृ0 79
35. आदिग्रन्थ, भाग– 2, पृ0 806
36. गुरुमत संगीत सागर भाग एक, प्रिसिपल दयाल सिंह, पृ0 29
37. राग लक्षण गीत मालिका, भाग –2 पंडित फिरोज फ्रामजी,पृ0 135
38. आदिग्रन्थ, भाग– 2, पृ0 970–71
39. गुरूमत संगीत सागर भाग चार, प्रिंसिपल दयाल सिंह, पृ0 132
40. राग लक्षण गीत मालिका, भाग –2 पंडित फिरोज फ्रामजी,पृ0 171
41. आदिग्रन्थ, भाग– 2, पृ0 988
42. गुरूमत संगीत सागर भाग चार, प्रिसिपल दयाल सिंह, पृ0 33
43. संगीत लक्षणगीत अंक जनवरी 1971, पृ0 58
44. आदिग्रन्थ, भाग– 2, पृ0 1120–21
45. गुरूमत संगीत सागर भाग तीन, प्रिंसिपल दयाल सिंह, पृ0 165
46. राग लक्षण गीत मालिका, भाग –2 पंडित फिरोज फ्रामर्जी,पृ0 138
47. आदिग्रन्थ, भाग– 2, पृ0 1136
48. गुरूमत संगीत सागर भाग पहला, प्रिंसिपल दयाल सिंह, पृ0 111
49. राग लक्षण गीत मालिका, भाग –2 पंडित फिरोज फ्रामजी,पृ0 148
50. आदिग्रन्थ, भाग– 2, पृ0 1176–77
51. गुरुमत संगीत सागर भाग दो, प्रिंसिपल दयाल सिंह, पृ0 237
52. राग लक्षण गीत मालिका, भाग –2 पंडित फिरोज फ्रामजी,पृ0 107
53. आदिग्रन्थ, भाग– 2, पृ0 1209
54. गुरूमत संगीत सागर भाग पहला, प्रिंसिपल दयाल सिंह, पृ0 174

55. राग लक्षण गीत मालिका, भाग –2 पंडित फिरोज फ्रामजी,पृ0 104

56. आदिग्रन्थ, भाग– 2, पृ0 1272–73

57. गुरूमत संगीत सागर भाग दो, प्रिसिपल दयाल सिंह, पृ0 279

58. राग लक्षण गीत मालिका, भाग –2 पंडित फिरोज फ्रामजी,पृ0 116

59. आदिग्रन्थ, भाग– 2, पृ0 1299

60. गुरूमत संगीत सागर भाग दो, प्रिसिपल दयाल सिंह, पृ0 178

61. संगीत लक्षणगीत अंक जनवरी 1971, सम्पादक लक्ष्मी नारायण गर्ग, पृ0 19

62. आदिग्रन्थ, भाग– 2, पृ0 1321

63. गुरूमत संगीत सागर भाग दो, प्रिसिपल दयाल सिंह, पृ0 216

64. राग लक्षण गीत मालिका, भाग –2 पंडित फिरोज फ्रामजी,पृ0 137

65. आदिग्रन्थ, भाग– 2, पृ0 1328–29

66. गुरूमत संगीत सागर भाग चार, प्रिसिपल दयाल सिंह, पृ0 152

67. राग लक्षण गीत मालिका, भाग –2 पंडित फिरोज फ्रामजी,पृ0 91

68. आदिग्रन्थ, भाग– 2, पृ0 1352–53

69. गुरूमत संगीत सागर भाग तीन, प्रिसिपल दयाल सिंह, पृ0 202



भारतीय संगीत परम्परा और आदि ग्रन्थ का राग प्रबन्ध

गुरमति संगीत प्रबन्ध

सिक्ख धर्म में कीर्तन का विशेष महत्व है। इस कीर्तन को शब्द के साथ जोड़ा गया है। शब्द–कीर्तन की इस संयुक्त प्रस्तुति को श्री गुरू गन्थ साहिब की वाणी के अन्तर्गत एक निश्चित प्रबंध का धारणी बनाया गया है। निर्धारित उद्देश्य की पूर्ति निश्चित संगीत प्रबंध अधीन किये जाने वाले गुरूवाणी गायन को ही गुरमति संगीत कहा जाता है।

गुरमति संगीत–प्रबंध और शब्द–कीर्तन का घनिष्ट सम्बन्ध है। इसको अलग नहीं किया जा सकता। डॉ0 देवन्द्र सिंह विद्यार्थी जी के अनुसार, "गुरमति संगीत और कीर्तन का तन और रूह जैसा सम्बन्ध है। गुरमति संगीत का वजूद कीर्तन के व्यावहारिक ढांचे तक सीमित है, उससे बाहर उसकी कोई सीमा नहीं।"[1]

गुरमति संगीत की केन्द्रीय इकाई 'शब्द' है। श्री गुरू नानकदेव जी ने शब्द के संचार के लिये जो माध्यम अपनाया वह संगीत का है। आप जी ने 'खसम की वाणी' का प्रचार लोकाई तक पहुंचाने के लिए कीर्तन को उत्तम समझा और इस कीर्तन के लिए एक विधान सृजा जो श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में संकेतों के रूप में विद्यमान है। यह विभिन्न राग, गायन, शैलियाँ, राहऊ, अंक, धर और विभिन्न संकेत ही गुरमति सगीत विधान की सृजना करते हैं। यह विधिवध शब्द–कीर्तन विधान ही है जो गुरमति संगीत को समस्त भारतीय आध्यात्मिक कीर्तन–परम्पराओं से अलग बनाता है। जिन इकाईयों के साथ मिलकर इस विधान की सृजना हुई है, उनका विशाल रूप में अध्ययन करना अति जरूरी है ताकि गुरमति संगीत प्रबन्ध की सही पहचान हो सके। यह विभिन्न

संगीत संकेतों के रूप में श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में विद्यमान हैं जिनका विस्तार हम नीचे लिखे अनुसार दे रहे हैं।

राग–स्वरूप और राग–प्रबंध

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में दर्ज वाणी के वर्गीकरण और अंकण का प्रमुख आधार 'राग' है। गुरुवाणी के ऊपर राग शीर्षक रूप में अंकित है। कीर्तनकार के लिए राग का यह अंकण उस राग के अधीन शुद्ध गाने का निर्देश है। गुरु साहिबान ने गुरमति संगीत अधीन रागों में शब्द गायन प्रथा को एक पद्धति की तरह से स्थापित किया है। गुरुवाणी के अधीन राग पर विचार करने से पहले राग के विभिन्न पहलूओं पर विचार कर लेना अति जरूरी है।

'राग' शब्द संस्कृत भाषा का है। इसकी रचना 'रंज्' धातु से हुई है जिसका अर्थ है 'प्रसन्न करना'। इस शब्द का सबसे पहले प्रयोग भरत ने अपने ग्रन्थ भरत–कोष (नाट्य शास्त्र) में किया।[2]

महाऋषि भरत ने सप्त ग्राम राग गिनाये हें। उनके प्रयोग के समय भी निर्धारित किये हैं। अन्तर्मुखी स्वरों के प्रयोग से जाती रागों का जन्म भी बताया है। परन्तु रागों के लक्षण नहीं बताये। महालक्ष्मी ने 'ग्राम रागों' को जाति से उत्पन्न बताया है। उन्होंने यह भी कहा कि संसार में जो कुछ भी गाया जाता है वह सभी जातियों के अधीन है। यद्यपि जातियों के अनेक प्रकारों के भेद सम्भव हैं। इसलिए जातियों के क्षेत्र को इतना व्यापक बना दिया है कि उसमें किसी भी राग की रचना हो सकती है।[3]

प्राचीन विद्वान् इस बात पर सहमत है कि राग का विकास प्राचीन जाति–गायन से हुआ है क्योंकि जाति–गायन के प्रमुख दस लक्षण जिनको प्राचीन राग–लक्षण कहा जाता है। यह 'राग' के लक्षण साथ मिलते–जुलते है। इन लक्षणों में अंश का वर्णन करते हुए भरत ने खुद कहा कि राग का जिसमें निवास होता है और जिस स्वर से राग प्रकट होता है, वह अंश स्वर है। जैसे 'राग संतु यस्मिन वसति यसमा चैव प्रवर्तते'।[4]

भरत अनुसार यदि अंतरमुखी स्वरों का प्रयोग अवरोह में हो तब जातियों से 'जाति राग' बनते हैं परन्तु राग की स्पष्ट परिमाषा आठवीं सदी में मुनि मतंग ने की।

"स्वरवर्णविशेषेण् ध्वनि भेदन् वा धुनः।

रजियते येन यः कमदित स रागः संमतः सलामा ।"[5]

वह ध्वनि जो स्वर और वर्ण के साथ शोभित हो और जिससे रंजकता (रस) का अनुभव हो, वह राग है। इस प्रकार 13वीं सदी की परिभाषा भी इस प्रकार है :

"यो यो धवनी विसेसतु स्वर वरण विभूसति ।

रंज को जन चितंग सो राग कथितो वुधोः ।।6

आवाज की वह विशेष रचना जो स्वर ओर वर्णों सहित सुन्दर लगे और जो सुनने वालों को प्रसन्नता दे उसको विद्वान लोग राग कहते हैं। 20वीं सदी की परिभाषाएं इस प्रकार हैं :–

"जो आवाज सुर वर्ण के साथ शोभायमान हो और साथ ही गमक, मूर्च्छना के प्रयोग के साथ–साथ वादी, संवादी अनुवादी, विवादी को ध्यान में रखकर कंठ या साज से पैदा हो उसको राग कहते हैं।"[7]

राग और रागनी इन दोनों को अक्सर राग कहते हैं।

"आवाज की वह विशेष रचना जिसमें स्वर और वर्ण गायन द्वारा सौन्दर्य प्राप्त हो और जो रचना सुनने वालों के मन को प्रसन्न करे उसको राग कहते हैं।"[8]

काव्य में 'राग' को प्रीत और अनुराग के अर्थ दिए जाते हैं और दर्शन में 'राग दिमाग' या 'राग दर्वेश' कहा गया है।

संगीत आचार्य पंडित शारंग देव ने अपने ग्रन्थ 'संगीत रत्नाकर' में राग संबंधी इस तरह उल्लेख किया है "जो स्वर वरण साथ विभूषित विशिष्ट धुन जन–चित को रंजकता प्रदान करती है उसको राग कहते हैं।"[10]

भाई कानसिंह नाभा राग के बारे में लिखते हैं, "संगीत विधि अनुसार जिसके सुनने से मन में राग (प्रेम) उपजे, राग है। राग का मूल षड़ज, रिषभ, गन्धार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद, यह सप्त स्वर है।

राग नाद शब्द सोहने या लागे सहज ध्यान

पच वर्जित करे : संतोखा सात सुरा लै चालो ।

बाजा माणु ताग ताजि ताना पाउन बीग धालै ।

फेरी फेर ना होवै कबली ऐेक शब्दबोध पाले ।।[11]

न भी जे रागी नादी बेदि ।

न भीजै सुरती गियानी जोगि ।।[12]

राग नाद मन दूजै भाए।

अंतर कपट भहा दूख पाहि ।।[13]

राग संगीत की ऐसी शक्ति है जो मनुष्य के मन को अपने विशेष रंग में रंग देती है। राग का गुण इसकी रंजकता है। इसको जनचितरंजन ध्वनि कहा है, जिसका अर्थ है रंग देना। राग आवाज का विशेष कर्म है जो मनुष्य मन को अपनी विशेष स्वर संगतियों द्वारा अपने रंग में रंग लेता है। राग के रंग में रंगा व्यक्ति उस समय और उस स्थान से थोड़ी देर के लिए मुक्त हो जाता है अर्थात् उसमें डूब जाता है। यह राग की अपनी शक्ति है जो मनुष्य मन को भटकने से बचाती है। राग का मूल नाद है। भारतीय परम्परा में नाद की महिमा का खूब वर्णन आया है। नाद को ब्रह्मा रूप कहा है। यह अद्वितीय और आनन्द स्वरूप है जिसकी उपासना से ब्राह्म की प्राप्ति हो जाती है।[14]

श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में रागों का प्रयोग विशेष महत्व रखता है। प्रथम रूप में संपादना की दृष्टि से विभिन्न रागों का विशेष महत्त्व है क्योंकि आदि ग्रन्थ की संपादना का प्रमुख आधार इसका संगीत प्रबंध ही है। आदि ग्रन्थ की सारी वाणी को इन रागों में लिखा गया है। इन रागों में वाणी की तरतीब इस प्रकार है। सबसे पहले गुरू साहिबान की वाणी, और बाद में सन्तों भक्तों, और अन्य वाणीकार की वाणी दर्ज हैं। गुरूवाणी में प्रयुक्त विभिन्न रागों के प्रयोग से हमारे सामने रागों की कुछ किस्में दृष्टिगोचर होती है। इससे पहले की इस पर विचार करें, गुरूवाणी के मुख्य राग और उनके अर्न्तगत आये दूसरे रागों को जान लेना बहुत जरूरी है।

श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में प्रयुक्त राग

गुरमति संगीत का सतोत्र श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी है। श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में राग दो विधियों के साथ दृष्टिगोचर होते हैं :– एक ततकरे अधीन और दूसरा साधारण पाठ के साथ। श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी के ततकरे अनुसार 31 राग मिलते हैं जो मुख्य रागों द्वारा अंकित हैं और श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी के साधारण पाठ अनुसार 31 मुख्य रागों के इलावा और राग भी प्राप्त होते हैं। इससे पहले कि इनके क्रियात्मक स्वरूपों सम्बन्धी विचार करें। गुरूवाणी के मुख्य रागों और उनके अन्तर्गत आए दूसरे रागों सम्बंधी जान लेना अति जरूरी है। इस संबंधी जानकारी इस तरह है :–

क्रमांक	राग का नाम राग प्रकार	पृष्ठ
(श्री गुरू ग्रन्थ साहिब)		
1.	सिरी	14
2.	मांझ	94
3.	गउड़ी	151
	क) गउड़ी गुआरेरी	151
	ख) गउड़ी दरवणी	152
	ग) गउड़ी चेती	154
	घ) गउड़ी वैरागणि	156
	ङ) गउड़ी पूर्वी दीपक	157
	च) गउड़ी पूर्वी	168
	छ) गउड़ी मांझ	172
	ज) गउड़ी मालवा	214
	झ) गउड़ी माला	214
	ञ) गउड़ी सोरठ	330
4.	आसा	347

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में मुख्य रागों और उपरागों के अन्तर्गत मौसमों और विभिन्न

परम्पराओं के साथ सम्बन्धित राग भी मिलते हैं। जिनका उल्लेख हम इस प्रकार भी कर सकते हैं :–

शुद्ध राग

जो राग स्वतन्त्र तौर पर भिन्न होते हैं, जिनमें किसी और राग की छाया दृष्टिगोचर नहीं होती, शुद्ध राग कहलाते हैं। श्री गुरू ग्रन्थ साहब में ततकरे अधीन दर्ज इक्कतीस मुख्य राग हैं जैसे – सिरी, मांझ, गोड़ी, गुजरी, आसा आदि।

छायालग राग

जिन रागों की उत्पत्ति दो रागों के मिश्रण से होती है छायालग राग कहे जाते हैं। जैसे – गउड़ी चेती, गउड़ी दीपकी आदि छायालग राग हैं।

संकीर्ण राग

जिन रागों की उत्पत्ति दो से अधिक रागों के मिश्रण से होती है संकीर्ण कहे जाते हैं। जैसे गुरूवाणी में राग गोड़ी पूर्वी दीपकी संकीर्ण राग है।

दक्षिणी राग

शुद्ध, छायालग तथा संकीर्ण रागों के अतिरिक्त गुरूवाणी में कुछ राग ऐसे भी मिलते हैं जिनके साथ दक्षिणी शब्द का प्रयोग हुआ है। यह राग मुख्य रागों के अधीन मिलते हैं जैसे– गोउड़ी दक्षिणी, वडहंस दक्षिणी, बिलावल दक्षिणी, मारु दक्षिणी, रामकली दक्षिणी, प्रभाती दक्षिणी।[15]

मध्यकाल में भारतीय स़ंगीत विदेशी हमलों के कारण दो पद्धितियों में विभाजित हो चुका था – भारतीय संगीत पद्धति या उत्तरी भारतीय संगीत पद्धति और कर्नाटकी पद्धति या दक्षिणी भारतीय संगीत पद्धति।

श्री गुरू नानक देव जी ने "धुर की वाणी" को लोगों तक पहुंचाने क़े लिए सभी विभिन्न स्थानों का भ्रमण किया जो चार उदासियों के नाम से जाना जाता है। इन उदासियों के अंतर्गत आप दक्षिण भारत भी गए और वहां के आचार, विचार, भाषा और

संगीत का अध्ययन किया । श्री गुरू नानक देव जी ने दक्षिण भारत के रागों को अपनी वाणी के गायन के लिए प्रयोग किया । श्री 'गुरू ग्रन्थ साहिब' में अंकित "दक्षिणी" शब्द संगीत पद्धति का राग सूचक है । परन्तु इन रागों का दक्षिणी पद्धति के राग होने का विद्वानों में मत भेद पाया जाता है ।

'फिरोदकोटी' टीका में दक्षिणी राग न मानते हुए छंद की चाल का नाम माना है। डॉ0 देविंदर सिंह विद्यार्थी के अनुसार "यदि दक्षिणी शब्द महला 1 से पहले आया होता, लेकिन यह आया महला 1 के संकेत के बाद, इसलिए इसको राग का सूचक समझना उचित नहीं।"[16]

लेकिन गुरू ग्रन्थ साहिब में अंकित शीर्षक "रामकली दक्षिणी महला।"[17] इस बात का संकेत है कि यह दक्षिणी पद्धति का राग है।

डॉ0 गुरनाम सिंह जी ने भी अपने शोध प्रबन्ध में इन रागों को दक्षिणी पद्धति का राग स्वीकारा है।[18]

क्रियात्मक तौर पर इन रागों के स्वरूप केवल दक्षिणी संगीत पद्धति में पाये जाते हैं, उत्तरी भारतीय संगीत पद्धति में नहीं। इसलिए इन रागों को दक्षिणी पद्धति के राग मानना ही अधिक उचित है। दक्षिणी पद्धति के रागों का प्रयोग 'श्री गुरू ग्रन्थ साहिब' में केवल श्री गुरू नानक देव जी ने ही किया है। वाणी को रागों के अधीन गाने का निर्देश है। इसलिए गुरमति संगीत परम्परा में उत्तरी और दक्षिणी पद्धति दोनों के रागों को समान सत्कार के साथ गाने का आदेश है। तेरहवीं शताब्दी में पण्डित शारंगदेव जी ने इन दोनों पद्धतियों को मिलाने का प्रयत्न किया लेकिन व्यावहारिक तौर पर सम्भव न हो सका। गुरू साहिबान का दक्षिणी संगीत पद्धति के रागों को अपनी वाणी के गायन में प्रयोग करने से, दोनों संगीत पद्धतियों की दूरी को खत्म करने में, गुरमति संगीत परम्परा का महान योगदान है।

सनातनी राग

गुरू साहिबान ने वाणी की सफल प्रस्तुति के लिए वाणी और राग को उनकी आंतरिक सांझ, रसात्मक और भावात्मक स्तर पर जोड़ने की सफल कोशिश की है। आपने वाणी के गायन के लिए प्रयोग किए गये सनातनी काव्य रूपों के लिए शुद्ध रूप

में मार्गी संगीत के अंतर्गत आने वाले रागों का प्रयोग किया है।

उदाहरण के लिए प्रबन्ध गायन शैली में काव्य रूप अष्टपदी का प्रयोग, सिरी, मांझ, गोउड़ी, गुजरी, रामकली, प्रभाती रागों के अधीन किया गया है।

देसी राग

गुरू साहिबान ने वाणी के संचार और प्रचार को बढ़ाने के लिए, विभिन्न प्रान्तों के लोक परम्परा में विकसित रागों को वाणी के गायन के लिए प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए :– मांझ, आसा, काफी, बिहागड़ा, तिलंग आदि देसी राग 'श्री गुरू ग्रन्थ साहिब' में प्रयोग किए गए हैं।

मौसमी राग

गुरूमत संगीत के अन्तर्गत (ऋतुओं) मौसमों से सम्बन्धित राग भी प्रयोग में मिलते हैं । इन रागों का गायन भी हर मौसम में हर समय गायन करने की आज्ञा है । वाणी का साधारण पाठ करने से ही राग से सम्बन्धित मौसम का आभास हो जाता है । गुरू ग्रन्थ साहिब में लिखित मौसमी राग बसन्त और मल्हार रागों में मौसमों का वर्णन रहता है जैसे :–

माहा माह मुमारखी चड़िआ सदा बसतुं ।।
परफड़ु चित समालि सोई सदा सदा गोबिंदु ।।
रुति आईले सरस बसन्त माही ।
रंगि राते रवहि सि तेरै चाहू ।।[19]

पादटिप्पणियां

1. कीर्तन का जन्म और विकास सिम्रती ग्रन्थ, अद्वति गुरमति संगीत सम्मेलन, 1991, पृ0 20
2. आचार्य वृहस्पति : भारत का संगीत सिंधान, पृ0 199
3. वही
4. भरतकोश : बम्बई अडीशन, पृ0 433

5. मतंग मुनिः बृहददेशी, (संपादक बालकृष्ण गर्ग), संगीत कारालय, हाथरस, पृ0 8
6. सरंगदेव : संगीत रत्नाकर (भाग – दो), पृ0 2
7. टैगोर सुरिन्दर मोहन : गीतांजली, पृ0 10
8. निगम वी0 सिंह : संगीत कौमुदी (भाग प्रथम), पृ0 42
9. आचार्य वृहस्पति : हिन्दी कोश (संपादन कालिका प्रसाद), पृ0 95
10. सरंगदेव : संगीत रत्नाकर (भाग – दो), श्लोक – 2
11. आदि ग्रन्थ, पृ0 849
12. वही, रामकली महला 5, पृ0 885
13. वही, प्रभाती महला 1, पृ0 342
14. चौधरी विमलाकांत राय : संगीतकोश, पृ0 66
15. आदि ग्रन्थ, पृ0 152, 380, 843, 1033, 907, 1343
16. देविन्दर सिंह विद्यार्थी, गुरूवाणी के राग संबोध और सार्थकता, पृ0 43
17. आदि ग्रन्थ, पृ0 1033
18. Gurnam Singh (Dr.) Musicological Study of Guru Nanak Bani , p. 108
19. आदि ग्रन्थ, पृ0



आदि ग्रन्थ का समयानुसार तथा ऋतु अनुसार राग प्रबन्ध

भारतीय संगीत में राग–रागिणियों की प्राण–प्रतिष्ठा ऋतु और कालों के अन्तर्गत की गई है। भारतीय संगीत में कुछ राग ऋतुकालीन माने गये हैं। रागों का सम्बन्ध विशिष्ट समय से भी स्थापित किया गया है। प्रत्येक राग दिवस अथवा रात्रि में अपने निर्धारित समय पर गया जाता है।

शब्दों की लहरों पर अंधकार और प्रकाश का प्रभाव भिन्न–भिन्न पड़ता है । शब्द मंडल में अनेक तरंगें उठती हैं। उनके प्रवाह का रूप भिन्न–भिन्न ऋतुओं और समय में भिन्न–भिन्न होता है। विशेष ऋतु तथा काल में विशिष्ट ध्वनियां, विशिष्ट स्वर–समुदायों से एकता, अनुरूपता, सामंजस्य रखती हैं। संगीत में कुछ स्वर ऐसे होते हैं जिनकी प्रकृति तीक्ष्ण, तेजस्वी, उग्र तथा अग्निमय होती है। रागों में इन स्वरों की प्रधानता या अधिकता होती है। वे अपनी प्रकृति से मेल खाते हुए समय में अर्थात् ग्रीष्म के मासों में गाये जाते हैं।[1]

राग अपने नियत समय पर गाया जाने पर ही अधिक शोभनीय होता है।

यथा काले समारब्धं गीतं गावति रंजकम्
अतः स्वरस्य नियमात् रागेऽपि वनियमः कृता।।

तात्पर्य यह है कि ज़ब यह मान लिया गया है कि अमुक समय में अमुक प्रकार के स्वर अधिक रंजक होते हैं, तब उन स्वरों के अनुसार रागों का समय नियत करना अपने–आप सिद्ध हो जाता है।[2]

इसी नियम के आधार पर गुरमति संगीत में जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त हर अवसर के लिए कीर्तन की विशेष रागमय गायन मर्यादा है।

इसके बिना भिन्न–भिन्न रागों के गान समयानुसार विभिन्न कीर्तन चौकियों की

सम्पादना का प्रचलन इस परम्परा की विशेषता है जिनमें प्रातःकाल आसा की वार की चौकी, आरती की चौकी, कानड़ेया, कलियाणु की चौकी, पिछली रात "तीन प्रहर रात की चौकी, सोदरु की चौकी, आनन्द की चौकी, चरणकंवल की चौकी, बिलावल की चौकी तथा कीर्तन सोहिले की चौकी।

संगीत का समय सिद्धांत और क्रियात्मक स्वरूप तथा इनसे उत्पन्न होने वाली गुणात्मक अभिनव उपज आज की उपलब्धि नहीं है। अपितु इसके वर्तमान सीमित स्वरूप के निर्माण में पांच शताब्दियों का समय लगा है। इसके अन्तर्गत दस गुरू साहिबान, मध्यकालीन आध्यात्मिक चेतना के प्रतिनिधि सन्त भक्त, महान कीर्तनकार एवं सिक्ख भक्तों का विशेष योगदान रहा है।[3]

जिस प्रकार दिवस रात्रि के 24 घंटे या 8 प्रहर होते हैं। उसी प्रकार सब प्रचलित रागों के गाने की व्यवस्था आठ भागों में की गई है।

गुरू ग्रन्थ साहिब में प्रयुक्त 31 रागों के गाने की व्यवस्था भी दिन–रात के 8 प्रहरों में की गई है।

रागों का समय चक

संगीत के दिन रात[4]

जो राग दोपहर के बारह बजे से रात के 12 बजे तक गाये जाते हैं उन्हें पूर्व राग कहा जाता है। रात्रि के 12 बजे से दिन के 12 बजे तक गाए जाने वाले रागों को उत्तर राग कहा जाता है।

जब हम गुरू ग्रन्थ साहिब में रची गई वाणी के ऊपर दृष्टि डालते हैं तो यही पाते हैं कि समस्त वाणी को उसके अनुकूल अवसर पर ही गाया बजाया जाता है।

गुरुवाणी का प्रथम राग श्री है। इसका समय सायंकाल है। संध्याकाल के समय सारे दिन के थके हुए मन को आराम की जरूरत होती है (रागा बिच श्री राग है, जो सच धरे पिआर)।

गुरू ग्रन्थ साहिब में प्रयुक्त इस शब्द से ही मालूम पड़ता है कि दिन भर की थकान के उपरान्त राग श्री में निबद्ध इस शब्द का उच्चारण करके मन को शान्ति मिलती है और दिन भर की थकी इन्द्रियां तृप्त, और शान्त हो जाती हैं। बुझा हुआ चित

मानों फिर से हरा–भरा हो जाता है।

इस शब्द के गायन से ऐसा मालूम पड़ता है कि मानों शाम (संध्या) की उपासना हो रही है।

जब आंधी और तूफानों के आक्रमणों से वृक्ष के पत्ते झड़ जाते हैं, खिले हुए फूल मुरझा कर गिर जाते हैं, मानव हृदय में उदासीनता का भास होता है और वह 'श्री' राग का गायन कर मन को धैर्य प्रदान करता है। इसे हेमन्त ऋतु कहते हैं।

भारतीय धार्मिक धारणा के अनुसारं राग का सृजन शंकर जी ने किया, शिव तथा शक्ति इन दोनों के योग से राग उत्पन्न हुए। पंचानन महादेव जी के पांच मुखों से पांच राग उत्पन्न हुए। महादेव जी ने जब नाट्य शुरू किया तब उनके

1. 'सद्योवक्त्र' नामक मुख से 'श्री राग'
2. वामदेव मुख से 'बसन्त'
3. अघोर मुख से 'भैरव'
4. तत्पुरुष मुख से 'पंचम'
5. ऐरान मुख से 'मेघराग'
6. नृत्य के प्रसंग में पार्वती जी के मुख से छटा और अन्तिम नटनारायण राग उत्पन्न हुए।[5]

'श्री राग' को प्रमुख 6 रागों में से एक पहला राग माना गया है। इसीलिए गुरू ग्रन्थ साहिब में भी इस राग को प्रथम स्थान दिया गया है।

सन्धया काल में चित को प्रसन्न करने वाले श्रृंगारिक भावनाओं से युक्त रागों का गायन किया जाता है। श्री राग भी श्रृंगाररस प्रधान राग है और सायकालीन राग है।

सुणि मन मित्र पिआरिआ मिलु वेला है एह।। 1 ।।
जब लगु जो बनि सासु है तब लगु इहु तनु देह ।।6

आदि ग्रन्थ में एक भी पंक्ति ऐसी प्राप्त नहीं होती जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि शब्दों के ऊपर जो राग लिखे गए हैं उन्हीं में गुरू जी ने कीर्तन किया अथवा उन्हीं में गुरू जी ने कीर्तन करने का आदेश दिया। परम्परा भी इस कथन की

पुष्टि करती है। यदि ऐसा कोई आदेश होता तो जैसे सिक्खों ने वाणी को अपरिवर्तित रूप में सम्भाल कर रखा। वैसे कीर्तन की धुनों और रागों को भी सुरक्षित रखा जाता। एक ओर तो शीर्षक से ऐसा प्रतीत होता है कि 'आसा दी वार' आसा राग में गानी चाहिए किन्तु दूसरी ओर ऐसा भी लगता है कि लोक धूनि टूंडे असराजे में ही इस वार को गाना चाहिए। यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह धूनि आसा राग से मिलती जुलती होगी। किन्तु यह भी हो सकता है कि वारों के ऊपर धुनिया छटे गुरू जी ने बाद में अंकित की। आज परम्परा यह है कि एक लोकगाथा को दूसरी लोकगाथा की धुन में भी गाते हैं। जैसे पंजाबी की एक लोकगाथा मिर्जा है और दूसरी दुल्ला भट्टी है। दुल्ले की लोकगाथा को मिर्जा की एक धुन में भी गाया जाता है। तब यह कहा जाता है कि दुल्ला मिर्जे के ढंग के ऊपर गाया जा रहा है। ऐसा लगता है कि आसा राग के अन्तर्गत आने के कारण इस वार को 'आसा दी वार' कहा गया है। इस वार के छन्द पौढ़ी और छक्के आदि को 'आसा राग' में गाने की प्रथा भी रही होगी और इसे टुंडे की धुनि में भी गाते होंगे। वार के अन्तर्गत शब्द भी गाए जाते हैं। इन्हें किसी भी राग अथवा शैली में गा सकते हैं। इस कारण 'आसा राग' को गुरू जी का प्रिय राग कहना अनुचित है। गुरू जी तो यह कहते थे कि जिस राग में परमात्मा की भक्ति को गाया जा सके वह राग कीर्तन में प्रयुक्त होने चाहिए।

गुरू जी इतने बड़े शास्त्रीय गायक थे कि मिश्रित रागों की रचना कर सकते थे। वह ऐसे सिक्ख कीर्तनकार उत्पन्न करना चाहते थे जो केवल रागबद्ध कीर्तन करें किन्तु दूसरी ओर वारों पर लोकगाथाओं की धुनियों को भी अंकित किया गया है। आदि ग्रन्थ में जिन रागों के साथ कोई उपशीर्षक दिया गया है। उन्हें राग अनुक्रमणिका में कोई स्थान नहीं दिया गया। इसलिए उन्हें राग मान लेना अनुचित है। अनुमान के आधार पर ऐसे उपशीर्षकों को मिश्रित राग कहना अनुचित है। ऐसे मिश्रित राग सिक्ख कीर्तनकारों को आज दिन तक भी याद नहीं।

1. गोड़ी – गुआरेरी
2. गोड़ी दक्षिणी
3. गोड़ी बैरागणी
4. गौड़ी पूर्वी दीपकी
5. गौड़ी दीपकी

गोड़ी माला को राग कहना कठिन है। क्योंकि आदि ग्रन्थ में शब्द दक्षिणी नहीं है अपितु दरवणे है। जिसका अर्थ दक्षिणी नहीं है। कैसी विचित्र बात है कि कर्नाटकी संगीत पद्धति के रागों की सूची में इन रागों के नाम तक नहीं मिलते और प्रकृति की विडम्बना देखिए कि कर्नाटक वाले तो अपने लोक संगीत की धुनों में से राग विकसित नहीं कर पाए और थोड़े दिनों में ही पंजाब से आकर गुरू जी ने ऐसा मन्त्र फूंका कि वह लोक धुनें राग बन गई। गुरू जी के बाद इन रागों को न तो कोई पंजाब में गा सका न दक्षिण में।

गुरू अर्जुनदेव जी ने गुरू ग्रन्थ साहिब में रागों को समय के अनुसार पांच कोटियों में विभाजित करते हुए उन्हें कीर्तन की पांच चौकियों का नाम दिया। इनमें से दो चौकियां, "आसा दी वार" सूर्योदय से पहले की और सोदरु सूर्यास्त के बाद का, करतारपुर में गुरू नानक देव जी के समय से ही परम्परागत रूप में चली आ रही थी।

1. 'आसा दी वार' की चौकी

इसका समय अमृत वेला है जो रात्रि के करीब दो बजे से आरम्भ होता है। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित राग आते हैं :

1. आसा
2. सोरठ
3. रामकली
4. भैरवी
5. प्रभाती
6. गौड़ी
7. देवगन्धारी आदि

राग सोरठ सामान्यत : रात में गाया जाता है परन्तु 'आसा दी वार' की चौकी में इस राग में कुछ शब्द गाये जाने की प्रथा है।

आनंद की चौकी

'आसा दी वार' के कीर्तन के पश्चात् एक लम्बा 'शब्द' राग रामकली में गाया जाता है जो कि "आनन्द साहिब" के नाम से प्रसिद्ध है। इसका समय छः बजे से 9

बजे तक का है। राग 'रामकली' के अतिरिक्त इसे निम्नलिखित रागों में भी गाया जा सकता है :–

1. गुजरी
2. तोड़ी
3. सूही
4. तुखारी
5. बिलावल इत्यादि

चरणकमल की चौकी या बिलावल की चौकी

इसे बिलावल की चौकी के नाम से भी जाना जाता है क्योंकि इसमें पाँच शब्द राग 'बिलावल' में गाये जाते हैं और इसके पश्चात् दिन में गाये जाने वाले वो अन्य राग गाये जाते हैं। इसका समय दिन के दस बजे से दोपहर तीन बजे तक है। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित राग आते हैं :–

1. बिलावल
2. तोड़ी
3. गुजरी
4. देवगन्धारी
5. सूही
6. सारंग
7. बडहंस
8. बसन्त
9. माली गौरा
10. मांझ

'राग बसन्त' बसन्त ऋतु में दिन अथवा रात के किसी भी प्रहर में गाया जा सकता है।

सौदरु की चौकी

इसका समय सूर्यास्त है अर्थात् संध्या के चार बजे से सात बजे तक का समय जिसे हिन्दोस्तानी संगीत में 'सन्धि–प्रकाश' कहा जाता है। इसके लिए निम्नलिखित राग निर्धारित किए गए हैं :–

1. धनासिरी
2. जैतसिरी
3. बैरारी
4. मारु
5. आसा आदि

राग मारु अधिकतर अन्त्येष्टि क्रिया के अवसर पर गाया जाता है ।

सुख आसन या कल्याण की चौकी

इसका समय सूर्यास्त के पश्चात् प्रायः सात बजे संध्या से आरम्भ होता है। इसमें सबसे पहले राग कल्याण और राग कान्हड़ा के शब्द गाये जाते हैं। इसके पश्चात् अन्य रागों के शब्द गाये जाते हैं और अन्त में "साहिला" का पाठ किया जाता है। इस चौकी में निम्नलिखित राग निर्धारित हैं :–

1. कल्याण, 2. कान्हड़ा, 3. बिहागड़ा, 4. सोरठ, 5. तिलंग, 6. नटनारायण, 7. केदार, 8. मल्हार, 9. जयजयवन्ती , 10. आसा आदि

मल्हार राग को वर्षा ऋतु में दिन के समय भी बिना प्रहर बन्धन के गाए जाने का निर्देश दिया गया है।

ऊपर दी गई चौकियों से हमें यह ज्ञात होता है कि राग आसा तीन चौकियों में गाया जाता है। 'आसा दी वार', 'सोदरु' और 'सुख आसन' इसलिए यह कहा जा सकता है कि गुरू अर्जुनदेव जी ने इस राग को सर्वकालिक राग माना है। अर्थात् इस राग का गायन बिना किसी समय बन्धन के किया जाता है। जिस प्रकार उत्तर भारतीय संगीत पद्धति में प्रातः कालीन राग होते हुए भी भैरवी राग को सर्वकालिक मानने की प्रथा है। आसा की स्थिति भी इसी प्रकार की गई है।

गुरू अर्जुनदेव जी को ही सिक्ख रागियों की प्रथा आरम्भ करने का श्रेय प्राप्त है।[7]

आदि ग्रन्थ में रागों के समय सिद्धान्त पर एक भी शब्द नहीं मिलता। यह विषय अभी अनुसन्धान का है कि गुरूओं के समय रागों के समय सिद्धान्त की क्या परिस्थिति थी किन्तु पिछले दो सौ वर्षों में सिक्ख कीर्तन में इस सिद्धान्त का कोई महत्व नहीं रहा। आज के समय सिद्धान्त में भी यह कहा जाता है कि सम्राट और भगवान की संगीत सभा में रागों को किसी भी समय प्रस्तुत किया जा सकता है। आसा राग को सर्वकालिक कहना, बसन्त को बहार का और मल्हार को वर्षा का ऋतु–प्रधान राग मानना तथा सोरठ को सायंकालीन सन्धि–प्रकाश राग कहना निराधार है, एक ओर तो यह कहना की गुरू जी द्वारा प्रयुक्त किए गए रागों के स्वर अब तक नहीं बदले और दूसरी ओर इन रागों की तुलना भारतीय रागों से निराले ढंग पर करना तथा इस तुलनात्मक अध्ययन का मानदण्ड विशुद्ध संगीत के सिद्धान्तों को स्वीकार करना भला कैसे तर्कसंगत हो सकता है।[8]

सिक्ख गुरूओं ने अपने समय अनुसार कीर्तन को राग संगीत में गाया किन्तु कीर्तन को निर्धारित रागों में करने का कोई आदेश जारी नहीं किया।

यदि गुरूओं ने वारों को लोक किस्सों की धुनियों में गाया तो आज के रागी यदि हीर की धुन में कीर्तन करते हैं। तो अनुसन्धान करता को आपत्ति क्यों होती है? यह निस्संदेह ओर निर्विवाद सत्य है किं यदि संगत को (श्रोता को) हीर की धुन पर आध ाारित कीर्तन के बोलों की अपेक्षा हीर की धुन की प्रबलता के कारण हीर के बोल सुनाई देते हैं और उसका मन एकाग्र होने की अपेक्षा विचलित हो उठता है तो यह अवश्य अनुचित है। गुरूओं ने तो जीवन से उदाहरण लेकर मानव मात्र को सीधे रास्ते पर डालने के हेतु वाणी की रचना की और इसे प्रचलित धुनों में जो लोगों की भली–भांति कंठस्थ थी में गाया।[9]



मध्यकाल के संगीत के ऐतिहासिक विकास में सिख गुरूओं का योगदान

अन्य कलाओं के समान संगीत कला का आरम्भ भी भारत के अति प्राचीनकाल में हुआ। प्राचीन दंत कथाओं के अनुसार तब संगीत का विकास गंधर्व द्वारा हुआ। इसी कारण ही इसको गंधर्व विद्या या गंधर्व वेद भी कहा जाता है।[1]

मध्य युग से पहले संगीत अपनी चर्म सीमा पर था। मध्य युग के राजा कला प्रेमी थे। उन्होंने ललितकला के विकास में पूरा–पूरा ध्यान दिया। खुद भी राजा लोग कलाओं का अभ्यास करते थे। यह भी नहीं इससे भी पहले पूर्व प्राचीनकाल के गुप्तवंशी राजा समुद्रगुप्त के इलाहाबाद वाले शिलालेखों से यह जानकारी मिलती है कि वह खुद एक प्रवीण गायक थे जिसने तुंबर को भी नीचा दिखा दिया था।[2]

समुद्रगुप्त के कुछ इस तरह के सिक्के भी मिले हैं जिनमें उसको बजाते हुए अंकित किया गया है।

प्राचीन संस्कृत साहित्य में कितने ही ऐसे प्रमाण मिलते हैं जिनसे यह पता लगता है कि राजाओं की छत्रछाया में संगीत का विकास हुआ।[3]

ईसा की छटी और सातवीं शताब्दी से लेकर 12वीं सदी तक संगीत की उन्नति विशेष रूप में हुई। नृत्य का तो सामाजिक जीवन में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान था। स्त्रियों को विशेष रूप में नृत्य की शिक्षा दी जाती थी। 'हर्षचरित्र' ग्रन्थ से पता लगता है कि राजश्री को नृत्य शिक्षा देने के लिए नियुक्त किया गया था। खुद हर्ष की रत्नावली में रानी के द्वारा संगीत के तीन अंगों के सिखलाने के प्रबंध का वर्णन मिलता है। हर्ष के समय में "नाटयशाला" और "रंगमंच" होने का भी वर्णन उपलब्ध होता है।[4]

लगभग 12वीं सदी तक मुस्लमानों की तरफ से भारत में हमले होते रहे। मुस्लिम हमलों ने भारती संस्कृति को एक नवीन रुख प्रदान किया जिसके नतीजे में भारतीय

संगीत को जहाँ विशेष मुश्किल का सामना करना पड़ा वहाँ मुस्लिम संस्कृति के प्रभाव से भारतीय संगीत में बहुत परिवर्तन आए। मध्यकाल का यह समय इतिहासकारों ने खिलजी काल से ओरंगजेब के राजकाल तक स्वीकार किया है। इस समय के संगीतिक विकास को हम अलग–अलग कालों में बाँटते हैं।

खिलजी काल में संगीत (1290–1320 ई0)

खिलजी काल 1290–1320 तक के समय को माना जाता है। अलाउद्दीन खिलजी संगीत का प्रेमी था। उसने भारतीय संगीत के प्रचार के लिए बढ़ा योगदान पाया। उसके दरबार में फारसी कवि और मशहूर संगीतकार अमीर खुसरो जैसे कलाकार थे। अलाउद्दीन खिलजी ने भारती संगीत को फारसी संगीत के साथ मिला कर नवीन रूप का सिर्जना की तरफ कदम बढ़ाये। अमीर खुसरो ने कव्वाली को प्रचार में लाया और कई आधुनिक रागों का प्रचलन किया, जिनमें जिल्फ, साज्गिरी, सरपदा मुख्य है।[5]

13वीं सदी के मुस्लमान इतिहासकारों ने लिखा है कि सन् 1294 में ढाका पर अलाउद्दीन ने हमला किया और 1310ई0 में मुगल सेनापति मलिक काफूर द्वारा दक्षिण पर विजय प्राप्त की। उस समय भारती संगीत की उन्नति की अवस्था इतनी थी कि सभी संगीतकारों और हिन्दु गुरूओं को शाही सेनाओं के साथ उत्तर में ला कर बसाया गया।[6]

इनमें गोपाल नायक भी संगीतकार थे। इसको पीलू, सारंग, बडहंस, बिरम आदि रागों का अविष्कारक मानते हैं।[7]

गोपाल नायक ने दिल्ली में रह कर 'चतुरदंडी' संप्रदाय का प्रचलन किया। इसमें आलाप 'स्थाई' गीत और प्रबंध चार आधार थे। नायक बैजु ने भी अपने एक प्रसिद्धध्रुपद में गोपाल नायक 'चतुरदंडी' 'सम्प्रदाय' का प्रर्वतक माना है।

विद्या सोई भलि जोन साथी हो रे लाल रंगमहल में कोउ जुहि बैठे रीझ मिगन दईमाल। सात गुप्त, सात प्रकट, चारों डाड़ी बाध आए नायक गोपाल। बैजु 'कहे गए ते भुलि गए, सप्त सुर पिंगिलों पाहन बुड़े ताल।[8]

मध्यकाल में अलाउद्दीन खिलजी के दरबार में गोपाल नायक संगीत का अच्छा आचार्य हुआ है। कला प्रेमी अलाउद्दीन खिलजी के दरबार में गोपाल नायक को दक्षिण भारत की दास प्रथा के अनुसार खरीद कर लाया था। डा0 शामसुन्दर ने गोपाल नायक को कवि के रूप में स्वीकार किया।[9]

खिलजी के दरबार में संगीत सम्बन्धी समारोह भी करवाए जाते थे जिसमें गायिकाएं और नर्तकियां भी अपने गायन और नृत्य द्वारा श्रोताओं को प्रसन्न करती थीं। राजदरबार में संगीत मुकाबले भी होते थे जिनमें गोपाल नायक और अमीर खुसरो प्रतियोगिता काफी चर्चित है। इसी काल में कव्वाली, गजल, कौल और ध्रुपद का भी बहुत प्रचार हुआ। मुस्लमान फकीर निजामुद्धीन औलिया भी इसी काल में हुए जो कव्वाली गायन के बेहद शौकीन थे।[10]

तुगलक काल (1316 से 1388 तक)

तुगलक काल 'ग्यासुद्धीन तुगलक' के काल से आरम्भ होता है जो 1316 से लेकर 1388 तक था। इस सदी में तीन सुल्तान ग्यासुद्धीन तुगलक (1320–25),मुहम्मद तुगलक (1325–51), फिरोजशाह तुगलक (1351–88) हुए। इस काल में संगीत का प्रचार श्रृंगारिक रूप में केवल मनोरंजन के लिए किया जाता था। मुहम्मद तुगलक के दरबार में 1200 गायक थे जो संगीत को गाते और सिखाते थे।[11]

उमेश जोशी के अनुसार इस काल के संगीत को राज्य में स्थान नहीं मिल सका पर फिर भी दरबारी समागमों में संगीत का प्रयोग किया जाता था।[12]

फिरोजशाह तुगलक संगीत के विकास में काफी दिलचस्पी रखता था। सुरीली आवाज में गाने वाले गवैयों की टोलियाँ हर शुक्रवार को उसके दरबार में हाज़िर होती थी। और बहुत उत्कृष्ट संगीत द्वारा श्रोताओं को खुश करके भारी इनाम प्राप्त करती थीं।[13]

सारे मध्यकालीन युग में संगीत राजाओं, सन्तों और आम जनता को प्रसन्न करने का साधन बना रहा। इस काल में मुस्लिम प्रभावों के फलस्वरूप सरल, लघु तालों में गजल, कव्वाली, दादरा आदि गीतों की लोकप्रिय रचनाएँ हुई।[14]

लोधी काल का संगीत (1488–1517)

मध्यकाल में सिकन्दर लोधी के राज्यकाल का समय 1488 से लेकर 1517 ई0 माना जाता है। सिकन्दर लोधी के दरबार में कलाकारों के प्रतियोगिता हेतु उनको दरबार में स्थान दिया जाता था। क्योंकि बादशाह को संगीत कला का गहरा ज्ञान था। मीरा सईद, नूर ऊला सईद, सईद इबूल रसूल और मियाँ तुहान जैसे महान् संगीतकार थे जिनसे बड़े–बड़े ब्राह्मण संगीत शिक्षा लेते थे।[15]

बादशाह लोधी समयानुसार अलग–अलग रागों को सुना करते थे और उनके राजदरबार में अलग–अलग साज बजाने वाले कई संगीतकार थे।

रात का एक पहर (हिस्सा) बीत जाने के बाद शाहनाई बजाने वाले व्यक्ति आ जाते थे और बारी–बारी कल्याण, कानड़ा हुसैनी राग बजाते थे।[16]

'तारीखे दाऊदी' के अनुसार सिकन्दर लोधी का मन पसन्द राग केदार, अड़ाना, रामकली, हुसैनी थे। सिकन्दर लोधी का संगीत के प्रति प्रेम के कारण ही बहुत सारे संगीतकार इकट्ठे हो गए। सिकन्दर लोधी जहाँ संगीत सुनने के शौकीन था, वहाँ रागों का ज्ञाता भी था। उसके राज दरबार में संगीतकारों का भरपूर आदर भी किया जाता था। इस काल में कव्वाली, गजल, ख्याल ठुमरी गायन शैलियाँ प्रचलित हुई और समूह गायन को समाज में आदरपूर्ण स्थान दिया गया। सामूहिक गायन की लहर के कारण बड़े आकार के डोल, आदि वाद्य का निर्माण हुआ।[17]

इस काल का आरम्भ बाबर बादशाह के नाम के साथ होता है। बाबर 30 अप्रेल, 1526ई0 को दिल्ली के तख्त पर बैठा। वह संगीतकला का गहरा ज्ञाता (पहचान करने वाला) था। उसके दरबार में हमेशा ही संगीत गोष्ठियां होती रहती थीं। जिसमें संगीत कला को प्रमुख स्थान प्राप्त था। बाबर संगीत प्रेमी बादशाह था। वह संगीत कला में निपुण था और संगीतकारों का सत्कार भी करता था। जब बाबर ने भारत पर हमला किया तब वह अपने साथ संगीतकारों को भी लाया था। पानीपत लड़ाई में उसका युद्ध संगीत बड़ा प्रभावशाली था। वह भारतीय संगीत से अलग था। बाबर जहाँ एक महान् योद्धा था, वहीं उच्चकोटि का संगीतकार भी था। उसके दरबार में उच्चकोटि के कलाकार और महान् संगीतकार रहते थे, जिनमें ख्वाजा अब्दुला, सैखी, शाह कुली

(गिटार वादक) हुसैन ऊदी (बरबत वादक) गुलाम शादी (गायक) मीर अजु (गायक) बनाई (गायक) मुख्य थे।[18]

कुले मुहम्मद ऊदी ने बरवत में तीन तारों का बढ़ावा किया था। वह आरम्भिक राग अच्छे ढंग के साथ बजा लेता था। कुले मुहम्मद के अलावा सैखी नाई बड़ा संगीतकार था और उसने संगीत रचनायें भी की। शाह कुले ने अनेक धुनों और रागों का अविष्कार किया। गुलाम शादी और बनाई ने लोकप्रिय ग्रगों और धुनों का अविष्कार किया।[19]

मुगल काल से पहले भारतीय संगीत का विकास जारी था। परन्तु इस काल में हमें भारतीय संगीत के दोनों रूप साथ-साथ विकसित होते मिलते हैं। भक्ति लहर में अलग-अलग संतों भक्तों ने अपनी रची वाणी को संगीत बद्ध करके गाया और अपनी विचारधारा का आम लोगों में प्रचार किया। दक्षिण भारत में 3 संतों ने संकीर्तन धारा का प्रवाह चलाया। रामानुज द्वारा स्थापित कीर्तन परम्परा को उत्तरी भारत में रामानंद ने पूर्ण तौर से विकसित किया। इस परम्परा में संगीत द्वारा प्रभु भक्ति और मोक्ष प्राप्ति की बात की जाती थी। एक तरफ से धार्मिक कीर्तन द्वारा जनता को संगीत की तरफ प्रेरित किया जा रहा था, दूसरे तरफ ख्याल और कव्वालियों द्वारा एक नवीन प्रकार का संगीत विकसित हो रहा था। वास्तव में मुगल-काल का पहला पड़ाव संगीत के लिए महत्त्वपूर्ण था। इस काल में अनेक संगीत रत्न शास्त्रकार पैदा हुए जिन्होंने भारतीय संगीत के विकास में अपना-अपना योगदान दिया।

मुगल काल में ही बाबर के समय गुरू नानक देव जी द्वारा सिख धर्म की स्थापना हुई। पंजाब में यह धर्म उत्पन्न हुआ। वाणी और संगीत इसके प्रचार माध्यम थे। गुरू साहिब के आने तक भारतीय संगीत का विकास काफी हो चुका था। गुरू नानक देव जी ने आध्यात्मिक सभ्याचार और संगीत परिवर्तन का गहरा अध्ययन किया। भक्ति संगीत का प्रचार लगातार बढ़ रहा था। भक्ति संगीत परम्परा के संतों-भक्तों और सूफी, फकीरों की वाणी संगीत के साथ संजोई हुई थी और आम लोगों में इसका प्रचार बढ़ रहा था। गुरू साहिब ने इसे भक्ति संगीत की धारा को विकसित करने के लिए एक नवीन दिशा प्रदान की। श्री गुरू नानक देव जी ने जगत को तारने के लिए वाणी और संगीत को माध्यम बनाया। उन्होंने 'मार्गी' और 'देशी' संगीत के सुमेल के साथ एक

नवीन संगीत परम्परा की स्थापना की। इस विशेष पद्धति का स्वरूप, संगीत प्रबंध, प्रचलित गायन शैलियाँ और कुछ नवीन रागों के ऊपर आधारित था। भारतीय संगीत की बुनियादी विशेषताएँ और मौलिक संगीत विधान की धारणा गुरू नानक द्वारा चलाई गई, यह संगीत परम्परा गुरूमत संगीत के रूप में विकसित हुई। गुरू नानक देव जी ने संगीत के असली और वैदिक रूप को शोधकर फिर से उजागर किया।[20]

अपनी सारी रचनाओं को रागों में उच्चारित करके (गाकर) संगीत वाणी द्वारा संसार को सत्य का मार्ग दिखलाया।[21]

गुरू नानक देव जी को संगीत का ज्ञान दैवी सम्पदा के रूप में प्राप्त हुआ।[22] क्योंकि जब भी वह "धुर की वाणी" इलाही वाणी आती तब गुरू जी उसका गायन आनंद के द्वारा करते थे। इसलिए उन्होंने जितनी भी वाणी रची, सभी को निर्धारित रागों में रागों के समय अनुसार गया। गुरू साहिब के साथ रबाब वादन की संगत भाई मरदाने जी करते थे। 'इक बाबा अकाल रूप दुजा रबाबी मरदाना।।'[23]

गुरूदेव जी ने व्यक्तिगत गायन के साथ–साथ समूहिक गायन को भी प्राथमिकता दी। सारी संगत का मिलकर गायन करना इस परम्परा को बनाए रखने का उत्तम साधन रहे। गुरू नानक देव जी ने 976 शब्दों की रचना 26 रागों में की जो साहिब श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में दर्ज है। उन्होंने मार्गी और देशी संगीत का सम्मिश्रण करके नई संगीत पद्धति को प्रभु भक्ति का मुख्य साधन बनाया।[24]

गुरू साहिब ने क्रियात्मक रूप में उत्तरी और दक्षिण पद्धति के रागों का प्रयोग किया। आपने अनेक गायन शैलियों और कवि रूपों का सदुपयोग किया जो पंजाबी साहित्य और भारतीय संगीत का उत्तम नमूना है। गुरू जी ने सबसे पहले श्री राग उच्चारा परन्तु उनका सबसे प्रिय "राग आसा जी" था। इसलिए आसा राग में उन्होंने "आसा की वार" नामक लोभी कविता गाई। जिसकी मर्यादा को संगीत के माध्यम से लोगों तक पहुँचाया।[25]

अर्थात् गुरूवाणी का संगीतक महत्त्व द्वारा प्रचार किया। गुरू साहिब ने धार्मिक और कलात्मक तौर पर भारतीय संगीत की सुरक्षा की।[26]

गुरू नानक देव जी के आगमन तक मार्गी संगीत और देशी संगीत अलग–अलग धाराओं में प्रचलित थे और यह दोनों धाराएँ दिनो–दिन अलग–अलग हो रही थीं। इन

दोनों धाराओं में एकता लाने में गुरू साहिब ने इन दोनों संगीत रूप की अलग–अलग गायन शैलियों का प्रयोग किया। गुरूमति संगीत पद्धति के सारे विधान का अपना शास्त्र है, जिस में भारतीय संगीत की कुछ प्रचलित संगीत शैलियों का प्रयोग किया है। जबकि इन गायन शैलियों और गायन शैलियों की तरह नाम अंकित नहीं किये गये। परन्तु सारी वाणी में भारतीय संगीत की शैलियों के काव्य रूप मौजूद मिलते हें। समूह पदे ध्रुपद गायन शैली पर आधारित है। गुरू साहिब का मुख्य उपदेश जन–साधारण तक आध्यात्मिक मंडलो के रहस्यों को पहुँचाना और जीवन के बारे में सिखलाना था। गुरू साहिब ने अपने उपदेश को लोगों तक संचारित करने के लिए उनके मन–पसन्द काव्य–रूपों और गायन–रैलियां गाना और जीवन के बारे में सिखलाना था। गुरू साहिब ने अपने उपदेश को लोगों तक संचारित करने के लिए उनके मन–पसन्द काव्य–रूपों और गायन–शैलियों का विशेष नियमों अनुसार प्रयोग किया। लोक काव्य रूपों की अनेक गायन शैलियों को उनके संबधित रागों के शीर्षक अधीन अंकित किया। लोक धुनों से विकसित हुये आसा, बडहंस, तुखारी , मांझ जैसे रोगों को उन घोडियों और बारामाह जैसे लोक काव्य–रूपों में प्रयोग किया। इन लोक काव्य रूपों में विशेष धुन और खास संगीत विधान है। इस परम्परा का विकास उनके सेवकों द्वारा हुआ उनके सेवकों में से ही उनके उत्तराधिकारी बने। इसलिए उपयुक्त विचारों को मुख्य रखते हुए हम यह कह सकते हैं कि मुगल काल में भारतीय संगीत के विकास में गुरूमति संगीत का एक विशेष स्थान था जिस को गुरू नानक देव जी ने विकसित किया।

हमायुँ के काल में संगीत

बाबर की मौत के बाद दिल्ली के तख्त का मालिक हमायुँ बना। हमायुँ को संगीत प्रेम अपने पिता से विरासत में प्राप्त हुआ। गायन वादन के साथ हमायुँ को बेहद प्यार था। वह एक महान् संगीतकार था और संगीत को इतना ध्यान से सुनता था कि उनकी गहराइयों में डूब जाता था।[27]

उसने अपने दरबार में उच्चकोटि के गायक और वादक रखे हुए थे जिनसे वह बुद्धवार को गायन सुनता था और उनके मनोरथ पूरे करता था। हमायुँ के दरबार में 29 गायक और वादक थे जिन्होंने भारतीय संगीत के इतिहास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।[28]

1535ई0 में माड़ो पर अधिकार किया। उस समय गायक बैजू एक मुस्लमान के हाथों बंधी हो गए। हमायुँ के एक सिपाही ने उसको पहचान कर उसकी रक्षा की। बैजू हमायुँ की शरण में आया तो हमायुँ ने उसका गायन सुन कर प्रजा के ऊपर कत्लेआम करना बंद कर दिया और कहा कि बैजु जिन बंदियों को छुड़ाना चाहे छुड़ा लाये। इस प्रकार बैजु कुछ दिन हमायुँ की शरण में रहा। मौका मिलने पर वापिस चला गया। हमायुँ बहुत दुखी हुआ और कहा कि यदि हमारी सेवा में रहता तो वह सुलतान बहादुर को भूल जाता।[29]

हमायुँ ने अपने लोगों को तीन श्रेणियों में बाँटा हुआ था। जिसमें विद्वान और पवित्र लोगों के अहिल–ऐ–सादात कहते थे। दूसरी श्रेणी में शाही घराने के लोग और राज के ऊँचे मुलाजिम आते । जिन को 'अहिल–ऐ–दौलत' कहते थे। तीसरी श्रेणी में संगीतकार और गवैये (गायक) आते थे जो निरोल बादशाह की सरप्रस्ती ऊपर निर्भर करते थे। उनको 'अहिल–ऐ–तरब' अर्थात् संगीतकार कहलाना चाहिए था।[30]

इससे स्पष्ट होता है कि मुगल काल के समय भारतीय संगीत का विकास बढ़ता गया। हमायुँ ने इस में बड़ा योगदान दिया।

मुगल काल में संगीत तीन हिस्सों में बाँटा गया। दरबारी संगीत में गायन शैलियाँ का प्रचार हुआ। दरबारी संगीत में संगीतकार को वेतन के इलावा इनाम और उपाधियाँ देकर रखा जाता था। मुगल राज में दरबारी संगीत ने शास्त्रीय संगीत की गायन शैलियों में उन्नति तो लायी, परन्तु उनका विषय निरोल श्रृंगार रस और विनोदी भावनाओं के साथ संबंधित हो गया जिसके फलस्वरूप दरबारी संगीत साधारण लोगों की नजरों में गिर गया।

मुगलकाल में दूसरी धारा लोक संगीत थी। इसके प्रचलन की दो विधियाँ थी। साधारण जनता अपने जीवन के अलग–अलग अवसरों पर संगीत का प्रयोग करते थे। यह लोक गायक अलग–अलग अवसरों पर संगीत का प्रयोग करते थे। यह लोक गायक अलग–अलग मेलों, त्योहारों और लोक समागमों पर लोक संगीत प्रस्तुत किया करते थे। साधारण लोक जन्म से लेकर मौत तक के गीतों का प्रयोग करते थे। पुरुष और स्त्रियाँ भी लोकगीतों में भाग लेती थी। इस तरह इस समय लोक–संगीत का काफी प्रचार था। समूचे रूप में हम कह सकते हैं कि लोक–संगीत भारतीय संगीत की

एक मुख्य धारा की तरह से निरंतर प्रवाह अधीन मुगल काल के समय विकसत हो रही थी। इस का रूप शास्त्रीय संगीत की जगह बढ़कर सार्थक था।

गुरू अंगद देव जी

गुरू अंगददेव जी मुगल काल समय हमायुँ बादशाह के समकालीन हुए हैं जिन्होंने गुरू नानक देव जी द्वारा चलाई गई कीर्तन–परम्परा को मुगल राज दरबार के समय पूर्ण:रूप में विकसित किया। गुरू साहिब के सिख धर्म को परम्परा अनुसार संगीत को प्रज्जवलित रखा। उन्होंने गुरू साहिब द्वारा चलाई गई गुरूमति–संगीत की परम्परा का अनुकरण नहीं किया बल्कि आप रागों में वाणी भर कर भारतीय संगीत में गुरूमति संगीत का महत्त्वपूर्ण स्थान निश्चित किया। गुरू साहिब द्वारा रचित वाणी जो कि गुरू ग्रन्थ साहिब मे श्लोकों के रूप में दर्ज है, जो कि गिनती में 62 हैं। गुरू साहिब ने पंजाबी और गुरमुखी लिपि को प्रचार में लाया और गुरू नानक देव जी के जीवन वृतांत भाई बाला से सुन कर सखियों की सम्पादना की।[31]

आप के दरबार में भाई सता और बलवंत के पुत्र भाई सहिजाद, भाई सदू, भाई मदू नामक रबाबी कीर्तन करते थे।[32]

इस तरह गुरू अंगददेव जी की चलाई हुई इस कीर्तन–परम्परा को गुरू अमरदास जी ने भी पूर्ण तौर पर अपनाया।

अकबर–काल

मुगल काल में अकबर का काल 1556ई0 के लगभग माना जाता है। अकबर के समय शास्त्रीय संगीत ने बहुत तरक्की की। भारत में पहले से प्रचलित हिन्दू कलास्किल संगीत उच्चे पद तक पहुँचा हुआ था और अरबी या इरानी संगीत से बढ़कर श्रेष्ट था। अकबर ने इन दोनों में तालमेल बनाने का यत्न किया। अकबर का संगीत के प्रति ज्ञान बहुत सारे मशहूर संगीतकारों से बढ़कर गहरा था। उसने धुनीभाई हिन्दू संगीत लाल कलावंत से सिखा था जिसने हिन्दू भाषा की सभी आवाजों और स्वरों का उसको ज्ञान दिया था।[33]

बादशाह अकबर के दरबार में 36 महान् संगीतकार नियुक्त थे जिनमें मियां तानसेन, बाज बहादुर, सुलतान हुसैन खां 'शरकी' बैजू बावरा आदि मुख्य थे। अकबर

के समय स्वामी हरिदास, सूरदास, तुलसीदास, मीरा बाई जैसे उच्चे गायक–गायिकाएं भी हुए। गुरू अमरदास भी अकबर के समकालीन थे।[34]

अकबर ने अपने राज्यकाल के आरम्भ में ही तानसेन को रीवा से अपने पास बुला लिया था और अपने दरबार में उसको महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। अकबर के दरबार में एक अन्य प्रसिद्ध संगीतकार बाबा हरिदास थे जो कि तानसेन से दूसरे दर्जे पर आता था। अकबर के दरबार में और भी कई प्रसिद्ध संगीतकार थे। आईन–ऐ–अकबरी में 36 ऐसे गवेयै (गायकों) के नाम लिखे हैं जिनको वह पहले दर्जे का गवैया समझता था।[35]

अकबर के दरबार में तीन परम्पराओं के साथ सम्बन्धित कलाकार थे। पहली परम्परा राग रागनी वर्गीकरण को मानती थी। दूसरे वर्ग के कलाकार ईरानी मुकाम पद्धति के साथ सम्बन्धित थे और तीसरे वर्ग के कलाकारों का गायन संगीत रत्नाकर के ऊपर आधारित था। तानसेन अपने समय का प्रसिद्ध संगीतकार था जिसने नये रागों की खोज की।[36]

अकबर के दरबार में कई नये रागों की रचना हुई। तानसेन ने मियां की मल्हार, रामदास ने रामदासी मल्हार, सूरदास ने सूरदास मल्हार, घोथु ने घोथु मल्हार आदि नये रागों को भारतीय संगीत में जन्म दिया।[37]

इस काल में एक तरफ ख्याल गायन शैली का प्रचार था और दूसरी तरफ ध्रुपद गायकी का प्रचार शिखर पर था। अकबर की इस कला में दिलचस्पी और सरप्रस्तंल के कारण साजों और स्वरों ने संगीत में बहुत उन्नति की। अकबर के समय शास्त्रीय गायन के प्रचार के लिए शास्त्रीय वादन का प्रचार भी था। वीर मंडल खां, महान सुर मंडल वादक और कासिम जिस ने रबाब और कुबज के साथ मेल खाते एक साज की खोज की। बादशाह के दरबार में कई साजों का प्रयोग किया जाता था। जैसे–कुबर्गा, सुरन, नाफिर, बीन, किंन, सुरबीन, रबाब, सुर मंडल, सारंगी परवावज आदि।[38]

इस प्रकार अकबर बादशाह के काल में भारतीय संगीत का विकास विकसित रूप में हुआ। अकबर के काल को संगीत का स्वर्ण युग कहना उचित होगा क्योंकि कला में गुरूमति संगीत ने भी विकसित रूप में तरक्की की। गुरू अमरदास जैसे गुरूजनों ने गुरूमति संगीत में अपना भरपूर योगदान डाला । कई नए साज और राग रचे गये। अर्थात् हम यह भी कह सकते हैं कि इस बादशाह के काल में गुरमति संगीत को विशेष

स्थान हासिल हुआ जिसने भारतीय संगीत के विकास में बहुत गहरा योगदान पाकर अपनी परम्परा को विकसित किया।

गुरू अमरदास जी

गुरू अमरदास जी और गुरू रामदास जी अकबर के समकालीन थे। गुरू अमरदास जी ने पहले गुरूओं से चलाई गई कीर्तन परम्परा को मुगल काल के राज–दरबार के समय दूर–दूर तक फैलायां और कीर्तन की परम्परा को जारी रखा। गुरू साहिब से रची वाणी जो कि गुरू ग्रन्थ साहिब में दर्ज है। उसकी रचनाकाल 72 वर्ष की आयु से लेकर 90 वर्ष तक का है। इसकी श्रेष्ठता और रागों सम्बंधी विवरण से पता चलता है कि आप पहले भी संगीतबद्ध काव्य रचना करते थे।[39]

आप की रामकली में उच्चारण की गई वाणी 'आनन्द साहिब" बहुत प्रसिद्ध है। गुरू अमरदास जी ने विवाह और मौत के अवसरों पर कीर्तन करने का आदेश दिया। अपने पूर्ववर्ती गुरू साहिबों की वाणी और अपनी वाणी को संकलित करके अपने पौत्रे सैहसराम से दो भागों में लिपीबद्ध करवाया।[40]

आपने 17 रागों में 107 शब्दों की रचना की। श्रृंगार रस भावों की वाणी के लिए उन्होंने सुही राग का प्रयोग किया। मौसमों के चित्रण के लिए गुरू साहब ने मल्हार और बसन्त रागों का प्रयोग किया। उनकी वाणी रचना से हमें यह भली भन्ति जानकारी मिलती है कि वह गुरूवाणी की रचना समय उनके संगीत के साथ सही सुमेल से पूर्ण रूप में सुनते थे। आप जी के राग गुजरी, सुही, रामकली और मारु राग में से राग गुजरी और रामकली विशेष है।[41]

गुरू साहिब जी ने सरिंदा नामक साज की धार निकाली। इस तरह गुरू नानक देव जी की चलाई हुई कीर्तन परम्परा को गुरू अमरदास जी ने प्रयोग में रखा ओर उसमें नवीनता भी लायी।

गुरू रामदास जी

गुरू रामदास जी भी मुगल बादशाह अकबर के समकालीन थे। इन्होंने गुरू नानक देव जी द्वारा चलाई गई गुरूवाणी कीर्तन प्रणाली को कायम ही नहीं रखा बल्कि

कई नवीन सम्भावनाओं को उजागर भी किया। गुरू रामदास जी संगीत और काव्य–कला में असाधारण प्रतिभा के मालिक थे। आपने आपको "टाडी हों टाडी हरि खसम का, हरि के दर आया।[42] कहकर इस बात का प्रमाण देते हैं कि वह संगीत के महत्त्व से चेतन थे। गुरू साहिब ने 30 रागों में 679 शब्दों का उच्चारण किया।[43]

गुरू रामदास जी ने काव्य रचना में लोक–काव्य को प्रयोग में लाया जैसे :– वनारा, कराले, घोड़ियां, लावाँ का प्रयोग किया। गुरू साहिब जी के दरबार में सुबह शाम कीर्तन का प्रवाह चलता था। इन दीवानों में गुरू नानक, गुरू अंगद और गुरू अमरदास जी की वाणी का कीर्तन होता था। गुरू रामदास जी की वाणी में लोक संगीत और शास्त्रीय संगीत का सुमेल दृष्टिगोचर होता है। लोकसंगीत के अन्तर्गत वार और छंद आप की प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। आसा की वार में गाये जाने वाले छंद गुरू रामदास जी ने रचे। गुरू रामदास जी ने पहली बार पड़ताल नामक शास्त्रीय गायन शैली का प्रयोग किया। गुरू साहिब ने 7 रागों मे 19 पड़तालों की रचना करके भारतीय संगीत के विकास में गुरमत संगीत का विशेष स्थान स्थापित है।

जहाँगीर काल (1605–1627)

जहाँगीर काल का समय 1605 से लेकर 1627 ई0 माना जाता है। जहाँगीर संगीत में गहरी जानकारी रखता था। उसके राजगद्धी पर बैठते समय तक गुरू ग़द्धी की मालकियत गुरू अर्जुन देव जी के हाथ में थी। गुरू 'ग्रन्थ साहिब' जी की 'बीड़ साहब' बन चुकी थी। सारी वाणी की तरतीब रागों के अधीन निश्चित रूप ले चुकी थी और अमृतसर सिखों का पूजा और संगठन का केन्द्र बन चुका था।

जहाँगीर के दरबार में विलास खाँ, हन्तर खाँ खुरमदाद,परवेजदाद शामिल थे। बादशाह जहाँगीर ने संगीतकारों का गायन सुनने के लिए कुछ समय निश्चित किया हुआ था। एक अंग्रेजी यात्री विलियम इंच जो जहाँगीर के समय आगरे आया था, लिखता है कि बादशाह ने अपने कुशल संगीतकारों को सात टोलियों में बाँटा हुआ था जिनमें हर एक टोली हर हफ्ते के एक दिन के लिए मनोरंजन का प्रोग्राम करती थी।[44]

गुरू अर्जुनदेव जी

गुरू अर्जुनदेव जी ने अपने से पहले हुए गुरू साहिबों की वाणी और परम्परा का कठिन अध्ययन किया। वहाँ गुरूमति कीर्तन को इस काल में उत्तम स्थान दिया और एक नई दिशा प्रदान की। जब आप के दरबार में भाई सत्ता ओर बलवन्त ने कीर्तन करने से मना कर दिया तब अर्जुन देव जी ने खुद सिंरदा हाथ में पकड़ कर कीर्तन किया और संगत को कीर्तन के लिए प्रेरित किया।[45]

यही समय था जब कीर्तन सिख रवाबिबियों से साधारण सिख संगत में आया। "आसा की वार" का सम्पूर्ण गायन भी इसी काल में हुआ। इस वाणी में गुरू नानक देव जी की खोज, गुरू अंगद देवजी के श्लोक, गुरू रामदास जी के छंद, गायन का संयुक्त रूप धारण करते हैं। यह वाणी का गायन सिख संगतों में सुबह के समय होता था।[46]

गुरू ग्रन्थ साहिब में 30 रागों में 2218 शब्द गुरू अर्जुनदेव जी द्वारा रचित हैं। गुरू साहिब जी के दरबार में झांझु मांद, कंदारा, गुरूवाणी का कीर्तन करते थे। ताल के लिए मृदंग का प्रयोग होता था। लिखित पोथियाँ ताल मृदंग रवाब बजावै।[47]

मुगल काल के इस काल में गुरू साहिबों द्वारा स्थापित की गई गुरूमति संगीत पद्धित ने अपनी एक विशेष जगह बनाई और इस कीर्तन प्रणाली को और भी विकसित किया। गुरू साहिब की इस काल में सबसे महत्त्वपूर्ण देन ग्रन्थ साहिब था। गुरू साहिब ने "आदि बीड"की संपादना करके अध्यात्मिक जगत को ही नहीं बल्कि भारतीय संगीत जगत को भी महान देन है।

गुरू हरगोबिंद सिंह जी

गुरू हरगोबिंद सिंह जी भी जहाँगीर बादशाह के समकालीन थे। आपने सिख धर्म में वीरता का प्रवेश करवाया। गुरू हरगोबिन्द साहिब जी ने राजनीतिक झमेलों के बावजूद भी पहले गुरू साहिबों की वाणी का गायन करने की परम्परा को उसी तरह उजागर किया क्योंकि वह एक महान गीत ज्ञाता थे। उन्होंने बेशक वाणी नहीं उचारी परन्तु उन्होंने गुरू ग्रन्थ साहिब में दर्ज 9 वारों सम्बंधी लोक धुनों के बारे में सूचनाएँ लिखी।[48]

गुरू साहिब के दरबार में भाई बाबक, भाई छबीला भाई अब्दुल्ला, भाई बनबाली और परशुराम जी महान् संगीतकार थे।[49]

शाहजहाँ काल (1628–1658)

शाहजहाँ का समय 1627 से 1658ई0 दौरान माना जाता है। इस काल में संगीत अपनी ऊँचाईयों पर कायम था। शाहजहाँ संगीतकारों को बढ़ावा देते थे। वह खुद भी एक प्रवीण संगीतकार था और कई बार प्रसिद्ध संगीतकार के साथ मिलकर संगीत में हिस्सा लेता था। उसके दरबार में बड़े मशहूर गायक रहते थे। जिनमें जगननाथ, रामदास, सुख सैन, सुरसैन शामिल थे। शाहजहाँ के दरबार संगीत में कई तरह के साज कुछ गज के साथ बजने वाले कई उंगलियों के साथ और कई मुँह के साथ बजाने वाले साज प्रचलित थे जैसे वीणा, सरोद, रबाब, सारंगी, दिलरूबा, परवावज, तबला, बीन, बांसुरी आदि। जैसे–जैसे संगीत काल ने तरक्की की उसी तरह यह साज भी उन्नति की ओर बढ़ने लगे। और इनकी गिनती बढ़ती गई।[50]

1630ई0 में लाल खाँ को शाहजहाँ ने 'गुण समुद्र खाँ' की उपाधी दी थी।[51] जगन नाथ लाल खाँ, रामदास चाँदी के साथ तोले गए।[52] खुशहाल खाँ और बिसराम खाँ तोड़ी का गायन करने में माहिर थे। शाहजहाँ ने अपने समय में प्रचलित ध्रुपद का संग्रह करवाया। कई ध्रुपदों में शाहजहाँ का नाम भी मिलता है।

गुरू हरिराय और हरि कृष्ण जी

गुरु हरिराय और हरि कृष्ण जी बादशाह शाहजहाँ के समकालीन थे। उन्होंने वाणी तो नहीं उच्चारी परन्तु गुरुनानक देव जी की चलाई हुई गुरूमति कीर्तन प्रणाली को विकसित करने के लिए ऊँचे आचारण वाले सिखों को कई स्थानों पर भेजा ज़िन्होंने भगवान फेरू गोड़ा के नाम वर्णन योग है।[53]

इन्होंने गुरू साहिब की कीर्तन परम्परा को देश विदेश में विकसित किया। गुरु हरि गोबिन्द साहिब भी राम उच्चारी वाणी का कीर्तन श्रवण करते थे।[54] सदीवी और अमर स्नेहा सदा के लिए लिख दिया।

गुरूमत संगीत का इतिहास मुगल दरबार के दरबारी सगीत के सामान्तर

समकालीन रूप में उजागर होता है। संगीत जगत में "बाबर के " और "बाबे के" दो प्रमुख संगीत घराने की धाराएँ प्रचलित रही हैं। गुरू बाबे नानक के दरबारी रबाब रागी मुगल बादशाह के दरबारी संगीतकारों से हमेशा ही अपने आपको ऊँचा गिनते रहे हैं।[55]

इसी तरह ही मुगल बादशाह ओरंगजेब ने 8–9 साल पहले संगीत का खूब आनन्द माना। उसके दरबार में विस्राम खाँ रसबैन खाँ ने खुशहाल खाँ को 'गुण समुद्र खाँ' और कृपा को मृदरा राम की उपाधि के साथ सम्मानित किया।[56]

ओरंगजेब काल (1658–1707)

शाहजहाँ के बाद ओरंगजेब राज गद्दी पर बैठा। मुगल बादशाह ओरंगजेब द्वारा संगीत के ऊपर पाबंदी हुई। ओरंगजेब मुगल साम्राज्य के नष्ट होने के कारण राग रंग के विलासी रुचियों को मानता था। अजीब इत्फाक है कि तलवार के जोर से स्थापित मुगल साम्राज्य का पतन राग रंग की विलासिता संग मस्त होकर रह गया, पर गुरू नानक देव जी की इलाही वाणी और रबाब की मधुर छनकार (संगीत/गुरूमत संगीत) ने अपने सिखधर्म के दसमें बादशाह की तलवार तक का सफर किया। और इस तलवार ने खालसे के जन्म द्वारा जोर जुल्म का नाश सत्य का प्रकाश किया।

गुरू तेगबहादुर साहिब जी

गुरू तेगबहादुर जी और गुरू गोबिन्द सिंह जी बादशाह ओरंगजेब के समकालीन थे। गुरू तेगबहादुर जी का भारतीय संगीत में महत्त्वपूर्ण स्थान है। गुरू अर्जुनदेव जी के बाद उनकी वाणी गुरू ग्रन्थ साहब जी में दर्ज है। गुरू तेगबहादुर जी की समूची वाणी में विलक्षणता और मौलिकता दृष्टिगोचर होती है। गुरू साहिब ने 16 रागों में 118 शब्दों की रचना की जिसमें गुरू जी की संगीतिक सूझ और अध्यात्मिक पवित्रता का प्रमाण है। गुरू साहिब की वाणी में अकाल जोत के साथ लीन हो जाने का उपदेश है। संगीतिक साहित्य को संगीतिक वातावरण प्रदान करने के लिए एक महत्त्वपूर्ण देन है। गुरू जी के 59 शब्द, 57 श्लोक गुरू ग्रन्थ साहिब में दर्ज है। जैजैवन्ती राग सिर्फ गुरू तेग बहादुर जीने ही उच्चारा है किसी भक्त ने भी इस राग का जिक्र नहीं किया।[57]

गुरू साहिब के संगीत उस्तादों में बाबक, रबाबी, नथा और अब्दुला टाड़ी को माना जाता है।[58]

गुरू जी को सिंदरा बजाने का इतना शौक था कि यात्रा के समय भी उसको साथ रखते थे।[59]

इस तरह मुगल काल के भारतीय संगीत के विकास मे गुरू तेग बहादुर जी ने पहले गुरू साहिबों की चलाई हुई गुरूमति संगीत पद्धति को विशेष प्रधानता देकर भारतीय संगीत के विकास में एक बड़ा योगदान पाया। इस कीर्तन परम्परा को क्रियात्मक तौर पर सुरक्षित ही नहीं रखा बल्कि निजी योगदान द्वारा प्रचलित भी किया।

गुरू गोबिन्द सिंह जी

गुरू गोबिन्द सिंह भी बादशाह औरंगजेब के समकालीन थे। गुरू साहिब को साहित्य और कला के क्षेत्र में बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त था। 42 वर्षों की आयु में आपने अनेकों कठिनाईयों का सामना करते हुये भारतीय संगीत और साहित्य को नई दिशा प्रदान की। गुरू गोबिन्द सिंह जी को संगीत का गहरा अध्ययन था। वह ना केवल ब्रज भाषा, फारसी, हिन्दी के महान् कवि थे बल्कि संगीत के भी अच्छे ज्ञाता थे। भारती संगीत के क्षेत्र में गुरू जी को बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।[60]

गुरू साहिब ने दसमें ग्रन्थ की रचना की जिस में शब्द हजारे पारस नाथ अवतार के पद भी गायन की दृष्टि के साथ उपयुक्त है और इन पर केवल नाम अंकित है। यह पद रागों में रचित है – परज, सोरठ, सूही, रामकली, धनासरी, सारंग, तिलंग, केदारा, देवगन्धारी, कल्याण , मारु, भैरव, गोरी , काफी अड़ाना, बसन्त आदि।[61]

गुरू जी की वाणी मे प्रयोग संगीतज्ञ शब्द इस बात का प्रतक्ष प्रमाण है कि आप जी को केवल संगीत का ज्ञान ही नहीं था बल्कि संगीत का बहुत ही गहरा अध्ययन था।[62]

गुरू गोबिन्द सिंह जी ने अकाल पुरख को बड़ा संगीतकार माना है और जाप साहिब में 'नमों तान ताने' उचारा, भाव कि, तानों के विस्तार करने वाले को नमस्कार।

गुरू साहिब की भारतीय संगीत को अद्वितीय देन यह है कि इन्होंने ख्याल शैली का आविष्कार किया। भारतीय संगीत में इसको ख्याल गायन कहते हैं। इसलिए भारती संगीत में ख्याल शैली का प्रयोग गुरू गोबिन्द सिंह जी ने किया। भारतीय संगीत ने

गुरू साहिब का पहला ख्याल निम्नलिखित है – मित्र पिया रे नुहाल मुरीदां का कहिना।[63]

जिसके आधार पर मुहम्मद शाह के दरबारी गायन सदारंग (1719–1748ई0) ने ख्याल गीतों की रचना की। गुरू साहिब के दरबार में बहुत सारे संगीतकार ओर वादक भी थे। जो रबाब के साथ कीर्तन करते थे।[64]

इस काल में तबला मध्यम वीणा, पखाबज, सरिंदा आदि साज प्रयोग होते थे। इस प्रकार गुरू साहिबों ने समकालीन संगीत परम्परा को ग्रहण भी किया और उनको विकसित रूप में नवीनता प्रदान की।[65]

आखिर में हम कह सकते हैं कि राग क्रिया के माध्यम से संगीत की साधना के साथ सिख धर्म की ईश्वर उपासना पूर्ण होती है। सिख गुरू साहिबों ने संगीत को दरबारी वासनाओं से निकालकर भक्ति भावना की तरफ ले जाकर समाज के प्रति उपकार किया और उसके साथ भारतीय संगीत का निखरा हुआ रूप हमारे सामने आया। गायन और वादन कला कीर्तन के रूप में आज भी गुरूद्वारों में प्रतिष्ठित है।[66]

भारतीय संगीत के इतिहासिक विकास से स्पष्ट है कि इस सारी (समस्त) संगीत परम्परा में गुरुमति संगीत का स्वतन्त्र स्थान स्पष्ट रूप में उजागर होता रहा है। जबकि गुरुमति संगीत को मध्यकालीन धार्मिक संगीत की विभिन्न परम्पराओं सम्बन्धी अध्ययन करने से इस के स्वतन्त्र और विलक्षण पहचान स्पष्ट हो जाती है। भारतीय संगीत ने समस्त भारतीय संगीत को जो एक विशाल गौरव प्रदान किया है। वह वर्णनयोग्य है। बाबर से लेकर औरंगजेब तक का समय भारतीय शास्त्रीय संगीत के लिए विशेष महत्व रखता है जिसमें भारतीय संगीत में अनेक परिवर्तन आये हैं। इन परिवर्तनों में भारतीय संगीत ने कई उतराव–चढ़ाव देखे हैं। जैसे – अकबर का सुनहरी संगीतक काल और औरंगजेब की संगीत प्रति सख्त पाबंधी, मान और कमाल जैसी बात यह है कि इस समय गुरुमति संगीत ने अपने विलक्षण इतिहास का सृजन किया और सिद्धान्तक और व्यवहारिक तौर पर इसको स्थापित किया है इसलिए गुरुमति संगीत को भारतीय संगीत के इतिहासिक विकास में स्वतन्त्र स्थान प्राप्त है।

पाद–टिप्पणियां

1. Radha Krishan (Dr.). The Culture Heritage of India (Part–III) p. 566-68
2. V.Smith : Early History of India (IV Edition)] p.305
3. दिनेश चन्द्र, गुप्ता (डा0) भक्तिकालीन काव्य में राग और रस, पृ0 9
4. वहीए पृ0 91
5. उमेश जोशी , भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0 170
6. Tagore, S.M. Universal History of Music, p. 56-57
7. निगम, विक्रम दिव्य सिंह, सगबीत कसौटी (भाग पहला), पृ0 17
8. विचित्र सिंह , भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0 25
9. दिनेश चन्द्र गुप्ता(डा0), भक्तिकालीन काव्य में राग और रस,पृ0 181
10. शर्मा योगेन्द्र पाल विचित्र सिंह, भारतीय संगीत का विकास, पृ0 38
11. आचार्य बृहस्पति, मुस्लमान और भारतीय संगीत, पृ0 60
12. उमेश जोशी , भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0 214
13. भक्त सिंह मध्यकालीन भारत की संस्थाएँ, पृ0 281
14. डॉ0 अरुण कुमार सेन , भारती तालों का शास्त्रीय विवेचन, पृ0 125
15. आचार्य बृहस्पति, मुस्लमान और भारतीय संगीत, पृ0 62
16. वही, पृ0 62
17. डॉ0 अरुण कुमार सेन , भारती तालों का शास्त्रीय विवेचन, पृ0 26
18. आचार्य बृहस्पति, मुस्लमान और भारतीय संगीत, पृ0 70
19. वही, पृ0 70
20. गुरूमति प्रकाश, अक्तूबर 1991, पृ0 7
21. तारा सिंह (प्रो0), वादन कला, पृ0 270

22. गीता पेतल, पंजाब की संगीत परम्परा, पृ0 11
23. बारां, भाई गुरूदास, पृ0 23
24. तारा सिंह (प्रो0), वादन कला, पृ0 272
25. गीता पेतल, पंजाब की संगीत परम्परा, पृ0 114
26. वही, पृ0 117
27. उमेश जोशी , भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0 225
28. आचार्य बृहस्पति, मुस्लमान और भारतीय संगीत, पृ0 71
29. वही, पृ0 71
30. भगत सिंह, मध्यकालीन भारत की संस्थाऐं, पृ0 282
31. गोकल चंद नारंग, सिख मत का परिवर्तन , पृ0 17
32. गीता पेतल, पंजाब की संगीत परम्परा, पृ0 118
33. भगत सिंह, मध्यकालीन भारत की संस्थाऐं, पृ0 282
34. गुरू अमरदास के संगीत बारे :खोज पत्रिका–1976,अंक–14,पृ0 187
35. भगत सिंह, मध्यकालीन भारत की संस्थाऐं, पृ0 282
36. विकमादित्य सिंह, संगीत कमोदी (भाग पहला), पृ0 34
37. वही, पृ0 35
38. Tagore, S.M. Universal History of Music, p. 56-57
39. जागीर सिंह (डा0) सिख गुरू साहिबन की वाणी ओर संगीत का सबंध, पृ0 41
40. गीता पेतल, पंजाब की संगीत परम्परा, पृ0 119
41. जागीर सिंह (डा0) सिख गुरू साहिबन की वाणी ओर संगीत का सबंध, पृ0 9
42. आदि ग्रन्थ, पृ0 91

43. जागीर सिंह (डा0) सिख गुरू साहिबन की वाणी ओर संगीत का सबंध, पृ0 42
44. भगत सिंह, मध्यकालीन भारत की संस्थाऐं, पृ0 284
45. योगेन्द्रपाल शर्मा, विचित्र सिंह, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0198–99
46. वही, पृ0 198
47. वार –6, भाई गुरूदास जी, पृ0 12
48 सरैण सिंह विलखु, आदि ग्रन्थ के परम्परागत ततों का अध्ययन, पृ0–22
49. तारा सिंह (प्रो0), वादन कला, पृ0 283
50. भगत सिंह, मध्यकालीन भारत की संस्थाऐं, पृ0 284
51. आचार्य बृहस्पति, संगीत चिंतामणि, पृ0 288
52. शांति गोवर्धन संगीत शास्त्र दर्पण (भाग पहला), पृ0 138
53. तारा सिंह (प्रो0), वादन कला, पृ0 284
54. गीता पेतल, पंजाब की संगीत परम्परा, पृ0 127
55. विस्भवनाद, जवदी कला, लुधियाना, 1993 भूमिका
56. आचार्य बृहस्पति, संगीत चिंतामणि, पृ0 288
57. जागीर सिंह (डा0) सिख गुरू साहिबन की वाणी ओर संगीत का सबंध, पृ0 46
58. गुरूमति प्रकाश, दिसम्बर 1975, पृ0 145
59. जागीर सिंह (डा0) सिख गुरू साहिबन की वाणी ओर संगीत का सबंध, पृ0 46
60. तारा सिंह (प्रो0), वादन कला, पृ0 286
61. गीता पेंटल, पंजाब की संगीत परम्परा, पृ0 130
62. तारा सिंह (प्रो0), वादन कला, पृ0 287
63. आदि ग्रन्थ–566, ख्याल यातशाही, पृ0 10

64. गीता पेंटल, पंजाब की संगीत परम्परा, पृ0 132

65. दर्शन सिंह नरुला, गुरू साहिबान की समकालीन भारतीय संगीत परम्परा (लेख), अद्वितीय गुरुमति संगीत सम्मेलन 1991, पृ0 6

66. गीता पेंटल, पंजाब की संगीत परम्परा, पृ0 32



बारहवीं से सतारहवीं शताब्दी तक के भक्त एवं सन्त कवियों की रचनाएं

गुरू ग्रन्थ साहिब के अन्तर्गत गुरु साहिबान, रबाबियों, वटों और गुरूओं के अतिरिक्त बारहवीं शताब्दी से लेकर सतारहवीं शताब्दी तक के पंदरहां (15) भक्त कवियों की रचनाओं को भी स्थान मिला है। उनके नाम और वाणी का विवरण इस प्रकार है :–

भक्त कवियों के नाम	शब्दों की संख्या
1. कबीर	541
2. नामदेव	60
3. रविदास	41
4. फरीद	139
5. तरलोचन	4
6. धन्ना	4
7. वेणी	3
8. जयदेव	2
9. भीखन	2
10. सैन	1
11. पीपा	1
12. सदना	1
13. रामानंद	1

14. परमानंद 1

15. सूरदास एक शब्द और एक पंक्ति

गुरू ग्रन्थ साहिब मे आप सबकी वाणी उपरोक्त कमानुसार लिखित है।

सूरदास जी के नाम के नीचे एक शब्द सारंग राग में मिलता है जो गुरू अर्जुन देव जी ने शोध कर लिखा है उसका शीर्षक है :–

सारंग महला – 5 सूरदास ।।

यह शब्द इस प्रकार है :–

हरि के संग बसे हरि लोक ।।
मनु तनु अरपि सरबसु सबु अरपिओ
अनद सहज धुनि झोक ।। 1 ।। रहाउ ।।
दरसनु पेखि पए निरबिखई पाए है सगले थोक ।।
आन बसतु सिउ काजु न कछूऐ सुन्दर बदन अलोक ।।1।।
सिआम सुन्दर तजि आन जु चाहत जिउ कुसटी तनि जोक ।।
सूरदास मनु प्रभि हथि लीनो दीनो इहु परलोक ।। 2 ।। 8 ।।

इस शब्द के अतिरिक्त एक और पंक्ति सारंग राग में मिलती है जो इस प्रकार है :–

छड़ि मन हरि बिमुखन को संगु ।।

गुरू साहिबान के पास सारे वाणीकारों की वाणी थी जो भिन्न–भिन्न रागों में थीं। आपने सब की वाणी को पहले रागानुसार कर लिया जिस प्रकार राग सिरि में रचित गुरू साहिबान और सारे भक्तों की वाणी एक जगह इकट्ठी की, फिर मांझ राग में रचित सारी वाणी एक जगह इकट्ठी कर ली। इसी प्रकार बाकी की सारी रचनाओं को भी इसी प्रकार से इकट्ठा कर लिया। हर राग में महला 1, महला 2, महला 3, महला 4, फिर महला 5, फिर महला 9 और फिर महला 10 की वाणी रखी।

इनके बाद भक्तों की वाणी रखी। हर राग में यह क्रम इसी तरह से कायम है। कहीं भी यह नहीं हुआ कि वाणीकारों को आगे पीछे कर दिया जाए। गुरू साहिबान की

वाणी के पश्चात् जब भक्तों की वाणी आरम्भ होती है तब वहाँ शीर्षक आता है :

"वाणी भक्ता की ।"

डॉ0 महिन्दर कौर गिल के अनुसार भक्तों की वाणी को गुरु ग्रन्थ साहिब में निम्नलिखित क्रम से दर्ज किया गया है :–

1. कबीर, 2. नामदेव, 3. रविदास, 4. रामानंद, 5. जयदेव, 6. तरलोचन, 7. धन्ना, 8. सेन, 9. पीपा, 10. भीखन, 11. सधना, 12. परमानंद, 13. सूरदास, 14. बेणी, 15. शेख फरीद।

कबीर जी की वाणी सभी रागों में सबसे पहले स्थान पर रखी गई है। दूसरे स्थान पर रामानंद जी का नाम आया है।

रामानंद जी का एक शब्द :–

कत जाईए रे घर लागो रंगु ।।
मेरा चितु न चलै मनु भइओ पंगु ।।1।। रहाउ।।
इसके बाद नामदेव जी की वाणी आई है :
साहिबु संकटवै सेवकु भजै ।।
चिंरकाल न जीवै दोऊ कुल लजै ।।1।।

इन दोनों भक्त कवियों की वाणी के ऊपर भक्त कबीर की वाणी सबसे पहले आई है।[1]

माता जूठी पिता भी जूठा जठे ही फल लागे ।।
आवहि जूठे जाहि भी जूठे जूठे मरहि अभागे ।।1।।

चौथे स्थान पर लिखी सूची के अनुसार रविदास जी का नाम आया है लेकिन राग मारु में रविदास से पहले जयदेव की वाणी आई है।

राग मारु वाणी जयदेव जी की।[2]
चंद सत भेदिआ नाद सत पूरिआ
सूर सत खोड़सा दतु कीआ ।।

इसके पश्चात् रविदास जी की वाणी आई है[3]

ऐसी लाल तुझ बिनु कउनु करै ।।

गरीब निवाजु गुसईआ मेरा माथै छत्रु धरै ।।1।। रहाउ ।।

इसलिए चौथे स्थान पर जयदेव जी का नाम आया है। पांचवां तरलोचन, छटा वेणी, सातवां रविदास, आठवां सेन, नौंवा पीपा, दसवां धन्ना, ग्यारहवां भीखन, बारहवां सधना, तेरहवां परमानंद, चौदहवां सूरदास और पन्दरहवां स्थान शेख फरीद भक्त कवियों का है। यह कम भी कहीं-कहीं टूटा है जैसे भक्त तरलोचन की वाणी राग सिरी में भक्त रविदास की वाणी से पहले आई है और धनाश्री राग में रविदास जी के बाद वाणी लिखी गई है। इस प्रकार भक्त वेणी जी की वाणी 'सिरी' राग में रविदास जी की वाणी से पहले दर्ज है और रामकली राग में रविदास की वाणी के बाद आई है। जयदेव जी का पद गुज्जरी राग में भक्त रविदास जी की वाणी के बाद आया है और मारु राग में पहले आया है।

जिस प्रकार गुरु साहिब ने गुरूओं की वाणी के ऊपर वाणीकार की पहचान के लिए महला शब्द लिखकर कमानुसार स्थान लिख दिया है। उसी प्रकार भक्ता की वाणी के ऊपर भक्तों के नाम लिख दिए गए हैं। ताकि किसी भी प्रकार की शंका न रह जाये।

वाणी की तरतीब

जिस प्रकार गुरु साहिब ने वाणीकारों को तरतीब प्रदान की है । उसी प्रकार रचनाओं को भी हर जगह, हर राग में एक ऐसी तरतीब प्रदान की है । जो इस प्रकार हैं –

पद्य

चौपद्धे, दोपद्धे, त्रिपद्धे, पंचपद्धे आदि शब्दों के ऊपर पद्ध का विशेष शीर्षक आया है जैसे – चौपद्धे, दुपद्धे आदि।

अष्टपदीआ

ऐसी रचनाएं जो विशेष शीर्षक में आई हैं लेकिन आकार में बहुत लम्बी नहीं हैं। जैसे – हपरे, दिन, रैन आदि।

महिन्द्र कौर गिल ने अस्फोटक रचनाएं और डॉ0 तारन सिंह ने समस्यावी रचनाओं का नाम दिया है।

छन्द, सलोक

पहरे, दिन, रैन आदि रचनाओं के बाद छंद, श्लोक आए हैं कहीं छंद अकेले हैं और कहीं के साथ श्लोक आए हैं।

लमेरिया रचनाएं

इसके बाद जो रचनाएं है वो आकार में लम्बी हैं। उन्हें लमेरियां रचनाएं कहा जाता है जैसे–सुखमनि सहिब, थिति आदि।

वारा

सबके बाद वारें आती हैं जो सबसे दीर्घकारी हैं।

गुरू साहिब ने सब प्रकार की रचनाओं में सबसे पहले गुरू नानक देव जी की वाणी रखी। फिर बाकी सिक्खों, भक्तों की वाणी रखी।

हर राग में पहले सारे गुरू साहिबान की एक प्रकार की रचनाएं लिख कर, फिर दूसरे प्रकार शुरू किए जैसे श्री राग ही लीजिये। इसमें पहले सारे गुरू साहिबान के शब्द, अष्टपदीआ, पहरे, छंद, बनजारा और फिर वार दर्ज है। भक्तों की वाणी इसके बाद आती है। यह कार्य बाकी सभी रागों के साथ भी ऐसी ही स्थिति में जारी रहा है।

पादटिप्पणियां

1. गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 1195
2. –वही–, पृ0 1106
3. –वही–



महाराजा रंजीत सिंह के कीर्तन प्रेम द्वारा संगीतिक विकास

संगीत के इतिहास के अवलोकन से ज्ञात होता है कि आज से प्रायः नौ–दस शताब्दियों पूर्व भारतीय संगीत परिस्थितियों की विषमता के कारण ह्रासोन्मुख हुआ और विशेषकर इस्लाम धर्म में संगीत वर्जित होने के कारण, इस्लामी शासनकाल में उत्तरोत्तर पराभव के गर्त में गिरता चला गया। इस युग के इतिहास में यदि संगीत का नाम देखने को मिलता है तो अधिकतर भोग–विलास के संदर्भ में ही दीख पड़ता है। सिक्ख गुरू ऐसे समय में संगीत की रक्षा के आधार बने और गुरू नानक देव जी के पश्चात् का पंजाब कीर्तन के रंग में रंग जाने के कारण, अन्य प्रान्तों की अपेक्षा संगीत के प्रति विशेष अनुरक्त हो गया और यह अनुरक्ति धर्माधारित होने के कारण विशेष पावन भावनाओं से समन्वित थी।

महाराजा रंजीत सिंह के काल में एवं उसके पश्चात् पंजाब की कई रियासतें प्रायः सिक्ख धर्मानुयायी शासकों द्वारा ही शासित रही। इसलिए यदि विशुद्ध भारतीय संगीत के रूप में नहीं, तो राग–बद्ध कीर्तन के रूप में ही भारतीय संगीत यहाँ पर पुष्पित–पल्लवित होता रहा। इस प्रकार संगीत के संरक्षण और उत्थान में पंजाब की रियासतों का महत्वपूर्ण स्थान है।

महाराजा रंजीत सिंह अत्यन्त धार्मिक प्रवृति के व्यक्ति थे और निष्ठावान सिक्ख होने के कारण स्वयं को महाराजा साहिब न कहलवा कर 'सिंघ साहिब' कहलवाना पसन्द करते थे। आप प्रतिवर्ष गुरू घर की सेवा के लिए 12 लाख रूपये खर्च करते थे और इसके अतिरिक्त "हरमन्दिर साहिब" में बहुमूल्य भेंटे चढ़ाते रहते थे। गुरूओं द्वारा चलाई गई कीर्तन–प्रथा को अति उत्कृष्ट रूप प्रदान करने की आपने स्तुत्य चेष्टा की और योग्य रागियों की सरपरस्ती की यद्यपि युद्धों में रत रहने एवं राज प्रबन्ध की व्यस्तता के कारण आप शास्त्रीय संगीत का ज्ञान प्राप्त करने में असमर्थ रहे लेकिन राग

बद्ध कीर्तन होने के कारण आपने गुरूमत संगीत पद्धति को स्थिर रखने का पूरा प्रयत्न किया। यद्यपि इन शताब्दियों मे सिक्ख–संगीत कीर्तन में किंचित परिवर्तन हुए लेकिन रागियों तथा रबाबियों ने राजाश्रय में रहते हुए कीर्तन के प्राचीनतम स्वरूप को पर्याप्त सीमा तक सुरक्षित रखा।

महाराजा रंजीत सिंह के शासनकाल में कीर्तनकार रागियों एवं संगतकार वादकों को राजदरबार से मासिक वेतन प्रदान किया जाता था।[1]

महाराजा रणजीत सिंह के शास्त्रीय संगीताधारित कीर्तन के सम्बन्ध में कुछ किवदंतियां प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि आपके समय में भाई मन्सासिंह नाम के एक सुप्रसिद्ध रागी थे। भाई मन्सासिंह की आर्थिक स्थिति शोचनीय थी लेकिन वह परमात्मा के अतिरिक्त और किसी से धन की याचना करना धार्मिक सिद्धान्त के विरूद्ध समझते थे। महाराजा रागियों का विशेषकर संगीत–निपुण रागियों का विशेष सम्मान करते थे। इसलिए वे भाई मन्सासिंह की आर्थिक कठिनाईयों को दूर करने के विचार से उनके डेरे पर स्वयं पहुंचे जब भाई मन्सा–सिंह को यह समाचार मिला तो उन्होंने अपने आवास का द्वार बन्द कर दिया और कहा कि महाराज आप मुझे धन दौलत प्रदान करने आए हैं जिसके प्रति मुझे तनिक भी मोह नहीं। यदि कभी मुझे सांसारिक सुखों की कामना होगी तो मैं सीधे उसी परमात्मा से याचना करूंगा जिसने आपको विशाल सम्पदा का स्वामी बनाया। भाई मन्सासिंह ने कपाट नहीं खोले और महाराजा नाराज होकर चले गए। महाराजा की उदारता और गुणग्राहकता का यह मर्मस्पर्शी उदाहरण है।[2]

महाराज रंजीत सिंह के संगीत प्रेम और उदारता से सम्बन्धित एक कथा भी सुनने में आती है। उनके शासनकाल में ही अमृतसर के तबला वादकों का सुप्रसिद्ध घराना 'नाइयां दा घराना' अस्तित्व में आया। इस घराने से सम्बन्धित कथा इस प्रकार है।[3]

महाराजा के दरबार में मीराबाई नामक एक उत्कृष्ट गायिका थी। एक समय उसने महाराजा से आग्रह किया कि उसके साथ संगत करने के लिए एक कुशल तबला वादक का प्रबन्ध किया जाये अथवा किसी व्यक्ति को श्रेष्ठ गुरूओं की देख–रेख में तबले की ऐसी शिक्षा दिलवाई जाये जो उसके साथ संगत करने में सक्षम हो सके। महाराजा ने मीराबाई का यह अनुरोध स्वीकार कर लिया और अपने दरबारियों और कर्मचारियों को आदेश दिया कि एक प्रतिभा–सम्पन्न सिक्ख बालक की खोज करें

जिसको पखावज़ अथवा तबला वादन की उत्कृष्ट शिक्षा दिलाई जा सके। सिक्ख समुदाय वीरता का पुजारी था। अस्तु कोई भी सिक्ख अपने बालक को तबला वादन सिखाने के लिए तैयार नहीं हुआ। अन्ततोगत्वा प्रश्न दरबार के नाई के सम्मुख रखा गया जिसका वेतन मात्र सात रूपए महीना था। उसे आश्वासन दिया गया कि यदि वह अपना पुत्र तबला वादन शिक्षण के लिए देगा तो उसे तीस रूपए बज़ीफे के रूप में मिलेंगे। नाई ने प्रसन्नता से इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और अपना पुत्र महाराजा रंजीत सिंह को सौंप दिया। महाराजा ने बालक मज्जा सिंह को प्रथमतः उत्कृष्ट पखावज़ वादकों द्वारा शिक्षा दिलवाई और बाद में तबला वादन में निपुण होकर वह दरबार साहिब में वेतन भोगी के रूप में नियुक्त हो गया। लगभग तीस रागियों के समूह में इनको महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था और मासिक वेतन के अतिरिक्त भेंट स्वरूप चढ़ाई गई। धनराशि से भी इन्हें एक चौथाई अंश प्राप्त होता था। मज्जा सिंह के चार पुत्रों ने भी तबला वादन सीखा। कालानतर में वे दरबार साहिब में नियुक्त हुए "नाइयां दा घराना" कुछ काल तक अस्तित्व में रहने के पश्चात् लुप्त हो गया। अब केवल कथा मात्र सुनने को शेष बची है।

महाराजा रंजीत सिंह के शास्त्रीय संगीत के प्रति प्रेम को व्यक्त करने वाले कुछ तथ्य इतिहास को यत्र–तत्र बिखरे मिलते हैं। एक विवरण के अनुसार प्रसिद्धू जी और मनोहर मिश्र नाम के गायक युगलबन्दी में ही अपनी कला का प्रदर्शन किया करते थे। ये अंतिम मुगल सम्राट बहादुर शाह जफ़र के दरबारी गायक थे। लेकिन इन्होंने अपनी कला से महाराजा रंजीत सिंह को भी मुग्ध कर दिया था।[4]

कसूर घराना के मूलपुरुषों का सम्बन्ध भी इस दरबार से जुड़ा हुआ था। इस घराने के प्रसिद्ध गायक इर्शाद अली महाराजा रंजीत सिंह के दरबारी गायक थे। महाराजा को पंजाबी लोकगीत, लोकगाथाओं आदि से विशेष प्रेम था।



संगीत के आध्यात्मिक उत्थान में सिख गुरूओं की देन

संगीत के आध्यात्मिक उत्थान में गुरूओं का योगदान

इस काल के अन्तर्गत गुरू नानक देव जी से लेकर नवम् गुरू तेग बहादुर जी तक की रचनाएं आती हैं।

महान कोश के अनुसार गुरू साहिबान की वाणी का विवरण निम्नलिखित प्रकार से मिलता है :–

1. गुरू नानक देव जी (1469–1539) के द्वारा रचित 974 शब्द और श्लोक मिलते हैं।
2. गुरू अंगद देव जी (1538–1552) के द्वारा रचित 62 श्लोक हैं।
3. गुरू अमरदास जी (5 मई 1479–1574) के द्वारा रचित 907 शब्द और श्लोक मिलते हैं।
4. गुरू रविदास जी (1534–1581) के द्वारा रचित 679 शब्द और श्लोक मिलते हैं।
5. गुरू अर्जुनदेव जी (1563–1606) के द्वारा 2218 शब्द और श्लोकों की रचना की गई है, जो सबसे अधिक हैं।
6. गुरू तेगबहादुर जी (1664–1675) के द्वारा 115 शब्द और श्लोक लिखे गए हैं।
7. गुरू गोबिंद सिंह जी (1675–1708) ने एक श्लोक की रचना की है।

गुरू नानक देव

मध्यकालीन धर्म–संस्थापकों तथा सन्तों में गुरू नानक देव जी का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इन्होंने धार्मिक क्षेत्र में भक्ति, कर्म और ज्ञान का समन्वय किया और तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक समस्याओं का सम्यक् अनुशीलन एवं विश्लेश्न करके संतमार्ग की नींव डाली। इनकी रचना–शैली में काव्य का लालित्य, भावों का माधुर्य, विचारों की भव्यता आदि सभी गुण पाए जाते हैं।

गुरू नानक देव जी ने हरिकीर्तन एवं अपने विचारों के प्रचार के लिए शुरू से ही संगीत का आधार लिया। बल्कि ऐसा कहा जा सकता है कि इन्होंने संगीत के पुनरुत्थान के लिए ही अवतार लिया था।

संगीत विद्या का ज्ञान उन्होंने किससे प्राप्त किया? इसका कहीं उल्लेख नहीं मिलता। न तो इस विषय में उन्होंने स्वयं ही कुछ कहा हौ और न ही किसी अन्य गुरू ने इस पर प्रकाश डाला है। इसलिए यही कहा जा सकता है कि यह विद्या इन्हें जन्म के साथ ही ईश्वर कृपा के रूप में प्राप्त हुई।

गुरू नानकदेव जी एक बार अपने मुसलमान मरासी शिष्य मरदाना के साथ जगन्नाथपुरी गए। साथ में एक मुसलमान होने के कारण उन्हें मन्दिर में प्रवेश करने की आज्ञा न मिली तो उन्होंने बाहर से ही ऐसी आंरती गाई कि समस्त जनता आत्मविभोर होकर उनके पास खिंच आई और उनके पैरों में गिर पड़ी।

गुरू नानक देव जी ने संगीत की शक्ति से ही सज्जन नामक ठग को सही अर्थों में सज्जन बना दिया। यह तथ्य संगीत के मनोवैज्ञानिक प्रभाव को प्रमाणित करता है। घटना इस प्रकार है कि अपने भ्रमण काल में किसी समय गुरू नानक देव जी किसी सराय में पहुंचे जो आबादी से दूरी पर स्थित थी। इसे सज्जन नाम का एक ठग चलाता था। यात्रियों का विश्वास प्राप्त करने के लिए उसने सराय में मन्दिर, मस्जिद दोनों ही बना रखे थे। यात्री उसे धार्मिक व्यक्ति समझ कर उसके वहाँ ठहरते और वह रात्रि में उनकी हत्या कर देता। उस रात वह गुरु नानक देव जी की हत्या करने के लिए उनके कक्ष की ओर बढ़ा लेकिन गुरू जी मरदाना के साथ सूही राग में कीर्तन करने में मग्न थे और भगवान के गुणगान से परिपूरित एवं भक्तिभाव से ओतप्रोत शब्द के मधुर संगीत ने उस पापात्मा का हृदय परिवर्तन कर दिया उसके हाथ से कटार छूट

गई। वह गुरू जी के पैरों में गिर पड़ा और क्षमा याचना करने लगा। तभी से वह एक सज्जन व्यक्ति बन गया।[1]

मध्ययुग राग–संगीत–विलास का साधन बन चुका था उसको फिर से ईश्वर के प्रेम में ढालने का प्रयत्न गुरू जी ने किया। गुरू नानक जी के जीवन काल में अरब में स्थित बगदाद नगर में पीर दस्तगीर नाम के एक मुसलमान सन्त की अत्याधिक ख्याति थी।

गुरू जी ने मक्का के अपने भ्रमणकाल में इस नगर की बाहरी सीमा पर कुछ काल वास किया। प्रतिदिन प्रातःकाल वह मरदाना के संगीत में कीर्तन मग्न हो जाया करते थे। इस्लाम धर्म में संगीत वर्जित है। अतः वहाँ के मुसलमानों ने गुरू नानक देव जी के विरुद्ध पीर दस्तगीर से शिकायत की। पीर दस्तगीर ने गुरू नानक देव जी को तत्काल कीर्तन रोक देने के लिए आदेश दिया लेकिन गुरू जी ने उस पर ध्यान नहीं दिया और कीर्तन में पहले की तरह (पूर्ववत्) संलग्न रहे। पीर दस्तगीर ने आदेश दिया कि इस अधार्मिक कृत्य के लिए उन्हें इस्लाम में वर्णित दण्ड दिया जाये। इस दण्ड के अनुसार पत्थर से मार कर अपराधी की हत्या कर दी जाती है। लोग हाथों में पत्थर लेकर पहुंचे तो गुरू जी ने उनसे कहा की नमाज़ पढ़ने का समय है और इसका सर्वप्रथम इसी रूप में सदुपयोग होना चाहिए। इस्लाम में नमाज़ के लिए निश्चित समय निर्धारित किए गये हैं और उनमें परिवर्तन नहीं किया जा सकता। नमाज़ पढ़ने से पहले अज़ान पढ़ा जाना अनिवार्य है। गुरू जी ने स्वयं अज़ान को उच्च और मधुर स्वर में पढ़ा और आखिर में उन्होंने इन चार वाक्यांशों का उच्चारण किया –

1. अंल्लाहो अकबर (अल्ला सबसे महान है)
2. ला इलाहा इल लिल्लाहा (वही है एक अल्लाह के सिवा दूसरा अल्लाह)
3. हटया अलल फलाह (कल्याणकारी बातों में प्रवृत हो जाओ ।)
4. सत श्री अकाल (केवल ईश्वर ही सत्य है ।)

ऐसी वाणी को सुनकर मुसलमान सतंभित रह गए और उनके हाथों से पत्थर गिर पड़े। कोई एक भी पत्थर गुरू जी को नहीं मार सका। यह सुनकर पीर स्वयं गुरू नानाक जी के दर्शन के लिए आए और दोनों में संगीत विषयक चर्चा हुई। कहा जाता है कि गुरू नानक देव जी के संगीत विषयक विचारों को सुनकर पीर दस्तगीर अत्यधिक प्रभावित हुए ।

इस्लाम धर्मानुयायियों को जो संगीत के विषय में शंकाग्रस्त थे और जो राग गायन को चित को चंचल बनाने वाली वस्तु समझते थे। आश्चर्य हुआ कि गुरू जी किस प्रकार संगीत को मुक्ति का साधन बता रहे हैं। गुरू जी ने उनके समक्ष प्रत्यक्ष प्रयोग करके दिखाया कि राग विद्या चित को किस प्रकार एकाग्र करती है। मन को वशीभूत करती एवं कोमल बनाती है और यह स्वयं अल्लाह का कल्याणकारी वरदान है। इन सात स्वरों की रचना इन्सान की बुद्धि से परे है। स्वर का गायन आत्मा की आवाज़ है। जिस प्रकार भाषा विचारों को व्यक्त करने का माध्यम है। उसी प्रकार मन के आन्तरिक भाव राग द्वारा प्रकट किए जाते हैं। ईश्वर के प्रति आत्मनिवेदन का इससे बढ़ कर दूसरा कोई साधन नहीं है।

गुरू नानक देव जी ने इस बात को स्वीकार किया कि अज्ञान के कारण कुछ लोगों ने वासना सम्बन्धी गीत लिखे और संगीत को कलंकित किया। कुछ लोगों ने पेट पालने के लिए व्यवसाय के रूप में अपनाया और सांसारिकता की ओर उन्मुख किया। इस प्रकार कुछ लोगों ने बाध्य होकर इसे पतित किया और कुछ ने वासना के वशीभूत होकर इसकी पवित्रता नष्ट की। वस्तुतः दुश्चरित्र लोगों ने राग विद्या को विलास का साधन बनाया। जब संगीत का सम्बन्ध काम, कोध, लोभ अदि भावों के साथ हो जाता है तो उसके दिव्य गुण नष्ट हो जाते हैं। राग को इन बुराईयों से मुक्त करके दत्तचित होकर अभ्यास करने से यह चित्त को निर्मल बनाता है और इश्वरोन्मुख करता है। इससे मन में संतोष की अनुभूति होती है। और माया के बन्धन से जीवन मुक्त रहता है। गुरूजी ने मुसलमानों को चुनौती देते हुए कहा कि संसार की कोई भी शक्ति संगीत को रोक नहीं सकती। चाहे यहूदी हो जा मुसलमान, चाहे ईसाई हो या हिन्दु, संसार का कोई भी धर्म राग विद्या पर प्रतिबन्ध नहीं लगां सकता रोजा भी गाता है और रंक भी गाता है। संगीत वही नही जिसमें हुस्न और इश्क के टप्पे गाये जाते हैं। यह तो विशुद्ध आत्मा का भोजन है और सांसारिकता से परे है।

इस प्रकार अपनी वार्ता द्वारा गुरू जी ने बगदाद के संगीत विरोधी मुसलमानों के बीच संगीत की सार्थकता को सिद्ध करते हुए उन्हें यह मानने पर बाध्य कर दिया कि संगीत ईश्वर भक्ति का एक सुगम साधन है।

गुरू जी ने बगदाद के अतिरिकत मिस्र, ईरान, काबुल, तुर्किस्तान, तिब्बत, सिक्किम आदि स्थानों का भ्रमण किया और इन सभी देश के निवासियों को अपने कीर्तन संगीत से मुग्ध कर दिया।

गुरू जी ने अपनी समस्त वाणी को रागों में ही उच्चारित किया है। रागों में 'आसा' राग गुरू जी को अत्यन्त प्रिय था। इसी कारण उन्होंने 'आसा दी वार' का कीतर्न गायन किया जिसकी कीर्तन, मर्यादा पंचम गुरू अर्जुन देव जी ने स्थापित की। गुरू नानक देव जी ने अपनी वाणी का गायन (19) रागों में किया जो इस प्रकार हैं :-

1. श्री, 2. माझ, 3. आसा, 4. गौड़ी, 5. गुज्जरी, 6. बडहंस, 7. सोरठ, 8. धनश्री, 9. तिलंग, 10. सूही, 11. बिलावल, 12. रामकली, 13. मारु, 14. तुखारी, 15. भैरव, 16 बसंत, 17. सारंग , 18 मलार, 19. प्रभाती ।

गुरू नानक देव जी की राग संगीत मे गहरी पैठ थी। इसके प्रमाण स्वरूप में मिश्रित राग है। जिनके नाम शब्दों पर अंकित मिलते हैं। मिश्रित रागों का निर्माण करना साधारण संगीतज्ञ के वश की बात नहीं है। मिश्रित राग संख्या में 16 (सोलह) हैं जो उन 19 (उन्नीस) शुद्ध रागों के अतिरिक्त हैं। जिनका उल्लेख किया जा चुका है। यह कल्पना करना कि गुरू जी का राग ज्ञान केवल इन (पैंतीस) 35 शुद्ध एवं मिश्रित रागों तक ही सीमित था, अक्षम्य दुराग्रह होगा ऐसा प्रतीत होता है कि गुरू जी ने शब्द गायन में प्रयुक्त होने वाले रागों की संख्या इसलिए सीमित कर दी ताकि कीर्तनकारों का अधिक समय असंख्य रागों के अभ्यास मे न लग जाए, कीर्तनकार मनमाने ढंग से शब्दों को विभिन्न रोगों में गाना आरम्भ न करदें किन्तु अनुशासन बद्ध रहकर इन निर्देशित रागो में ही कीर्तन करें ताकि कीर्तन की एकरूपता उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक समान रूपेण व्याप्त हो।

गुरू जी का उद्देश्य केवल हरि सिमरण था और हरि सिमरण अनुशासित रूप में तन्मय करने की क्षमता संगीत कला के द्वारा करना था। गुरूजी का उद्देश्य अपने शिष्य कीर्तनकारों को शतप्रतिशत शास्त्रीय गायक बना देना नहीं था क्योंकि इस प्रकार उनका समस्त ध्यान पूर्णरूपेण संगीत पर केन्द्रित हो जाता और कीर्तन के प्रति निष्ठा में किंचित कमी उत्पन्न हो जाती। रागों की संख्या सीमित कर देने के मूल में यही तथ्य निहित प्रतीत होता है।

इन 16 (सोलह) मिश्रित रागों के नाम इस प्रकार हैं :

1. गौड़ी – गुआरेरी, 2. गोड़ी, दखणी, 3. गौड़ी रोती, 4. गौड़ी वैरांगणि, 5. गौड़ी पूर्वी दीपकी, 6. गौड़ी दीपकी, 7. आसाकाफी, 8. बडहंस दखणी, 9. काफी, 10. रामकली दखणी, 11. मारु–दखणी, बसन्त हिण्डोल, 13. विभास, 14. प्रभाती–विभास, 15. प्रभाती दखणी, 16. गौड़ी–माला।

इन नामों में गौड़ी का रूपान्तर गऊड़ी भी मिलता है। आज भी भारतीय संगीत में गौरी नाम का राग प्रचलित है। गौड़ी के शुद्ध रूप में शब्दों का गायन सुनने में नहीं आता और न ही शुद्ध गौड़ी का गुरू ग्रन्थ साहिब में उल्लेख मिलता है। इस स्थिति में यह निश्चय पूर्वक कह सकना कठिन है कि उस समय की गौड़ी जिसके मिश्रणगत रूपान्तर से ये सात मिश्रित राग बनाए गए हैं। वर्तमान गौरी ही है या यह उस समय में प्रचलित कोई राग विशेष या इन 16 रागों में पांच राग ऐसे हैं जिनमें दखणी विशेषण लगा हुआ है। दखणी संभवता दक्षिणी का परिवर्तित रूप है। इन पांच रागों के नाम इस प्रकार हैं :,

1. गौड़ी–दखणी, 2. बडहंस–दखणी, 3. रामकली–दखणी, 4. मारु दखणी, 5. प्रभाती दखणी

दक्षिणी राग के नाम का उल्लेख प्राचीन एवं तत्कालीन ग्रन्थों में नहीं मिलता। सम्भवतः दक्षिणी से तात्पर्य दक्षिण में गाए जाने वाले किसी राग अथवा धुन से था जिसके स्वरों के योग से इन रागों की रचना की। गुरू जी समस्त भारत में भ्रमण करते रहे थे इसलिए प्रत्येक अचंल के संगीत का ज्ञान होना और उनमें उनका रुचि लेना सर्वथा सम्भव है। गुरू जी जैसे महान् एवं सहज प्रतिभा–सम्पन्न व्यक्ति के लिए अन्य अंचलों के संगीत में दक्षता प्राप्त कर लेना असंभव नहीं था। बहुत संभव है दक्षिण भ्रमण के समय किसी अंचल की कोई विशेष धुन या स्वर संगित विशेष रुचिकर प्रतीत हुई हो और गुरू जी ने उसी का नामकरण दखणी करके इन मिश्रित रागों का निर्माण किया हो। दखणी नाम के किसी शुद्ध राग का उल्लेख गुरू ग्रन्थ साहिब अथवा अन्य कहीं न मिलने से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इस राग को स्वतन्त्र रूप में न गाकर मात्र मिश्रित रागों के निर्माण में ही प्रयुक्त किया गया।

संगीत के उत्थान में योगदान

संगीत के उत्थान में महान् संत गुरू नानक देव जी के महत्वपूर्ण योगदान को दृष्टि में रखते हुए इनकी जीवनी प्रमुख अंशों का ज्ञान प्राप्त करना समीचीन है। क्योंकि आपका संगीत प्रेम तब से लेकर आज तक रागबद्ध कीर्तन प्रेमियों के लिए प्रेरणा का स्त्रोत है।

गुरू नानक देव जी का जन्म सन् 1469 ई0 में तलवंडी नामक गाँव में हुआ। जो कि अब पाकिस्तान में है और ननकाना साहिब के नाम से जाना जाता है। इनकी माता 'तृप्ता' थी और पिता मेहता कालू थे। इनका विवाह 18 वर्ष की आयु में सुलखनी नामक कन्या से हुआ। जिनसे इनके दो पुत्र, श्री चन्द और लक्ष्मीदास हुए। उनके दोनों ही पुत्रों ने अपने पिता के आदर्शों की ओर ध्यान नहीं दिया और यही कारण था कि गुरू नानक देव जी ने अपने पुत्रों को छोड़ कर 'भाई लहना' को अपने बाद धर्म चलाने के लिए उचित समझा।

ऐसा समझा जाता है कि जैसे इन्सान को बोलने और चलाने की क्षमता सहज नैसर्गिक रूप में प्राप्त होती है। उसी प्रकार संगीत का ज्ञान भी गुरू नानक देव जी को दैवी सम्पदा के रूप में प्राप्त हुआ। उन्होंने स्वयं भी कहा है :

जैसी मैं आवै खसम की बाणी
तैसड़ा करी गियानु वे लालो।[1]

अर्थात् मुझे मालूम नहीं की कैसे गाते हैं? मैं तो जैसा ऊपरवाला आदेश देता है वैसा ही गाता हूं। सत्ताइस् वर्ष की आयु में ही गुरू नानक देव जी भाई मरदाना को साथ लेकर मानवता के कल्याण के लिए देश–विदेश भ्रमणार्थ निकल पड़े। मरदाना रबाब बजाते थे और गुरू जी लोगों के मन को अपने उपदेशों की ओर आकर्षित करने वाले गीत गाते थे। इन्होंने पूर्व में आसाम तक दक्षिण में लंका तक, उत्तर में नेपाल और तिब्बत और पश्चिम में मक्का बगदाद तक भ्रमण किया।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि गुरू नानक देव जी ने अपनी वाणी को रागबद्ध संगीत के माध्यम से ही जनता तक पहुंचाया और आपके पश्चात् अन्य गुरूओं ने भी रागबद्ध संगीत को महत्व देते हुए हरिकीर्तण पर बल दिया। राग गायन ही सिख कीर्तन की आत्मा है।[2]

इस परिप्रेक्ष्य में अन्य सिक्ख गुरूओं द्वारा किए गए योगदान का भी संक्षिप्त आकलन कर लेना समीचीन होगा।

गुरू अंगददेव

सिक्ख धर्म के दूसरे गुरू अंगद देव जी थे। गुरू पद पर प्रतिष्ठित होने से पूर्व आप 'भाई लहना' के नाम से जाने जाते थे। गुरू नानक देव जी ने इनका नाम अंगद रखा था।

इनका जन्म सन् 1504 ई0 में पंजाब के फिरोजपुर जिले के सराय मत्ता नामक स्थान में हुआ। आरंभ में यह देवी दुर्गा के भक्त थे किन्तु गुरू नानक देव जी के सम्पर्क में आने के पश्चात् ये निर्गुण पथ के अनुयायी बने।

ये तेरह वर्ष गुरू पद पर आसीन रहे। पंजाबी व गुरूमुखी लिपि को प्रचार में लाने का श्रेय इन्हीं को दिया जाता हैं। आपने गुरू नानाक देव जी की वाणी को और उनके जीवन की घटनाओं को संकलित किया।

गुरू अंगददेव जी ने गुरू नानक देव जी के कार्य को जारी रखा। आपने भी अनेक रागों में शब्दों की रचना की। गुरू नानाक देव जी का अनुसरण करते हुए आपने भी धर्म के प्रचार का माध्यम कीर्तन का ही बनाया। गुरू अंगददेव जी नित्य प्रति स्नान आदि से निवृत होकर 'जपु जी साहिब' का पाठ करने के उपरान्त अपने दरबार के गायकों से 'आसा की बार' का कीर्तन सुनते थे।[3]

इसी प्रकार संध्या समय जब गुरू जी दंगल आदि देखने से अवकाश पाते तब पुनः दरबार लगता और सत्ता और बलवड नामक उस समय के दो प्रसिद्ध गायक अपने गायन एवं वादन द्वारा संगत का मनोरंजन किया करते उसके बाद सोदर की चौकी का कीर्तन एवं अत में सोहिले के पाठ के साथ दरबार विसर्जित होता आपके दरबार में भाई सद्दू एवं भाई बद्दू नामक दो अन्य रबाबी भी कीर्तन करते थे। गुरू ग्रन्थ साहिब में आपकी वाणी केवल श्लोकों के रूप में संकलित है जिनकी संख्या केवल 62 (बासठ) है।

गुरू अंगददेव जी ने केवल निम्नलिखित दस रागों में अपनी शब्द–रचना को सीमित रखा :–

1. सिरी, 2. मांझ, 3. आसा, 4. बडहंस, 5. सोरठ, 6. सूही, 7. रामकली, 8. मारु, 9. सारंग, 10. मलार।

गुरू नानक देव जी की तरह आपने भी अपने दोनों पुत्रों का परित्याग किया और अपने गुरू भक्त शिष्य अमरदास जी को अपना उत्तरदायी बनाया। आपका अंतिम समय 'खादरपुर साहिब में बीता और वहीं सन् 1552 ई० में आपने नश्वर शरीर को त्याग दिया।

गुरू अमरदास

सिक्ख धर्म के तीसरे गुरू गुरू अमरदास जी का जन्म अमृतसर जिले के बासरके नामक गांव में सन् 1479 ई० में हुआ। आपने अपनी धर्म–निष्ठा से सिख धर्म को विशेष दृढ़ता प्रदान की। आपने विवाह व मृत्यु के अवसरों पर कीर्तन करने का आदेश दिया। अपने गोदवाल शहर में चौरासी सीढ़ियों से युक्त एक बावली का निर्माण करवाया। गोंदवाल में 'लंगर' की प्रथा शुरू करवाई, जिसमें वर्ण–भेद छूत–छात का परित्याग कर सभी अनुयायी एक साथ प्रसाद पाते थे। कहा जाता है कि किसी अवसर पर स्वयं बादशाह अकबर भी इस लंगर में प्रसाद पाने उपस्थित हुआ था। अकबर गुरु अमरदास जी से इतना प्रभावित हुआ कि उसने गुरू जी के लिए एक विशाल भू–भाग भेंट स्वरूप अर्पित किया जिस पर कालानतर में श्री हरमन्दिर साहिब का निर्माण हुआ और अमृतसर शहर बसाया गया।

गुरू अमरदास जी भी कीर्तन के प्रति विशेष निष्ठावान थे। उन्होंने भी पूर्ववर्ती गुरूओं के समान विभिन्न रागों में वाणी कही इनकी सबसे प्रसिद्ध रचना 'अनंदु साहिब' है । जो राग रामकली में निबद्ध है यह रचना आज भी उसी तरह गायी जाती है जैसा कि उनके समय में गाई जाती थी।[4]

गुरू अमरदास जी ने अपने पूर्ववर्ती गुरूओं की वाणी के साथ अपनी वाणी को संकलित कर, अपने पौत्र, सेहरु राम के द्वारा दो भागों में लिपि बद्ध करवाया इसमें अपने हिन्दु भक्तों की वाणी को भी सम्मिलित किया। आपने निम्नलिखित अट्ठारह रागों में वाणी की रचना की :–

1. सिरी, 2. मांझ, 3. गौरी, 4. आसा, 5. गुजरी, 6. बडहंस, 7. सोरठ, 8. धनासिरि,

9. सूही, 10. बिलावल, 11. रामकली, 12. मारु, 13. भैरव, 14, बसंत, 15. सारंग, 16. मल्हार, 17. प्रभाती, 18. बिहागड़ा।

आपने गुरू नानक देव जी द्वारा प्रयुक्त 19 (उन्नीस) रागों में से तिलंग और तुखारी रोगों को छोड़ कर उसमें अट्ठारहवां राग बिहागड़ा जोड़ा । आदि ग्रन्थ में आपके द्वारा रचित शब्दों की संख्या 907 है। आपकी वाणी की भाषा अत्यन्त प्राजल एवं सुबोध है।

आप गोंदवाल में ही बस गये और सन् 1574 में पंचानवे वर्ष की आयु में परलोकवासी हुए। आपने अपने बाद एक संगीत प्रेमी श्रद्धावान शिष्य, भाई जेठा को गुरू पद के लिए मनोनित किया और उनके साथ अपनी ज्येष्ठ पुत्री बीबी भानी का विवाह सम्पन्न किया। भाई जेठा ही बाद में गुरू रामदास के नाम से प्रसिद्ध हुए।

गुरू रामदास

आपका जन्म सन् 1534 ई0 में लाहौर में हुआ। आप गुरु अमरदास के जामातृ थे। आपके पश्चात् गुरू प्रथा, जैसा कहा जा जा चुका है, वंशकमानुसार चलने लगी। आपके तीन पुत्र पृथ्वीचन्द, महादेव और अर्जुन थे।

भाव की दृष्टि से आपकी रचना अन्य गुरूओं की रचना से किंचित भिन्न है । आपकी वाणी का प्रमुख विषय जीवात्मा–परमात्मा के विरूद्ध से उत्पन्न संसार के प्रति वैराग्य भावना है। इनके शब्दों में आत्मा की करुण पुकार सुनाई पड़ती है। जो अत्यन्त हृदय स्पर्शी है और भाव विभोर कर देने वाली है। आपने अपने पूर्ववर्ती गुरूओं द्वारा व्यवहृत उन्नीस रागों के अतिरिक्त अन्य बारह रागों में शब्द रचना की । इस प्रकार सिक्ख कीर्तन 31 (इकत्तीस) रागों में होने लगा जिन 12 (बारह) नए रागों में आपने रचना की है वे इस प्रकार हैं :

1. आसावरी, आदि ग्रन्थ में आसावरी राग को राग आसा के अन्तर्गत माना गया है, 2. देवगन्धारी, 3. बिहागड़ा, 4. जैतश्री, 5. तोड़ी, 6. बैरारी, 7. गौड, 8. नटनारायण, 9. मालीगौरा, 10. केदार, 11. कन्हड़ा, 12. कल्याण।

भारतीय धार्मिक इतिहास में आपके समान संगीत और साहित्य दोनों में ही निपुण व्यक्तित्व कम ही देखने में आते हैं। आपके द्वारा रचित आसा राग के छन्दों में वैराग्य

की भावना मुखरित हुई है। आसा राग में कुछ ऐसे स्वरों का प्रयोग होता है जो करुण भावना का आभास देते हैं।

सूही राग अपेक्षा कृत चंचल है। अतएव इनके द्वारा सूही राग में रचे हुए शब्दों में आत्मा–परमात्मा की संयोगावस्था की श्रृंगार भावना व्यक्त हुई है। गुरू ग्रन्थ साहिब में संकलित इनके शब्दों की संख्या 679 है।

गुरू अर्जुनदेव

गुरू अर्जुनदेव जी का जन्म सन् 1563ई0 में गोंदवाल में हुआ। आप गुरू रामदास के सबसे छोटे पुत्र थे और अट्ठारह वर्ष की आयु में पंचम गुरू के नाम से सिंहासनासीन हुए। रचनाओं की संख्या के कारण आपका विशेष महत्व है। आदि ग्रन्थ में आपके द्वारा रचित 2218 शब्द संकलित हैं। गुरू जी सगीत की विद्या में पूर्णतः निष्णात थे। आपके द्वारा निर्मित रचनाओं को देखते हुए आपका संगीत विशयक ज्ञान पूर्णरूपेण प्रमाणित होता है। धुन और राग के प्रति अपने विचार प्रकट करते हुए गुरू जी ने कहा है कि "जो धुन अथवा राग गाया जाए उसमें ओंकार (परमात्मा) के प्रति प्रीति प्रदर्शित होनी चाहिए। वह सर्वव्यापी है और उसके दर्शन गुरू के माध्यम से ही हो सकते हैं। इसीलिए गुरू जी ने कीर्तन करने वालों को 'भलो भलो रे कीर्तनीआ' कहकर पुकारा है और कहा है कि "तुम धन्य हो जो कीर्तन द्वारा परमात्मा का गुणगान करते हो।" गुरू जी का कथन है कि कीर्तन में माया का लेशमात्र भी होना अनुचित है।

ओ अंकारि एक धुनि एकै एकै राग अलापै ।
एका देसी एकु दिखावै एको रहिआ विआपै ।।
एका सुरति एका ही सेवा एको गुरू ते जापै ।।1।।
भलो भलो रे कीरतनीआ ।
राम रमा राम गुन गाउ
छोड़ी माइआ के धंध सुआउ ।। 1 ।। रहाउ ।।
पंच बचित्र करे संतोखा सात सुरा लै चाले ।
बजा माणु ताणु तजि तानां पाउ न बीगा गालै ।।

फेरी फेरु न होवै कबही एकु सबहु बांधि पालै ।।2 ।।
नरदी नरहर जाणि हदूरे ।।
घूंघर खड़क तिआगि बिसरे ।।
सहज अनंद दिखावै भावै ।।
एहु निरतिकारी जनमि न आवै ।। 3 ।।
जै को अपने ठाकुर भावै ।।
कोटि मधि एहु कीरतनु गावै ।।
साध संगति की जावउ टेक ।।
कहु नानक तिसु कीरतनु एक ।।4 ।।[5]

उपर्युक्त शब्द में गुरू जी ने संगीत के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग करते हुए अत्यन्त भावपूर्ण रूप में कीतर्नकार के कर्तव्यों पर प्रकाश डाला है और समाज में उसके महत्व को स्थापित किया है । गुरू अर्जुनदेव कहते हैं कि :

"कर कीरतन मन सीतल भए।
जन्म–जन्म के किलबिख गए।।[6]

कीर्तन करने से मन को शान्ति मिलती है। और जन्म–जन्मांतर के पाप नष्ट हो जाते हैं।

गुरु अर्जुनदेव जी का प्रत्येक शब्द काव्य कला का उत्कृष्ट उदाहरण है। आपने अपने पूर्ववर्ती गुरूओं की, अपनी तथा सन्तों की वाणी को राग, घरु और धुन के अनुसार संकलित करके 'गुरू ग्रन्थ साहिब' को स्वरूप प्रदान किया। यह शुभ कार्य आपके द्वारा सन् 1604ई0 में संपादित हुआ।[7]

गुरू जी ने 'हरमन्दिर साहिब' के सरोवर के निर्माण कार्य को पूरा किया जब मन्दिर पूर्णतः निर्मित हो गया और सरोवर जल से पूरित हो गया तो इस नगर का नाम रामदास पुर के स्थान पर अमृतसर रख दिया गया। गुरू अर्जुन देव ने तरनतारन, करतारपुर और श्री गोविन्दपुर नामक स्थानों को भी बसाया।

ईर्ष्या के कारण मुगल बादशाह जहांगीर ने गुरू जी पर विद्रोही शाहज़ादे खुसरो (जहांगीर का विद्रोही पुत्र) को आश्रय देने का आरोप लगा कर बंदी बना लिया और

30 मई 1606 ई० में लाहौर नगर में इन्हें दुस्सह यातना देकर शहीद कर दिया।[5]

गुरू अर्जुनदेव जी ने आदि ग्रन्थ में दिए गए इक्कतीस रागों में से 30 रागों में गायन किया। इन 30 रागों में से भी निम्नलिखित 12 रागों में आपने अधिक संख्या में रचनाएं की :

1. गउड़ी, 2. आसा, 3. देवगन्धारी, 4. सोरठ, 5. धनासिरी, 6. सूही, 7. बिलावल, 8. रामकली, 9. मारु, 10. भैरव, 11. सारंग, 12. कानड़ा।

गुरू अर्जुन देव जी को ही सिक्ख रागियों की प्रथा आरम्भ करने का श्रेय प्राप्त है। कहा जाता है कि एक बार दो मुस्लिम मरासी कीर्तनकारों सत्ता और बलवंड को मिथ्याभिमान हुआ कि लोग उनकी गायन कला से आकर्षित होकर ही गुरू अर्जुनदेव के दरबार में आते हैं। केवल गुरु शब्द श्रवण के लिए नहीं और उन्होंने अपनी कन्या के विवाह के बहाने अत्याधिक धन राशि की मांग की ओर दरबार छोड़ने की धमकी भी दी। गुरू जी ने प्रथमतः उन्हें समझाया और इस प्रकार के अनुचित आचरण को त्यागने का उपदेश दिया उनके न मानने पर उन्हें गुरु दरबार से मुक्त कर दिया। उसके पश्चात् गुरू अर्जुनदेव जी अपने सिक्ख शिष्यों को ही रागबद्ध रूप में शब्द गाने का आदेश दिया। शिष्यगण रागबद्ध कीर्तन सुनते सुनते निष्णात हो चुके थे, अस्तु शिष्यों द्वारा ही कीर्तन की परम्परा चल पड़ी। गुरू जी ने स्वयं शिष्यों को राग बद्ध कीर्तन की उत्कृष्ट शिक्षा दी।

यह भी कहा जाता है कि गुरू जी ने 'सारिन्दा' नामक वाद्य का भी आविष्कार किया। अपने शब्दों का गायन आप इस वाद्य की संगत में ही किया करते थे ।

सिक्ख–संप्रदाय के गुरूओं में से केवल तीन गुरूओं ने वाणी का उच्चारण नहीं किया, इन गुरूओं के नाम छटे गुरू श्री हरगोबिन्द राय, सातवें गुरू श्री हरिराय और आठवें गुरू, श्री हरिकृष्ण हैं।

गुरू हरगोबिन्द राय

आप अपने गुरू अर्जुनदेव जी के शहीद होने के पश्चात् दो तलवारें धारण करने लगे जो देश और धर्म की रक्षा की प्रतीक थी। आपका समय सिक्खों के लिए घोर संघर्ष एवं परीक्षा का समय था। गद्दी पर आसीन होने के समय आपकी अवस्था मात्र

ग्यारह वर्ष की थी। आपको भाई बुद्धा ने ही गुरु सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया। आपको घुड़सवारी, शिकार, तलवार , कुश्ती, सैन्य–व्यायाम (परेड) आदि की सम्यक् शिक्षा दी गई। इन्हें सच्चा पातशाह कहा जाता था।

गुरू नानक देव जी के आचरण का अनुसरण करते हुए आपने प्रायः सारे देश का भ्रमण किया। अनेक स्थानों पर आपने अपने पूर्ववर्ती गुरूओं की स्मृति में गुरूद्वारे निर्मित कराए और धर्म के प्रति जनता की आस्था दृढ़ की। हिन्दू और सिक्ख जनता में सच्ची सैन्य शक्ति उत्पन्न करने के लिए आपने वीर रस प्रधान संगीत का प्रचार किया । गुरू हरगोबिन्द ने ही 'ढाढी' संगीतज्ञों की प्रथा चलवाई। इन्हीं के समय में 'वारं' प्रसिद्ध हुई जो इनके पूर्ववर्ती गुरूओं द्वारा लिखी गई थीं। गुरू अर्जुनदेव के समय में ये वारें लोक–धुनों के नाम पर, जिन्हें धुनी कहते थे, गाई जाती थीं और गुरू ग्रन्थ साहिब में अंकित कुछ विशेष धुनों में भी गाई जाती थीं।

आपके जीवन के अन्तिम दस वर्ष स्वाध्याय में व्यतीत हुए। साधना ध्यान में रत होकर आपने जीवन के सभी सुखों को त्याग दिया। 1606 ई0 से 1645ई0 तक गुरू पद का निर्वाह करने के पश्चात् आपव कीरतपुर प्रवास कर गए। यहां पर निरन्तर ईश्वर की भक्ति में कीर्तन होता था। आपने अपने जीवनकाल में ही अपने पौत्र, हरिराय को अपने उत्तराधिकारी के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया था।

गुरू हरिराय

आपका जन्म कीरतपुर में सन् 1630ई0 में हुआ। आप बाबो गुरू दित्ता (गुरू हरगोबिन्द के पुत्र) के सबसे छोटे पुत्र थे। अन्य गुरूओं की तरह आप भी कीर्तन के प्रति अगाध श्रद्धा रखते थे। करतारपुर निवास काल में आप नित्य–प्रति 'आसा दी वार' का कीर्तन एवं श्रवण करते रहे। इसके अतिरिक्त कीर्तन की अन्य चौकियां भी आपके समय में लगती रहीं।

आपने अपने ज्येष्ठ पुत्र रामराय को गद्दी के योग्य न समझकर अपने द्वितीय पुत्र हरिकृष्ण को अपना उत्तराधिकारी मनोनित किया। आपने सन् 1661ई0 में नश्वर शरीर त्याग दिया।

गुरू हरिकृष्ण

आप भी अपने पूर्ववर्ती गुरूओं की तरह राग बद्ध कीर्तन के प्रेमी थे। आपने स्पष्ट आदेश दिया था कि आपकी मृत्यु के पश्चात् शिष्यगण विलाप न करके केवल रागबद्ध कीर्तन गायन ही करेंगे। आठ वर्ष की अल्प आयु में ही आपकी जीवन लीला समाप्त हो गई थी।

गुरू तेगबहादुर

सिक्ख धर्म के नौवें गुरू तेगबहादुर का जन्म अमृतसर में सन् 1621 में 'गुरू का महल' में हुआ। आपके पिता श्री गुरू हरगोबिन्द थे। पिता की मृत्यु के पश्चात् यह अपनी माता नानकी तथा पत्नी के साथ अमृतसर जिले के उत्तरपूर्वी छोर पर 'वाकला' नामक शहर में रहने लगे। गुरू हरिकृष्ण की मृत्यु के पश्चात् आप 'बाबास वाकल के नाम से विख्यात् हुए आप 44 वर्ष की आयु में गुरू गद्दी पर आसीन हुए।

गुरू तेग बहादुर जी द्वारा रचित गुरू ग्रन्थ साहिब में संकलित वाणी की संख्या 115 है जिसमें शब्द एवं श्लोक दोनों ही सम्मिलित हैं। आपने 31 (इक्कतीस) रागों में से केवल 15 पन्द्रह रागों में ही वाणी का उच्चारण किया है। जिनके नाम इस प्रकार हैं : गउड़ी, आसा, देवगन्धारी, बिहागड़ा, सोरठ, धनाश्री, तोड़ी, तिलंग, बिलावल, रामकली, मारु, बसन्त, सारंग और जयजयवन्ती।

जयजयवन्ती राग में गुरू तेगबहादुर जी के अतिरिक्त गुरू ग्रन्थ साहिब में किसी अन्य गुरू अथवा संत की वाणी संकलित नहीं है। इस नये राग में रचित उनके चार शब्द इस राग के प्रति उनकी विशेष रुचि व्यक्त करते हैं। देवगन्धारी राग में रचित शब्दों में वैराग्य की भावना मुखरित हुई है।

जगत में झूठी देखी प्रीति।
अपने ही सुख सिउ राम लागे
किआ दारा किआ मीत।। रहाउ ।
मेरउ मेरउ सभै कहत हैं।
हित सिउ बाधिओ चीत
अंति कालि संगी नह कोऊ

इह अचरज है रीति।। 1 ।।
मन मूर्ख अजहू नह समझन
सिख दै हारिओ नीत।।
नानक भउजलु पारि परै
जउ गावै प्रभु के गीत।। 2 ।।9

गुरू तेगबहादुर जी की वाणी "गुरू ग्रन्थ साहिब" की करतारपुर वाली "प्राचीन बीड़" (ग्रन्थ) जिसे आदि ग्रन्थ कहा जाता है में संकलित नहीं हुई है। इसका कारण यह है कि गुरु अर्जुन देव जी ने अपने से पूर्ववर्ती गुरूओं की अपनी तथा अन्य सन्तों की वाणी को एकत्रित करके आदि ग्रन्थ को स्वरूप दिया एवं गुरू तेगबहादुर जी की वाणी के लिए कुछ खाली पृष्ठ उस ग्रन्थ में जोड़ दिए। बाद में दशम् गुरु , गुरु गोबिन्द सिंह जी ने भाई मनीसिंह की सहायता से अपने पिता गुरू तेगबहादुर जी की वाणी को 'दमदमा साहब' नामक स्थान में उस पवित्र ग्रन्थ में संकलित कर 'दमदमी बीड़ ग्रन्थ तैयार करवाया।

गुरू गोबिन्द सिंह

गुरू तेगबहादुर जी के शहीद होने के पश्चात् सिक्ख सम्प्रदाय में एक नया मोड़ आया। गोविन्द राय केवल नौ वर्ष की आयु में ही अपने पिता की इच्छा अनुसार गुरु सिंहासन पर आरूढ़ हुए। इनका जन्म 26 दिसम्बर, सन् 1666 ई0 में पटना में हुआ। अपने पिता की दुखदायी मौत का इनके मन पर गहरा प्रभाव पड़ा।

आपको हिन्दी, पंजाबी, फारसी, संस्कृत भाषाओं का ज्ञान करवाया गया और घुड़सवारी, तैरना, तीर अंदाजी, तलवार और अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र चलाना सिखाया गया। आपने सिक्खों को संगठित किया और प्रथमतः विभिन्न संस्कृत काव्यों, रामायण, महाभारत आदि की परिपाटी पर वीर रस से ओत–प्रोत काव्य की रचना विशेषकर ब्रज भाषा में की। यह कवि अपने शिष्यों में वीरभाव उत्पन्न करने के लिए ही किया। आनन्दपुर दरबार एक साहित्यिक केन्द्र बन गया। आप द्वारा रचित अधिकांश साहित्य युद्धों में व्यस्त रहने के कारण सुरक्षित नहीं कर सका और जो कुछ बच पाया वह "दशम् ग्रन्थ" में संकलित है। इस ग्रन्थ का संकलन एवं सम्पादन इनकी मृत्यु के पश्चात् भाई मनीसिंह ने किया। इस ग्रन्थ में चंडी, कृष्ण, शिव आदि देवताओं की स्तुति

अत्यन्त भावपूर्ण एवं श्रद्धा समन्वित रूप में की गई है। इस ग्रन्थ में ब्रज भाषा के अतिरिक्त कतिपय रचनाएं हिन्दी की अन्य बोलियों और फारसी भाषा में भी हैं। अनेक भाषाओं पर आपका असाधारण अधिकार और काव्य रचना की क्षमता आश्चर्य में डाल देती है।

गुरू गोबिन्द सिंह जी एक महान् साहित्यकार, महान योद्धा एवं संगीत ज्ञात्ता के रूप में हमारे सन्मुख आते हैं। आपकी कोई भी रचना "गुरू ग्रन्थ साहिब" में संकलित नहीं है। आपकी काव्य रचना का क्षेत्र इतना विस्तृत एवं दीर्घकाय है कि उसे एक स्वतन्त्र ग्रन्थ का रूप दिया गया, जिसे "दशम ग्रन्थ" के नाम से जाना जाता है। दशम् ग्रन्थ में सवैया, दोहा, चौपाई, सोरठा, कवित्त आदि मात्रिक छंदों का प्रयोग हुआ है, जो संगीत की दृष्टि से गायन के लिए उतने उपयुक्त नहीं हैं। गुरूजी की रचनाओं में "शब्द–हज़ारे" तथा "पारसनाथ अवतार" के लिए कतिपय पद ही गायन की दृष्टि से उपयुक्त हैं और केवल इन्हीं पर रागों के नाम अंकित हैं।

"पारसनाथ अवतार" के पदों में विष्णुपद का प्रयोग किया गया है जिनमें चार अथवा आठ पंक्तियां हैं। ये पद सोलह रागों में रचित हैं : 1. परज, 2. सोरठ, 3. सूही, 4. रामकली, 5. धनाश्री, 6. सारंग, 7. तिलंग, 8. केदारा, 9. देवगंधारी, 10. कल्याण, 11. मारु, 12. भैरव, 13. गौरी, 14. काफी, 15. अडाना, 16. बसन्त।

"रूद अवतार" के बाद 'शबद हजारे' पद हैं जो संख्या में दस हैं ये संगीतिक रचनाएं सात रागों में निबद्ध हैं :–

1. रामकली , 2. सोरठ, 3. कल्याण, 4. बिलावल, 5. देवगन्धारी, 6. ख्याल, 7. तिलंग–काफी।

एक विद्वान के मतानुसार इस संदर्भ में "ख्याल"राग का प्रकार न होकर इस काल में प्रचलित कोई गायन पद्धति अथवा लोकगीत इस प्रकार है।[10]

गुरु गोबिन्दसिंह जी के पदों में केवल 19 (उन्नीस) रागों के नाम मिलते हैं। जो इस प्रकार हैं : 1. रामकली, 2. सोरठ, 3. कल्याण, 4. बिलावल, 5. ख्याल, 6. देवगंधारी, 7. तिलंग–काफी, 8. परज, 9. काफी, 10. सूही, 11. मारु, 12. सारंग, 13. गौरी, 14. धनाश्री, 15. केदार, 16. भैरव, 17. अडाना, 18. बसंत, 19. तिलंग।

उपर्युक्त रागों में कुछ राग ऐसे भी हैं जिनका उल्लेख "गुरू ग्रंथ साहिब" में नहीं मिलता। गुरू जी स्वयं एक महान संगीतज्ञ थे। इसमें कोई सन्देह नहीं लेकिन जैसा गुरू नानक देव के संदर्भ में कहा जा चुका है। आपने भी अपनी रचनाओं को उन्नीस रागों में सीमित रखने का प्रयत्न संभवतः भक्तों के लिए कीर्तन गायन को सुगम बनाने के हेतु किया है।

गुरू गोबिन्द सिंह जी के पदों में श्री कृष्ण की मुरली से संबंधित अनेक रचनाएं हैं। कृष्ण जी का मुरलीधर रूप उन्हें बहुत प्रिय था। इसका कारण कदाचित् उनकी संगीत प्रियता ही है। श्री कृष्ण जी की बांसुरी पर लिखी गई अनेक रचनाओं में कुछ में उन्होंने रागों के नाम भी दिए हैं। इनमें ऐसे राग भी हैं जिनका समावेश न तो 'दशम ग्रन्थ' में दिये गए रागों की तालिका में है और न ही आदि ग्रन्थ की तालिका में, उदाहरणार्थ – मालवी, गौड़ मल्हार, मालकंस, हिडोल, ललिता, मालवा आदि।

जैतश्री राग 'दशम ग्रंथ' में नहीं पाया जाता लेकिन "आदि ग्रन्थ" में पाया जाता है आपकी रचनाओं में रागों का नाम इस प्रकार सुसज्जित रूप में लिखा गया है कि इनको राग सागर के रूप में गाया जा सकता है।

बाजत बसन्त अरु भैरव हिंडोल राग,
बाजत है ललिता के साथ धनासिरि ।
मालवा कल्याण अरु मालकंस मारु राग,
बन में बजावै कान्ह मंगल निवासरी ।।
सुरी अरु आसुरी अउ पन्नगी जे हुती तंता ,
धुन के सुनत पैं न रही सुध जासरी ।।
कहै इउ दासरी स ऐसी बाजी बांसुरी,
सु मेरे जान थामै सम राग को निवास री ।।[11]

गुरू जी ने जहां पर कृष्ण सम्बन्धी अथवा श्रृंगार विषयक कविताएं लिखी हैं। वहीं पर युद्ध–वर्णन भी आपने अत्यन्त सुन्दरता के साथ किया है। इन रचनाओं में युद्ध के समय बजते हुए मारु बाजे के गम्भीर नाद तथा अस्त्र–शस्त्रों की झंकार आदि को प्रकट करने के लिए गुरू जी ने ऐसे ध्वनि प्रधान शब्दों को चुना जिनमें धौंसे की धुकार और मृदंग की ध्वनि की गंभीरता व्यंजित होती है। उदाहरणार्थ :

तागड़दंग तीरं वागडदंग बाणं ।।
कागड़दंग काती कटारी कृपाणं ।।
नागड़दंग नादं बागडदंग बाजे ।।
सागड़दंग सूरं रागड़दंग राजे ।।

इस प्रकार गुरू जी ने योद्धा होने के नाते वीर रस, संत होने के नाते शान्त रस और भक्त होने के नाते श्रृंगार रस, के भावों की अभिव्यक्ति करने वाले काव्य का सृजन किया तथा उन्हें इन्हीं भावों के अनुकूल रागों में निबद्ध किया जो उनकी अदभुत काव्य शक्ति और संगीत नैपुण्य के परिचायक हैं। गुरू गोबिन्दसिंह जी के दरबार में अनेक कवियों और संगीतकारों को आश्रय प्राप्त था। इन संगीतकारों में अनेक वादक कलाकार भी थे जो 'रबाब' एवं 'ताऊस' नामक वाद्ययन्त्रों पर कीर्तन करते थे।

उपर्युक्त सिक्ख गुरूओं के विषय में इतनी जानकारी प्राप्त कर लेने के पश्चात् यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि संगीत साधना उनके जीवन का अविच्छिन्न अंग था। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि राग विद्या के माध्यम से ही सिक्ख ध र्म की इश्वरोपासना पूर्ण होती है। और राग के आधार बिना कीर्तन समुचित रूपेण सम्पन्न नहीं होता। संगीत स्वयं एक साधना है और आत्मा का भोजन है। संगीत का वासना के पथ (पथ) से उद्धार करके सिक्ख गुरूओं ने समाज के प्रति जो उपकार किया, उसके लिए भारतीय संगीत संसार सदैव ऋणी रहेगा।

एक बात ध्यान देने योग्य है कि नृत्य के प्रति समस्त सिक्ख गुरू केवल उदासीन ही नहीं रहे, बल्कि उन्होंने उसे पूर्णतः त्याज्य समझा। इसके कई कारण हो सकते हैं। एक तो नृत्य में अंगों का संचालन, नेत्रों द्वारा भाव प्रदर्शन एवं शरीर का तोड़–मरोड़ एवं लचक, विशेषकर स्त्रियों द्वारा किए जाने पर, हृदय में कामुकता उत्पन्न कर सकते हैं। दूसरे यह कला वैश्या समाज के सम्पर्क में आने से इतना गिर चुकी थी कि समाज में इस बात की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी कि स्त्रियों के अतिरिक्त पुरुष भी नाच सकता है। तीसरे, सिक्ख गुरू हिन्दु जाति में 'वीर भावना' भर कर उन्हें देश और धर्म की रक्षा के निमित उत्कृष्ट सैनिक बनाना चाहते थे। नृत्य पुरुषों में स्त्रैणता उत्पन्न करता है। अस्तु पुरुषों के लिए इसका त्याग कर देना ही उचित समझा गया। सिक्ख गुरूगण भक्ति की अपेक्षा ज्ञान मार्ग को ही अपना लक्ष्य बनाकर ईश्वरोपासना के मार्ग में आगे बढ़े, इसलिए उनकी उपासना के क्षेत्र में नृत्य कला को वह स्थान न मिल

सका जो उसे वैष्णव सम्प्रदाय की भक्ति–मार्गी उपासना पद्धति में प्राप्त है।

नृत्य को साधारण दृष्टिकोण से दो वर्गों में बांटा जा सकता है – एक 'ताण्डव' और दूसरा 'लास्य'। ताण्डव शिव जी से सम्बन्धित होने के कारण स्त्रियों के लिए ही प्रयुक्त है भक्ति परम्परा में माताांडव और लास्य दोनों ही नृत्यों को स्थान मिला है, लेकिन ज्ञान मार्गी होने के कारण सिक्खों ने अपने उपासना के क्षेत्र में इसे स्थान नहीं दिया। इसके विपरीत सामाजिक क्षेत्र में लोक नृत्य के रूप में 'भंगड़ा' नृत्य आज भी सिक्खों का एक प्रिय मनोरंजन है जो 'ताण्डव' नृत्य की कोटि में आता है।

पादटिप्पणियां

1. गुरू ग्रन्थ साहिब, राग आसा महला 1, छन्द घर –1,पृ0 43
2. –वही–, पृ0 436
3. M.A. Maculiffe, The Sikh Religion, Vol. II, page . 15
4. गुरू ग्रन्थ साहिब, अनदु साहिब, रामकली, महला, छन्द घर – ,पृ0
5. आदि गुरू ग्रन्थ साहिब, रामकली, महला–5, पृ0 585
6. आदि गुरू ग्रन्थ साहिब, गौड़ी–गुआरेरी, महला–5, पृ0 178
7. Sikh Sacred Music, published by Sikh Sacred Music Society, p. 2
8. Ibid., p. 25
9. आदि गुरू ग्रन्थ साहिब, राग देवगन्धारी, महला–9, पृ0 536
10. Dr. A.S. Paintal Nature and Place of Music, p. 2
11. दशम् ग्रन्थ, कृष्ण अवतार, कवित्त 332, पृ0 296



संगीत के आध्यात्मिक उत्थान में मिरासी एवं ढाढ़ी कलाकारों की देन

गुरू दरबार के मिरासी एवं ढाढ़ी कलाकार

यह तथ्य सर्वविदित है कि सिक्ख सम्प्रदाय के प्रथम गुरू एक महान संगीतज्ञ थे। राग और लयबद्ध कीर्तन को वह ईश–उपासना का आवश्यक अंग समझते थे और इन तत्वों के अभाव में कीर्तन को अधूरा समझते थे। अस्तु 'स्वर' व 'लय' की शुद्धता को उन्होंने अत्यधिक महत्व दिया। उनके पश्चात् अन्य सिक्ख गुरूओं ने भी धर्म प्रचार के लिए संगीत को ही मुख्य साधन के रूप में अंगीकार किया।

गुरू नानक देव जी के प्रथम कीर्तनकार के सहयोगी के रूप में भाई मरदाना का नाम आज भी अमर है। भाई मरदाना इस्लाम धर्म के अनुयायी थे और उस वर्ग में भी वह मिरासी जाति में उत्पन्न हुए थे। जो मूलतः उन हिन्दू धर्मानुयायियों की थी जिन्होंने इस्लाम धर्म स्वीकार किया था। मिरासियों की ही भांति ढाढ़ियों की भी एक जाति थी जो गायन–वादन का कार्य करती थी। इस जाति के हिन्दूओं ने भी इस्लाम धर्म स्वीकार किया लेकिन इनका वर्ग मिरासियों से सदैव भिन्न रहा।

भाई मरदाना को अपने प्रथम कीर्तन–सहयोगी के रूप में चुनकर गुरू नानक देव जी ने अपने चित्त की उदारता, सहिष्णुता और मानव मात्र में उसी एक ब्रह्म की सत्ता को देखने की भावना का प्रत्यक्ष प्रमाण दिया है। मुसलमानों में भी हीन समझी जाने वाली जाति के एक सदस्य को गले से लगाकर संगीत को और संगीत का व्यवसाय करने वाले व्यक्तियों, दोनों को ही, प्रतिष्ठा प्रदान की।

भाई मरदाना, गायक कलाकार होने के साथ–साथ रबाब वादक भी थे और गुरू जी के कीर्तन के समय उनके रबाब की तन्त्री झंकृत होती रहती थी। कीर्तन का संगीत वाद्य होने के कारण रबाब भी गुरू जी को अत्यन्त प्रिय था और यही कारण है कि दीर्घ

काल तक पंजाबी अंचल में, विशेषकर कीर्तन के क्षेत्र में, यह एक महत्वपूर्ण वाद्य माना जाता रहा। कालान्तर में सुगम वाद्यों के प्रचार में आ जाने पर इस परिश्रम–साध्य वाद्य की लोकप्रियता में ह्रास उत्पन्न हो गया।

मरदाना से सम्बन्धित अनेक किंवदंतियां सिक्ख धर्मानुयायियों में प्रचलित हैं। मान्यताओं के अनुसार मरदाना का जन्म सन् 1459 ईस्वी में राय भोए दी तलवंडी (जो आजकल ननकाना के नाम से प्रसिद्ध है) में हुआ। इनकी माता का नाम लख्खो तथा पिता का नाम बादरा था। यह दोनों ही नाम इस बात की ओर संकेत करते हैं कि उस समय तक इन धर्म परिवर्तन करने वाले मुसलमानों के नाम हिन्दू समाज में प्रचलित नामों के अनुसार रखे जाते थे।

मरदाना के पूर्वज भी संगीत व्यवसाय द्वारा जीविका अर्जित करते थे। कहा जाता है कि उनका और गुरू नानक देव जी का साथ बचपन से ही था। यद्यपि स्वीकृत तिथियों के अनुसार गुरू जी इनसे आयु में लगभग दो वर्ष छोटे ठहरते हैं।

मरदाना के जन्म के पूर्व उनके कई भाई बहिनों की मृत्यु हो चुकी थी। अस्तु इनके माता–पिता ने दुखी होकर इनका नाम मरजाना (मर + जाना = मर जाने वाला) रख दिया। किसी समय गुरू जी इनके घर के समीप से जा रहे थे और उनके कानों में बीबी लख्खो की आवाज आई जो अपने पुत्र को मरजाना सम्बोधित कर रही थी। गुरू जी को इस विचित्र नाम से आश्चर्य हुआ और उन्होंने आर्शीवाद दिया कि यह मरेगा नहीं और मरजाना का परिवर्तित रूप मरदाना (मरदा + ना = नहीं मरता) कर दिया और उसी समय से 'मरजाना' 'मरदाना' हो गए।

एक मिरासी मुसलमान को कीर्तन गायन के लिए गुरू जी द्वारा चुने जाने पर उनके अनुयायियों में मिरासियों के प्रति अति उदार भावना जागृत हुई और गुरू जी के पश्चात् गद्दी पर आसीन होने वाले अन्य गुरूओं ने भी कीर्तन के लिए मुसलमान मिरासियों को चयन करने की क्रिया का, परम्परागत रूप में स्वीकृत प्रथा की भान्ति, निर्वाह किया । इसमें सन्देह नहीं कि यह मिरासी कीर्तनिये संगीत व्यवसायी परिवार के होने के कारण गायन और वादन कला में अत्यन्त दक्ष थे और अपनी कला द्वारा श्रोताओं को रस मग्न और भाव विभोर कर देने में पूर्णतः समर्थ थे । अस्तु मुसलमान मिरासी ही प्रथम चार गुरूओं के जीवनकाल में कीर्तनकार के रूप में नियुक्त होते रहे।

प्रेम–पूर्ण व्यवहार से अभिभूत होने के कारण इन भिन्न धर्मावलम्बियों ने भी गुरूद्वारों में जाकर, गुरू के प्रति श्रद्धा–भाव रखते हुए उनकी वाणियों के गायन में किंचितमात्र भी संकोच का अनुभव नहीं किया। उस समय गायन वादन प्रायः तीन केन्द्रों में ही हुआ करता था। प्रथम गुरूद्वारों में कीर्तन के रूप में, द्वितीय सूफी दरगाहों में कव्वाली के रूप में, तृतीय कतिपय संगीत प्रेमी शासकों के दरबार में मनोरंजन के रूप में।

मिरासियों को गुरूद्वारों मे सम्मान के अतिरिक्त भेंट और पुरस्कार आदि भी प्राप्त होते रहते थे। अस्तु उन्होंने अपनी कला को अधिकाधिक आर्थिक लाभ के आकर्षण से अपनी कला को सजाना–संवारना आरम्भ कर दिया।

मिरासी जाति के ही कलाकार दरगाहों में कव्वाली गायन भी करते थे। अस्तु ऐसा विचार करना औचित्यपूर्ण होगा कि इन कालाकारों में विभिन्न वर्ग हो गए थे। जिनमें से एक ने कीर्तन गायन को ही व्यवसाय रूप में अंगीकार कर लिया। दूसरे ने कव्वाली गायन में ही दक्षता प्राप्त की और दरगाहों में ही कला का प्रदर्शन करते रहे और तीसरा वर्ग अपनी कला द्वारा समाज एवं राजदरबार में मनोरंजन का संभरण करता रहा।

भाई मरदाना ने गुरू नानक देव जी की सभी उदासियों में साथ दिया सिक्ख सम्प्रदाय में उदासी शब्द का अर्थ भ्रमण होता है। कुछ विद्वानों के अनुसार गुरू जी ने अफगानिस्तान और अरब भ्रमणकाल में अपने प्रिय अनुचर (मरदाना) को खो दिया। विद्वानों के अनुसार इनका देहान्त करतारपुर में हुआ और गुरू नानक देव जी ने अपने हाथों उनका अंतिम संस्कार किया।[1]

यदि यह कथन सत्य है तो आश्चर्य इस बात का है कि करतारपुर में गुरू जी के इस परमप्रिय व्यक्ति की न तो कोई समाधि है और न स्मृति चिह्न। कुछ लेखकों का मत है कि इनकी मृत्यु बगदाद में हुई।[2] अपने इराक भ्रमण काल में एक विश्वसनीय व्यक्ति ने ऐसी कब्र (समाधि) देखी जिसकी देखभाल एक इराकी मुसलमान परिवार करता है। वहां के लोगों का कहना है कि यह समाधि उस व्यक्ति की है जो किसी हिन्दी फकीर के साथ भ्रमण में आया हुआ था और उसने यहीं प्राण त्याग दिया। इस जानकारी से इस बात की संभावना दृढ़तर हो जाती है कि वह समाधि भाई मरदाना की ही है।[3]

यह प्रसंग निश्चय ही खोज का विषय है और इतिहास लेखकों, विशेषकर सिक्खों का इस दिशा में प्रयास करना अपेक्षित हैं।

कुछ लोगों का कहना है कि मरदाना को रबाब वादन की कला में दक्षता गुरूजी की शिक्षा से प्राप्त हुई।[4] मरदाना अपने संगीत के कारण उस युग की एक विभूति थे इसमें सन्देह नहीं। गुरूजी सर्वसमर्थ थे। अस्तु उनकी कृपा से ही मरदाना ने विशेष दक्षता प्राप्त की इसमें भी सन्देह के लिए स्थान नहीं।

भाई मरदाना के पुत्र शहजादा ने अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् गुरू नानक देव जी की यात्राओं में उनका साथ दिया। वह भी रबाब वादन में दक्ष थे।

सत्ता बलवंड

सत्ता बलवंड नामों का प्रायः युग्म रूप में ही उल्लेख मिलता है। ये दोनों ही गायक कलाकार मिरासी थे। सत्ता बलवंड युग्म में सत्ता का नाम पहले होने से लोग इन्हें पिता और बलवंड को पुत्र मान लेते हैं। लेकिन विद्वानों का मत है कि वलबंड पिता था और सत्ता उसका पुत्र। कुछ विद्वानों के अनुसार ये दोनों परस्पर भाई थे।[5] ऐसे भी लेखक मिलते हैं जो इन दोनों का मात्र मरदाना का रिश्तेदार मानते हैं और एक लेखक ने तो इन दोनों को मरदाना का पौत्र बताया है।[6]

मरदाना के स्वर्गवास के पश्चात् बलवंड को ही मुख्य कीर्तनियों की प्रतिष्ठा गुरू नानक जी द्वारा प्रदान की गई। गुरू अंगद देव गद्दी पर आसीन हुए तो बलवंड को गुरु जी के साथ खदूर साहिब भेजा गया। सत्ता बलवंड से सम्बन्धित दो दन्त कथाएं सिक्ख समाज में प्रचलित हैं। इन कीर्तनकार संगीतज्ञों से सम्बन्धित होने के कारण इन घटनाओं का संक्षेप में परिचय प्राप्त कर लेना अनुचित न होगा।

प्रथम घटना के अनुसार गुरू अंगद देव जी के प्रिय शिष्य बाबा बुड्डा[7] ने किसी समय बलवंड से कीर्तन गायन का आग्रह किया। उसने रुक्षता से उत्तर दिया कि कीर्तन समयानुसार ही होगा। अस्तु निर्धारित समय पर ही सुना जा सकता है। बाबा बुड्डा को बहुत दुःख हुआ। संध्या के समय गुरू अंगददेव जी ने कहा कि उन्हें कीर्तन सुनने की इच्छा नहीं क्योंकि जब उनकी ऐसी इच्छा थी तो बलवंड ने कीर्तन करने से इन्कार कर दिया था। बलवंड हैरान रह गया और उसने गुरूजी से कहा कि उसने ऐसी धृष्टता कभी नहीं की। गुरू जी ने कहा कि मैं अपने प्यारे शिष्यों के हृदय में निवास करता हूं और सत्य तो यह है कि बाबा बुड्डा से वह मेरा ही आग्रह था: कहा

जाता है कि बलवंड ने अहंकार से प्रेरित होकर कहा, "मेरे लिए तो मेरा कीर्तन सुनने वाले श्रोताओं की कमी नहीं" जो भी हो बलवंड की प्रतिष्ठा समाप्त हो गई। और गुरू जी के शिष्यों में से एक ने भी उसके कीर्तन के प्रति रुचि नहीं दिखाई। इस घटना से उसके होश ठिकाने आ गए और उसके गुरू जी के चरणों में सिर रख कर क्षमा मांगी।

दूसरी घटना का सम्बन्ध गुरू अर्जुनदेव जी की समयावधि से हैं। कुछ लोग इसे गुरू अंगद देव जी से सम्बन्धित बताते है।[8]

सत्ता बलवंड गायक होने के अतिरिक्त शब्द रचनाकार भी थे। गुरू ग्रन्थ में संकलित राग रामकली की तीसरी वार इन्ही की रचना है।

बाबक

'बाबक' शब्द फारसी भाषा का है और इसका अर्थ स्वामिभक्त होता है। भाई बाबक गुरू हरगोबिन्द सिंह के दरबार में रबाबवादक कीर्तिनयों में थे।[9] लेकिन साथ ही तलवार के भी धनी थे। आप कुशल अश्वारोही और महान योद्धा थे। गुरू के एक संकेत पर आप अपने प्राणों की बाजी लगा देते थे। आपने गुरू के पक्ष से मुगलों के साथ युद्ध करने में वीरगति पायी।[10] इस प्रकार आपने अपने नाम बाबक (वफादार) या (स्वामीभक्त) को चरितार्थ कर दिखाया। बाबक सत्ता के सपुत्र थे। और अपने प्रतिष्ठा–प्राप्त जत्थे के साथ "आसा दी वार" का कीर्तन करते थे।

भाई सद्दू और भाई मद्दू

गुरू गोबिन्द जी के दरबार में भाई सद्दू व भाई मद्दू रबाबी थे। यह दोनों भाई थे। यह 'आसा दी वार' का कीर्तन करने में कुशल थे।

ढाढ़ी गायक

सिक्ख धर्म का जन्म सुख शान्ति एवं मानव मात्र में समता की भावना के प्रसार के लिए हुआ था। लेकिन धर्म और देश की रक्षा के निमित्त इन्हें तलवार धारण करनी पड़ी। इन युद्धों के प्राचीन काल से चली आती हुई चारण भट्ट (भाट) परम्परा का भी निर्वाह होता था। वीर काव्य प्रणेताओं और गायकों का वह वर्ग जो अपनी ओजपूर्ण

रचनाओं और उनके गायन द्वारा वीरों के मन में उत्साह उत्पन्न करता और प्राणोत्सर्ग के लिए प्रेरित करता था। भट्ट या चारण वर्ग कहा जाता था। आदि ग्रन्थ में भट्टों की वाणी 'सवैये' शीर्षक के अंतर्गत संकलित की गई हैं। उदाहरणार्थ :

'अब राखहु दास भाट की लाज'

इक अरदासि भाट कीरति की गुरू रामदास राखहु सरणााई ।[11]

वीर काव्य गायकों का यही वर्ग ढाढ़ी के नाम से भी जाना जाता था, जिन्हें धर्मयुद्ध में संलग्न गुरूओं ने आश्रय प्रदान किया था। ये लोग ढड्ड व सारंगी वादन करते हुए वीररस से ओतप्रोत काव्य तथा लोक–धुनों का गायन करते हुए भ्रमणरत रहते थे। सम्भवतः ढड्ड वाद्य के विशेष रूपेण वादक होने के कारण ही इनका नाम 'ढाढ़ी' पड़ गया। इन ढाढियों का कर्म प्रायः वार गायन ही रहा जो राग की अपेक्षा लोकधुनों पर आधारित होती थीं।

गुरूवाणी में भी ढाढ़ियों का उल्लेख प्राप्त होता है ।

"हऊं ढाढी बेकार कारे लाइयां'[12]

"आईने अकबरी" में भी इन गायकों का विवरण प्राप्त होता है जिसका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत है –

"पंजाब के गायक जो ढड्ड व सारंगी के साथ गाते हैं, ढाढ़ी कहलाते हैं। वे मुख्यताः अपने योद्धाओं की प्रशंसा के ही गीत गाते हैं और योद्धाओं में स्फूर्ति पैदा करते हैं।[13]

यह ढाढ़ी अपने गायन से मात्र सैनिकों का उत्साहवर्द्धन ही नहीं करते थे अपितु वे रणक्षेत्र में तलवार भी तोलते थे। संगीतज्ञ होने के साथ–साथ योद्धा होने के कारण ये सिक्ख गुरूओं और सिक्ख सम्प्रदाय द्वारा विशेष आदृत थे।

इस ढाढ़ी समुदाय में से भी अधिकांश ने अपना धर्म परिवर्तन कर इस्लाम स्वीकार कर लिया था। अस्तु ढाढ़ियों में हिन्दू और मुसलमान दो प्रकार के वर्ग अस्तित्व में आए केवल हिन्दू ही नही मुसलमान ढाढ़ी भी गुरूद्वारे में सारंगी और ढड्ड वादन करते हुए वार गायन करते थे। कतिपय ढाढ़ी शास्त्रीय संगीत का उच्च ज्ञान प्राप्त कर कीर्तन भी करते थे और स्वतन्त्र रूप में भी कला प्रदर्शन करते थे। यह परम्परा कतिपय मुसलमान ढाढ़ी परिवारों में प्रायः आज भी चली आ रही है।

मिरासियों और ढाढ़ियों के गाने में प्रमुख अन्तर यह था कि रबाबी केवल कीर्तन करते थे। ढाढ़ी युद्ध भूमि में सैनिकों को प्रोत्साहित करने के लिए वीर रस की रचनाएं करते। उनका गायन करते और प्रायः युद्ध क्षेत्र में भी कूद पड़ते थे। केवल वीररस की रचनाएं ही नहीं अपितु यह भक्ति रस की रचनाओं को भी गुरूद्वारों में ओजपूर्ण धुन में गाते थे। कतिपय ख्याति प्राप्त ढाढ़ियों का परिचय नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

भाई नत्था व भाई अब्दुल्ला

निम्नलिखित पंक्तियां इन दोनों का कुशल गायक और वादक होना सिद्ध करती है :–

नत्थे ढड्ड बजाइआ, अब्दुला हथ रबाबा

अबदुल्ला ढाढी जस सुनाए ।[14]

ये ढाढ़ी कलाकार गुरू गोबिन्द जी के काल में वार गायन के लिए अत्यधिक प्रतिद्ध हुए। आप लोगों का गायन योद्धाओं में वीररस संचारित कर देने में समर्थ था। भाइ्र अबदुल्ला ढाढ़ी उत्कृष्ट शब्द रचनाकार था। आपके सम्बन्ध में एक विद्वान का मत प्रस्तुत है :

"The Name of Abdullah, a ministrel occurs alongwith the life of Guru Hargobind. He was a gifted poet and used to sing martial songs in the Guru's Darbar with a view to inspire the Sikhs with love of heroic deeds."[15]

भाई भीखा, भाई बाल, भाई जलाप, भाई साल

भाई भीखा गुरू अमरदास जी के अनुयायियों में से थे और उनके दरबारी गायक थे। यह रचनाकार भी थे इनके द्वारा रचित दो सवैये "गुरू ग्रन्थ साहिब" में संकलित हैं। भाई बाल गुरू रामदास के शिष्य थे और उत्कृष्ट कवि थे। "गुरू ग्रन्थ साहिब" में आपके पाँच सवैये संकिलत हैं।

भाई जलाप और भाई साल गुरू अर्जुन देव जी के दरबार में वारों का गायन करते थे और अपनी कला के लिए विख्यात थे। 'गुरू ग्रन्थ साहिब' में भाई जलाप के चार सवैये और भाई साल के तीन सवैये संकलित हैं।

इनके अतिरिक्त 'गुरू ग्रन्थ साहिब' में कुछ अन्य ढाढ़ी कलाकारों की रचनाएं भी संकलित हैं।

गुरूओं के आश्रय में रहने वाले इन ढाढ़ी अथवा भाटों की संख्या के सम्बन्ध में मतभेद हैं। एक प्रसिद्ध इतिहास के अनुसार इनकी संख्यचा 9 (नौ) थी। लेकिन कुछ विद्वानों ने इनकी संख्या इक्कीस तक बताई है।[16]

पंजाब के कुछ प्रसिद्ध ढाढ़ियों का परिचय एक अन्य विद्वान ने इस प्रकार दिया है – केशव एक उच्चकोटि का नायक, फिरोज़ उएक प्रसिद्ध पखावज वादक और अल्लहा दाद एक प्रसिद्ध सारंगी वादक था।[17]

वर्तमान काल के ढाढ़ी गायक 'गुरु ग्रन्थ साहिब' में दिए गए संकेत के आधार पर वार गायन करना भूल गए हैं और उसके स्थान पर विभिन्न लोक धुनों पर आधारित, खारा, साका, साका मातिया, सोहनी, वार दुल्ला, वार सियालकोटी आदि वारों को ही गाते सुनाई देते हैं।

वर्तमान समय के कुछ प्रसिद्ध ढाढ़ी जत्थों के नाम इस प्रकार हैं :

भाई अमर सिंह 'शोकी', भाई दया सिँह 'दिलवर', भाई जसवन्त सिँह जोश, भाई किशन सिँह 'कड़तोड़', भाई पाल सिँह 'पंछी', भाई सोहन सिँह 'सीतल', भाई मस्तान सिँह, भाई लाभ सिँह, भाई लाल सिँह, भाई उदय सिँह इत्यादि ।

गुरूओं के समय में रागबद्ध कीर्तन करने वाले रागी

सिख कीर्तनकारों के नाम के आगे रागी विशेषण लगाने की प्रथा परम्परा से चली आ रही है और इसकी नींव सम्भवतः गुरू अर्जुनदेव जी के समय में पड़ी जिन्होंने सिक्खों को राग बद्ध कीर्तन करने के लिए प्रेरित किया। "रागी विशेषण स्वयं इस बात की ओर संकेत करता है कि ये कीर्तनकार अन्य कीर्तनकारों की अपेक्षा विशिष्टता रखते हैं। जिन्हें इनका शास्त्रीय संगीत अथवा राग संगीत सम्बन्धी अपेक्षित ज्ञान है। शास्त्रीय संगीत पर आधारित कीर्तन का कियात्मक ज्ञान प्राप्त करने के लिए इन रागियों को कीर्तन–प्रशिक्षण संस्थाओं में अथवा किसी रागी के शिष्यत्व में रियाज़ करना अपेक्षित होता है। प्रायः किसी गुरुद्वारे में भी यह प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। सम्प्रति कीर्तन

एवं शास्त्रीय संगीत विशेषज्ञों द्वारा इनका चयन और स्तर वर्गीकरण होता है। 'रागी' शब्द इस बात का सूचक है कि प्रत्येक व्यक्ति कीर्तनकार भले ही हो सकता है लेकिन वह अपने को 'रागी कीर्तनकार' नहीं कह सकता और न उसको इस प्रकार की मान्यता सिक्ख समाज द्वारा ही प्रदान की जाती है। अनुमान किया जा सकता है कि सिक्ख गुरू–गुण भी राग–विद्या का परीक्षण लेकर ही इन विशेष कीर्तनकारों की नियुक्ति करते रहे होंगे। सिक्ख धर्म में स्वर लय बद्ध अनुशासित कीर्तन का महत्व इतना अधिक है कि अपने घरों में जो भी चाहे अपनी इच्छानुसार कीर्तन करे, चाहे वह अशास्त्रीय ही क्यों न हो, लेकिन गुरूद्वारों में इस प्रकार की अनियमता को सहन नहीं किया जा सकता। वहाँ केवल 'रागी' सिक्ख ही कीर्तन करता है। और जनता पूर्ण मनोयोग से उसका श्रवण करती है।

सिक्ख गुरूओं के काल में कीर्तन करने वाले रागी सिक्खों की संख्या अत्यन्त अधिक थी और उनमें से सैंकड़ों की संख्या में शास्त्रीय संगीत के उत्कृष्ट कलाकार थे। ये गुरूद्वारों एवं गुरूओं के दरबार में कीर्तन किया करते थे। गुरूओं के समय में रागी सिक्ख मिरासियों के भी शिष्य हुआ करते थे। भारत विभाजन (15 अगस्त 1947) के समय तक गुरूद्वारों में मिरासी कीर्तनकार देखने में आते थे और व्यक्तिगत रूप में सिक्ख कीर्तन प्रेमियों को प्रशिक्षण भी प्रदान करते थे। लेकिन विभाजन के पश्चात् प्रायः सभी अच्छे मिरासी पाकिस्तानी अंचल के लिए प्रस्थान कर गये। अस्तु अब केवल सिक्ख रागी हैं। कीर्तन का दायित्व अपने कंधों पर सम्भाले हुए हैं। कतिपय उत्कृष्ट रागी सिक्खों का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है जिसमें कुछ गुरूगणों के समय के भी हैं।

भाई गुरूदास लिखते हैं :

रामू दीपा उग्रसेन नागउरी गुरू शब्द विचारी पांधा बूला जाणीए गुर बाणी गायन लेखारी ढले वासी संगत भारी।।[18]

अर्थात् रामू, दीपा, उग्रसेन, नगौड़ी, पांधा और बूला सभी ढल्ला निवासी थे और गुरूबाणी का कीर्तन करते थे।

गुरू अमरदास जी के दरबार में भाई उग्रसेन, नागौरी, भाई पांधा और भाई बूला, कीर्तन किया करते थे। भाई दीपा, भाई बूला और नारायणदास को गुरू अंगददेव जी

के दरबार में कीर्तन करने का अवसर प्राप्त हुआ और भाई बुल्ला ने भी गुरू अमरदास तथा गुरू अंगददेव दोनों के दरबार में कीर्तन सेवा की। भाई बुल्ला गुरू अंगद देव के निकटतम शिष्यों में से थे।[19]

गुरू अर्जुनदेव जी के दरबारी कीर्तनकारों के सम्बन्ध में भाई गुरूदास जी ने निम्न पंक्तियां कही हैं :

सांझू अते मुकंद है,
कीर्तन करै हजूर किदारा।
रुध संगति परगटु पाहारा[20]

अर्थात् झांझू, मुकंद तथा केदारा तीनों गुरू अर्जुनदेव के दरबार के प्रतिष्ठित रागी थे। गुरू जी के सम्पर्क में आने से पहले ये तीनों लौकिक क्षेत्र के संगीतज्ञ थे। इनके जीवन के सम्बन्ध में एक कथा प्रचलित है कि किसी समय इन रागियों ने गुरू जी से निवेदन किया "कृपा कर हमें मुक्ति प्राप्ति का मार्ग सुझाइये। गुरू जी ने कहा "मेरे बंधुगण, आप भाग्यशाली हैं कि आपको संगीत ज्ञान का वरदान प्राप्त है, भगवान की स्तुति गायन से अधिक सुगम मार्ग कोई भी नहीं है। आप प्रतिष्ठित भक्त मण्डली के सम्मुख शब्द–गायन में मार्ग–दर्शन करें।[21] इसके पश्चात् इन गायकों ने सांसारिक गायन से मुख मोड़ लिया और अध्यात्मिक गायन करते हुए गुरू दरबार में सम्मानित रागियों में गिने गये।

कुछ अन्य सुप्रसिद्ध रबाबी कीर्तनकारों तथा रबाबी तबला वादकों के नाम इस प्रकार हैं :–

भाई चांद रबाबी, भाई आगा फैज़, भाई अतरा, भाई ताबा, भाई बूबा, भाई खैर (प्रथम), भाई खैर (द्वितीय), भाई लाल, भाई धन्ना, भाई मोती, भाई साई दित्ता, भाई सुन्दर, भाई वंधवा व भाई वसवा, भाई अरुरा व भाई बूरा, भाई अली बख्श, भाई बाग, भाई चिराग, भाई हुसैन बख्श, भाई महंद्रा, भाई मलंग, भाई मौला खालसा, भाई नसीरा, भाई रक्खा इत्यादि।

उपर्युक्त रबाबियों के अतिरिक्त कुछ अन्य रागियों ने भी सिक्ख कीर्तन के क्षेत्र में बहुत नाम पैदा किया है। उनके नाम इस प्रकार हैं :–

भाई हरसा सिँह, भाइ गुरूमुख सिँह, भाई ध्यान सिँह, भाई दर्शन सिँह कोमल, भाई बचित्तर सिँह, भाई बतनसिँह, सरदार आत्मा सिँह, भाइ गुरूमुख सिँह और भाई सम्मुख सिँह 'फक्कर' सरदार ज्ञान सिंह 'अेवटाबाद' ज्ञानी हरिदित्त सिँह, भाई जगत सिँह, भाई ज्वाला सिँह, भाई समुन्द सिँह, भाई खड़ग सिँह, भाई कुन्दन सिँह, भाई लाभ सिँह, भाइ सनता सिँह, भाई मंसा सिँह, भाई प्रताप सिँह, भाई पूरन सिँह, मास्टर प्रेम सिँह, भाई शेर सिँह, बाबा शाम सिँह, आटा मंडी वाले, भाई सुर्जन सिँह,भाई ज्ञान सिँह अलमस्त, भाई धर्म सिँह 'जख्मी' और भाई शमशेर सिँह 'जख्मी', भाई रणजीत सिँह, भाई रणजोध सिँह और भाई महां सिँह, बाबा सरदा सिँह, भाई शेर सिँह, भाई उत्तम सिँह, भाई बखसीस सिँह, भाई अवतार सिँह व भाई गुरचरण सिँह, प्रोफेसर दर्श सिँह, भाई दिलबाग सिँह व भाई गुलबाग सिँह भाई सतनाम सिँह सेठी, इत्यादि।

पादटिप्पणियां

1. क) S.M.Latif, History of Punjab, p. 44
   ख) भाई काहन सिँह, गुरू शब्द रत्नाकर, महान कोश, पृ0 12
2. प्रो0 तारा सिंह, वादनकला, पृ0 273
3. डा0 संजय चतुर्वेदी, मैडिकल क्रास लखनऊ, पृ0 5,6,84
4. प्रो0 तारा सिंह, वादनकला, पृ0 273
5. भाई काहन सिंह, गुरू शब्द रत्नाकर महान कोश, पृ0 12
6. प्रो0 तारा सिंह, वादनकला, पृ0 281
7. भाई संतोख सिंह, गुरू प्रताप सूरज, रासि 3, पृ0 2096)
8. साहिबसिंह सत्ते बलवंड दी वार, पृ0 62–63)
9. ए0एस0 गोसल, सिक्ख धर्म अते संगीत, पृ0 66
10. –वही–
11. गुरू ग्रन्थ साहिब, सवइयै महले चौथे के 4, पृ0 1400,1405
12. गुरू ग्रंथ साहिब, वार माझ, महला 1, पउड़ी, पृ0 150
13. अबुल–फजल–आलामी, आइने अकबरी वाल्यूम 3, पृ0 271

14. ए०एस० गोसल, सिक्ख धर्म अते संगीत, पृ० 66

15. M.A.Macauliffe, The Sikh Religion, Vol. IV, p. 187.

16. J.D.Cunningham, A History of the Sikhs, Appendix, XVII, p. 324

17. हरिहर निवास द्विवेदी, मानसिंह और मानकौतूहल, पृ० 143, 144

18. वारां भाई गुरदास, वार 11, पउड़ी 16, पृ० 195

19. Dr.A.S. Paintal, The Nature and Place of Music, p. 372

20. वारां भाई गुरदास, वार 11, पउड़ी 18, पृ० 197

21. Sikh Sacred Music, p. 51,52



शास्त्रीय गायन रूप और गुरुवाणी रूप

भारतीय परम्परा में काव्य और संगीत का अभिन्न सम्बन्ध रहा है। भारतीय साहित्य इस बात का गवाह है कि इसके प्राचीन काव्य रूप एक विशिष्ट नियमित गायन विधान के भी धारणीय रहे हैं। जिसकी पहचान करने में शायद हम झिझकते हैं। इसका सबसे सबल एवं महत्वपूर्ण उदाहरण मध्यकालीन पंजाबी साहित्य परम्पराओं में से गुरुवाणी, किस्सा काव्य तथा सूफी काव्य जैसी मध्यकालीन परम्पराएं हैं जो अपने मौलिक प्रबन्ध (राग प्रबन्ध, गायन प्रबन्ध और धुन प्रबन्ध) पर आधारित हैं। इसी तरह लोक संगीत में किसी लोक गीत की कल्पना केवल काव्य के द्वारा ही सम्भव नहीं। जिस तरह प्रत्येक लोकगीत एक मौलिक धुन का परिचायचक है उसी तरह अध्ययन के समय पंजाबी काव्य और संगीत में से किसी एक के प्रति भी उदासीन एवं मूक बर्ताव से किया गया अध्ययन किसी तरह भी सम्पूर्ण नहीं है।

मध्यकालीन काव्य एवं संगीत की परम्परा हमसे छिपी नहीं है, गुरु साहिबान, संत, भक्तों, सूफियों एवं समस्त भारत के भक्त कवियों द्वारा अपनी वाणी के गायन के लिए किसी निश्चित संगीत प्रबन्ध का चयन एक महत्वपूर्ण पक्ष है। इस संगीत प्रबन्ध में राग और गायन रूप में दो प्रमुख भेद हैं। गायन रूप शास्त्रीय एवं लोक दोनों परम्पराओं में से प्रयोग किए गए हैं और इसी तरह राग का पूरा विस्तृत प्रसार एवं प्रस्तार भी दृष्टिगोचर होता है। राग के भी मार्गी एवं देशी भेद प्रयोग किए गए हैं। यह मध्यकालीन संचार रूपों (वाणी / काव्य) में से कुछ ऐसे रूप भी नज़र आते हैं जो शास्त्रीय संगीत में भी निरन्तर प्रचाराधीन रहे हैं।

प्रबन्ध गायन

अष्टपदी जैसी विस्तृत रचनाओं को शास्त्रीय गायन में प्रबन्ध–गायन हेतु स्वीकार किया गया है, जिसके उद्‌गाह, मैलापक, ध्रुव, आभोग और अन्तरा विभिन्न धातुओं के प्रकार हैं। बंगाल के प्रसिद्ध संगीतकार कवि जयदेव की अष्टपदी रचनाएं प्रबन्ध

गायन का उत्तम नमूना हैं। पंजाबी भाषा में प्रयुक्त अष्टपदी काव्य भेद प्रबन्ध गायन की रचना ही है। चाहे अब वह काल चक्र की तहों में लुप्त हो रही हैं।

ध्रुपद

ध्रुपद रचनाओं में से विशेषकर गुरूवाणी में प्रयुक्त पद रचनाएं (दुपदे, त्रिपदे, चौपदे, पंचपदे) मध्यकालीन शास्त्रीय स़ंगीत रचना ध्रुपद गायन शैली की धारिणी है। मुगल दरबार और गुरू दरबार में इस ध्रुपद गायकी का विशेष प्रचलन रहा है। शास्त्रीय संगीत की इस शैली को प्रबन्ध से विकसित माना गया है। स्थाई, अन्तरा, संचारी और आभोग इसके अंग हैं। जिसमें से एक पद "ध्रुवा" अर्थात् स्थिर या स्थाई होता है। जिसे टेक (रहाऊ) के रूप में गाया जाता है। गुरु वाणी में रहाऊ अंक का संगीत संकेत प्रबनध इस शैली के गायन में भी निर्मित है। जिसे आज तक केवल अंक जोड़ के संदर्भ में भी स्वीकार किया जाता रहा है। पंजाबी गुरमति संगीत में ध्रुपद शैली की पद रचनाओं के महत्वपूर्ण उदाहरण "श्री गुरू ग्रन्थ साहिब" में प्राप्त हैं।

पड़ताल

पड़ताल एक शास्त्रीय गायन रचना है। जिसका गायन किसी एक राग पर आधारित होता है और इससे विभिन्न तालों को प्रकट किया जाता है।

गुरू रामदास जी और गुरू अर्जुनदेव जी द्वारा 55 पड़तालें दर्ज हैं। उदाहरण राग कान्हड़ा में रचित 'पड़ताल' इस प्रकार है :-

कान्हड़ा महला 4
हरिगुण गावहू जगदीस ।।
ऐका जीह की चै लखबीस ।
जपि हरि–हरि शबदि जपीस ।।
हरि हो–हो किरपीस ।। 1 ।। रहाऊ ।।
हरि किरपा कर सुआमी, हम लाइ हरि सेवा
हरि जपि जपे हरि जपे जपि जपु जापऊ जगदीस ।।

तुमरे जन राम जपहि ते उत्तम तिन

कऊ हऊ घूमि घूमे घुमि–घुमि जीस ।।1

ख्याल

भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्रसिद्ध प्रतिनिधि गायन–रचना ख्याल शैली है। 'मित्तर प्यारे नू हाल मुरीदां दा कहना' गुरू जी का लोकप्रिय पद है जिसका शीर्षक है "ख्याल पातशाही दस" कई साहित्यकारों ने ख्याल को राग माना है जो कि तर्क संगत नहीं।[2]

मित्तर प्यारे नूं के इतने लोकप्रिय होने के बावजूद भी साहित्य रसिकों ने कभी ख्याल को काव्य रचना के प्रसंग में नहीं माना।[3]

7.1 गुरूमत गायन की मूल व्यवस्था भारत के शास्त्रीय संगीत द्वारा अनुप्राणित है। श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में पहले सनातनी (शास्त्रीय) फिर लोक देसी काव्यरूप/गायन शैलियों को रखा गया है जिनका वर्णन इस प्रकार है :–

शास्त्रीय अंग के गायन रूप

क) अष्टपदी

अष्टपदी श्री गुरू ग्रन्थ साहिब का महत्वपूर्ण काव्यरूप है। इसका काव्यात्मक और संगीतिक रूप सनातनी उच्यता का धारणी है। गुरूवाणी के अन्तर्गत अष्टपदी में मानव जीवन के साधारण किस्म के विषय को मूर्तिमान किया गया है। आठ पदों की रचना को अष्टपदी कहते हैं। किन्तु गुरूवाणी में अष्टपदी के अधीन पदों की गिनती आठ से बढ़कर नौ, दस, ग्यारह और आठ से कम होकर सात भी मिलती है। अष्टपदी में इन पदों के अलावा तुकों में भी भिन्नता पाई जाती है। पदों में चार तुकों के अलावा तीन, दो अथवा एक तुक भी दृष्टिगोचर होती है।

भारतीय संगीत के अध्ययन से भी पता चलता है कि गुरू साहिबान से पूर्व अष्टपदी का प्रबन्ध शैली के रूप में प्रचार था। प्रबन्ध एक नियमबद्ध रचना है, जिसके चार भाग – उदग्राह, ध्रुव, मेलापक और आभोग है। बारहवीं सदी के भक्त कवि और महान संगीतकार जयदेव द्वारा रचित 'गीत गोविन्द' की महत्वपूर्ण रचना 'अष्टपदी' प्रबध गायन का उत्कृष्ट नमूना है। इस महान रचना 'गीतगोविन्द' से प्रबन्ध शैली की

प्राचीनता और महानता के बारे में पता लगता है। गुरू साहिबान द्वारा रचित अष्टपदियां भी प्रबन्ध गायन का उत्तम नमूना है।

पद

पद काव्य का पुरातन और प्रचलित रूप है। जिसका संगीत में गायन करने की अपनी ही परम्परा है। "संगीत भाष्य" में पद की परिभाषा इस तरह दी गई है –– जिन विशेष अक्षरों या वाक्य स्मूहों से किसी गत्त या गीत का बोध हो उस शब्दावली को 'पद' कहा जाता है।[4] पद को राग पद, राग प्रकाशक पद, और स्वर शब्द भी कहा जाता है।[5]

'श्री गुरू ग्रन्थ साहिब' में लगभग सभी गुरू साहिबान और संत व भक्तों ने पद गायन शैली का प्रयोग अपनी वाणी के गायन के लिए किया गुरू वाणी में बंद या तुकों की संख्या के आधार पर ही पदों के नाम शीर्षक रूप में अंकित हैं। दो बधों के दुपदे, तीन बंध के पद को तिपदे, चार बंध के पद को चौपदे, इसी तरह पंचपदे और छहपदे आदि कहते हैं।

मध्यकाल में पद शैली को प्रचलित ध्रुपद अंग या ध्रुपद शैली में गाए जाने की रीति प्रचार में भी। ध्रुपद शैली का प्रयोग ईश्वर के गुण गान के लिए किया जाता था। जिसके चार अंग स्थाई, अन्तरा, संचारी और आभोग हैं। भारतीय संगीत के महान संगीतकार स्वामी हरिदास, उनके शिष्य तानसेन, बैजू बावरा, रामदास आदि संत कवियों में भक्त कबीर, सूरदास आदि द्वारा रचित पद ध्रुपद–गायन शैली के उत्तम नमूने हैं।

'श्री गुरू ग्रन्थ साहिब' में दर्ज पद शैली में रहाओ की तुक को ध्रुपद की जगह ध्रुव नाम दिया है। शब्द की शेष तुकों के अन्त में 1,2,3 के रूप में अंक स्थाई, अन्तरा, संचारी और आभोग ध्रुपद के नियमों के अनुसार कार्यशील रहते हैं।

श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में वाणी प्रधान होने के कारण ध्रुपद शैली के इन शास्त्रीय नियमों से छूट भी ले ली जाती है। उदाहरण के तौर पर दुपदे, तिपदे, आदि में ध्रुपद के सभी अंग नहीं हैं। पर इनका गायन ध्रुपद अंग से ही किया जाता है। गुरमति संगीत की प्रथम 'पद' शैली को ध्रुपद अंग से गाए जाने की परम्परा वाणी प्रबन्ध की विशिष्टता है।

होली

गुरवाणी में होली से सम्बन्धित शब्दों को भारतीय संगीत में प्रचलित "धमार" अंग से गायन करने की परम्परा है। धमार शैली श्रृंगार रस प्रधान है। धमार ताल में इसका गायन करने पर इसको धमार शैली कहा जाता है। इसके दो भाग स्थाई और अन्तरा होते हैं और विभिन्न लयकारी एवं बोल तानों आदि से इसे सजाया जाता है।

श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में दर्ज होली के शब्दों में रहाओं का प्रयोग स्थाई और अन्तरा में विभाजित किया गया है। इसमें रहाओ की तुक के अलावा शेष सभी तुके अन्तरे की होती है। इससे प्रत्येक अन्तरे के बाद रहाओं की तुक का गायन किया जाता है। गुरवाणी में होली के शब्दों को गुरमति संगीत प्रबन्ध के अनुसार धमार अंग से गायन करने की परम्परा वाणी प्रबन्ध की उच्चता की धारिणी है।

पड़ताल

पड़ताल शैली की रचना पड़+ताल शब्दों के मेल से हुई है इसके शाब्दिक अर्थों को देखने पर ताल के आधार पर शब्द का पाठ बनता है। पड़ताल को पटताल, परतताल, पंचताल, पड़तताल आदि नामों से भी सम्बोधित किया जाता है। पड़ताल एक कठिन गायन शैली है 'पड़ताल' के गायन के लिए गायक को ज़हाँ रियाज़ की जरूरत है, वहाँ धुपद, धमार और बाकी गायन शैलियों का पूर्ण ज्ञान भी आवश्यक है।

एक शब्द या पद के अलग–अलग तालों में गायन को 'पड़ताल' कहा जाता है। जैसे :– एक बन्दिश में अलग–अलग रागों के प्रयोग को 'राग–सागर' या राग माला कहते हैं उसी तरह एक ही बन्दिश में अलग–अलग तालों के अन्तर्गत गीत का गायन करना पड़ताल है।[6]

पड़ताल गुरमति संगीत का एक विशिष्ट और अप्रसिद्ध काव्य रूप है जो संगीत के गायन पक्ष में भी शेष शैलियों से निराला और महत्वपूर्ण स्थान रखता है। वर्तमान समय में पड़ताल शैली का भारतीय संगीत में प्रचलन नहीं है। परन्तु भारतीय संगीत ग्रन्थों में 'पंचतालेश्वर' नामक गायन शैली के साथ इनका प्रत्यक्ष तौर पर सम्बन्ध जोड़ा जाता है।[7]

गुरमति संगीत की इस अद्वितीय गायन शैली का स्वरूप, समय के काल चक्र में अप्रचलित होने से, इस शैली के तालों के सम्बन्ध में विद्वानों में मत भेद हो गए। पड़ताल शैली में विभिन्न तालों के प्रयोग के बावजूद राग एक ही रहता है। पड़ताल का गायन करने के लिए शेष शैलियों की तरह रहाओं की तुक को स्थाई के रूप में किसी एक ताल के अर्न्तगत रखा जाता है। अन्तरे की तुक को विभिन्न तालों में गाने के उपरान्त स्थाई की ताल में गाया जाता है। अन्तरे की तुक के बाद ताल से तिहाई लगा कर स्थाई की तुक का गायन किया जाता है। अगर तिहाई न हो तो शब्दों को दुहरा कर या तान लेकर पूरा किया जाता है। इसके इलावा साधारण रूप से सम से स्थाई में प्रवेश किया जाता है।

पड़ताल एक कठिन गायन शैली है। पड़ताल के गायन के लिए गायक को जहाँ ज्यादा रियाज़ की जरूरत है, वहाँ ध्रुपद, धमार और बाकी गायन शैलियों का पूर्ण ज्ञान की आवश्यक है क्योंकि इस शैली में इन गायन शैलियों के रंग भी नज़र आते हैं। रियाज़ से ही तालों का बदलाव सहज रूप में हो सकता है। और गुरमति संगीत के अनुसार शब्द–प्रधान गायकी के लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है।

लोक (देसी) अंग के गायन रूप

यह गायन रूप वे हैं जो अलग–अलग इलाकों, जातियों तथा प्रान्तों के लोक–जीवन में निजी सामूहिक भावों की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त होते हैं। गुरूवाणी में लोक–अंग के गायन रूपों को गुरमति संगीत प्रबन्ध के अन्तर्गत रख कर इसमें अभिव्यक्ति को अनुशासित किया गया है। इन लोक–रूपों को राग, ध्वनि, रहाओ, अंक आदि संकेतों के साथ स्वरूप दिया गया है। इन लोक रूपों (गीतों) का वर्णन निम्न प्रकार हैं :

छंद

छंद पंजाबी काव्य का अंग है। लोगों में इसका प्रयोग उन गीतों के लिए होता है जो विवाह के अवसर पर लाड़ा अपनी सालियों को सुनाता है।[8] विवाह शादी के मौके पर गाए जाने वाले गीतों को छंद कहा जाता है। छंद श्रृंगारिक काव्य का उत्तम नमूना है। पंजाबी लोक छंद में छंद की तुकों को दो भागों में विभाजित करके प्रत्येक भाग

के अन्तिम शब्द को लम्ब़ा करके टिकाव सहित गाते हैं। इन "छंदों" का गायन ज्यादातर पीलू त़था खमाज जैसे रागों में किया जाता है।

"श्री गुरू ग्रन्थ साहिब" में दर्ज छंदों के आमतौर पर चार बंध होते हैं। और प्रत्येक बंध मं छह तुक होती हैं। पर गुरवाणी मे छंद के पदों की संख्या सात, आठ, नौ, और सत्तरह भी मिलती है। छंद में दर्ज अंक एक 'छंद' पूरा होने का सूचक है। "छंद" का गायन क्रमवार गायन करने की रीति है। इसलिए छंदों को स्थाई–अन्तरे में विभाजित नहीं किया जाता।

सिक्ख जगत में रात को "श्री गुरू ग्रन्थ साहिब" के सुखासन उपरांत महाराज की सवारी को विश्राम के स्थान पर ले जाते समय "जियै जाई बहै मेरा सतिगुरू" छंद का गायन किया जाता है। इसका गायन चलते–चलते बिना साज़ के सामूहिक रूप में किया जाता है। इसके अलावा "आसा की वार" में श्री गुरू रामदास जी द्वारा रचित "छंदो" को रोजाना गायन करने की परम्परा है।

अलाहुणी

'अलाहुणी' शबद अलाहणा से बना है, जिसका अर्थ है गाना। अलाहुनी का शाब्दिक अर्थ है शलाघा या स्तुति की कविता यानि वह गीत जिसमें किसी के गुण गाए जायें। खासकर दिवंगत प्राणी के गुण–कर्म कहकर जो गीत गाया जाता है उसका नाम 'अलाहुणी' है।[9] अलाहुणी गायन करने की अपनी ही परम्परा है। यह मृतक प्राणी की बिरादरी की सभी औरतें मिलकर गाती हैं। सभी औरतें मिलकर गाती हैं। सभी औरतें एक गोल चक्र में खड़ी हो जाती हैं और बीच में नैण या मरासण खड़ी हो जाती है। मरासण "अलाहुणी" बोलती है और सात ही सभी अपने हाथ छाती और पटों पर मार कर पीटती है। सभी क़े हाथ एक लय में उठते हैं। "अलाहुणी" का गायन बिना साज़ के किया जाता है। इसकी अपनी ही एक पहचान है। इसमें खास एक आलाप होता है जो उस दृश्य को शोकाकुल, करुणामय बना देता है।

गुरूवाणी के अन्तर्गत अलाहुणी में संसार को नाशवान बताते हुए जीव को परमात्मा की रज़ा में रहने, उत्तम काम करने, मौत को याद रखने और प्रभु भक्ति का उपदेश दिया है।

'अलाहुणी' का गायन प्राणी के अकाल अवसान के उपरान्त देह को दाह देने के बाद किया जाता है।[10] श्री गुरू ग्रन्थ साहिब' में दर्ज अलाहुणी के चार बंध हैं और प्रत्येक बंध में छः तुक अंकित हैं। राग "बड़हंस" के दक्षिणी प्रकार की अलाहुणी में आठ बंध हैं और प्रत्येक बंध चार तुक का धारिणी है। इसमें स्थाई के तौर पर रहाऊ की तुक भी अंकित है। जबकि शेष को स्थाई व अन्तरे में विभाजित नहीं किया गया। 'अलाहुणी' के अनुकूल वातावरण के लिए रोवण, मरन, रोइयै, बिछोड़ा पछताए आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

मुन्दावणी

मुन्दावणी का अर्थ है बुझारत अड़ाउनी, जिसमें भाव य अर्थ गुप्त रूप में बंध कर के छिपा के रखा हो। ऐसी बात जो जल्दी से किसी की समझ में न आ सकती हो वही 'मुन्दावणी' की रीत है। इसके अनुसार जब बराती खाना खाने बैठते हैं तो लड़कियां बुझारत पाकर चाली बांध देती हैं, वह बूझ ली जाए तो बराती खाना खाते हैं। इसी को मुन्दावणी कहा जाता है। इन गीतों में थाल में परोसी वस्तुओं का ज़िक्र होता है।

भाई काहनसिंह नाभा के अनुसार गुरूवाणी में 'मुन्दावणी' मुहर या छाप लगाने की किया है। 'मुन्दावणी' "श्री गुरू ग्रन्थ साहिब' के विषयानुसार, इसकी अन्तिम मुहर है। इसके सम्पादन ने स्पष्ट कर दिया है कि इस महान ग्रन्थ (थाल) में सत्य, सन्तोष और नाम जो कुल कायनात (सम्पूर्ण सृष्थि) का आसरा है विद्यमान है। जो कोई इस नाम को खाएगा, विचार करेगा, उसका कल्याण होगा। जाहिर है "मुन्दावणी" श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में दार्शनिक बुझारत के अर्थों में तथा मुहर के अर्थों में भी है ।[11]

सिक्ख धर्म में मुन्दावणी का श्री गुरू ग्रन्थ साहिब के पाठ की समाप्ति के समय और रोज़ाना शाम को रहिरास पाठ में भी गायन करने की अपनी ही परम्परा है। इसका गायन बिना साज़ के सामूहिक रूप में किया जाता हे।

घोड़ियां

पंजाब का लोकप्रिय काव्य रूप है। विवाह के अवसर पर दूल्हे (वर) के घोड़ी चढ़ते समय बहनें अपने भाई का शगुन मनाने के लिए जिस प्रकार का गीत गाती हैं, उसे घोड़ी लोक काव्य रूप के अन्तर्गत जाना जाता है।

घोड़ी में तुक के अन्तिम शब्द को विशेष लय सहित गाया जाता है। और उसके लिए किसी भी साज़ का प्रयोग नहीं किया जाता पर विवाह से कुछ दिन पहले शगुन के तौर पर घोड़ी के लिए ढोलकी का प्रयोग किया जाता है।

गुरवाणी के अधीन घोड़ियों में परमात्मा का नाम स्मरण करके प्रभु के मिलाप के साधनों का वर्णन है और इनके लिए गुरमति संगीत प्रबन्ध को ध्यान में रखते हुए शास्त्रीय संगीतिक संकेत राग, रहाओ, और अंक का प्रयोग किया गया है।

यह घोड़ियां स्थाई तथा अन्तरे में विभाजित होने से इनको लोक–संगीत की तरह कमवार गायन करने की बजाय अन्तरियां सहित गायन करने की परम्परा है।

अंजली

पानी की चुली (जलांजलि) देवता या पितरों को अर्पित करने की रीति से सम्बन्धित काव्य रूप है। लोक–विश्वास के अनुसार यह पानी, मरे हुए प्राणी को आगे वाले लोक में प्राप्त होता है। गुरूवाणी के अन्तर्गत रूपकार की दृष्टि से 'अंजली' में आठ–आठ बंध हैं और प्रत्येक बंध की पहली दो तुके छोटी और तीसरी तुक लम्बी है। इसमें 'रहाओ' की तुक का पालन नहीं किया गया है। इन रचनाओं में वृक्ष के रूप में संसार की नश्वरता का वर्णन है।

वार

'वार' पंजाब के लोक–संगीत का अटूट अंग है। जिसमें बाहदुर वीरों की लड़ाई तथा शूरवीरता को संगीतमयी प्रस्तुति द्वारा पेश किया गया है। इसके गायक को 'ढाढ़ी' कहा जाता है, जो वीरों को सम्बन्धित इलाकाई धुनों के अनुसार गाते हैं। "वार" वीर रस से भरपूर होने से इसका गायन बुलंद आवाज तथा ज्यादातर तार सप्तक में किया जाता है। 'वारों' के गायन के लिए डढ और सारंगी का प्रयोग किया जाता है। डढ के ऊपर चार मात्रा के बोल 'गे, तिट, ता, गेता, बजाए जाते हैं।

गुरूवाणी के अन्तर्गत 'वारों' में अध्यात्म मार्ग पर चलते' समय उत्पन्न दुनियां की मोह–माया, विषय–विकारों के साथ युद्ध का वर्णन है। इन 'वारों ' में सामाजिक, सदाचारक, मूल्यों द्वारा आध्यात्मिक अनुभव का बोध कराया गया हैं।

'श्री गुरू ग्रन्थ साहिब' में कुछ वारों को गुरू साहिबान के समय प्रचलित निश्चित धुनों पर गायन करने के संकेत हें जैसे :–

वार माझ की तथा सलोक महला[1]

मलक मुरीद तथा चंद्रहड़ा सोहीआ की धुनी गावणी[12]

आसा महला 1 वार सलोका नालि सलोक भी पहले–पहले के लिखे टुण्डे असराजै की धुनी"

इन वारों पर गायन की धुनों के संकेतों से 'वार' की प्राचीनता और लोकप्रियता के बारे में पता लगता है। "वारों" पर लोकधुनों के साथ राग, घरु आदि के संकेत शीर्षक रूप में विद्यमान है। लोक संगीत के मिश्र रूप इन 'वारों' का गायन करना कोई सहज कार्य नहीं है।

गुरमति संगीत में प्रयोग किए गए गायन रूप शास्त्रीय और लोक अंग के धारिणी हैं। गुरमति संगीत के प्रयोजन की सिद्धि के लिए इन गायन रूपों को "गुरमति संगीत प्रबन्ध' के अधीन रखा गया है। इसमें जहाँ शास्त्रीय काव्य के अन्तर्गत प्रयोग में आने वाले शास्त्रीय गायन रूपों को राग, स्थाई और अन्तरा मे निबद्ध करने के संकेत और शीर्षक दिए गए हैं। वहाँ लोक अंग की 'अलाहुणियां', 'घोड़ियां' आदि शैलियों को भी राग, स्थाई, अन्तरा, आदि अनुसार निबद्ध करने का आदेश दिया गया है। गुरू साहिबान ने इन गायन रूपों के लिए जहाँ विशिष्ट संगीत प्रबन्ध की सर्जना की, वहँ इनकी प्रस्तुति की विधि और लक्षणों का भी वर्णन किया है, जिसके अनुसार हुऊमैं के त्याग के साथ साथ 'आत्म समर्पण' गुरमति के अनुसार ही होना, तथा सहज जीवन जैसे नियमों को पूर्ण रूप में धारण करना है।

इकि गावत रहे मनि सादु न पाई ।।[13]

आप गावऐ सु हरि गुन गाऊ ।।[14]

गुरमति बाजै सबद अनाहदु गुरमति मनुआ गावै ।[15]

सहजे गाविआ थाई पवै बिनु सहजे कथनी बादि ।।[16]

पादटिप्पणियां

1. श्री गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 1296
2. डा0 गुरनाम सिंह, गुरमति संगीत अंक, पृ0 39
3. वही, 91–93
4. बंधोपाध्याय श्री पद, 'संगीत भाष्य' पृ0 206
5. चौधरी विमल कान्तराय, ''भारतीय संगीत कोश'', पृ0 70
6. नरुला दर्शन सिंह डा0 ''गुरुवाणी संगीत बारे'' पृ0 76
7. श्री मानवली रामकृष्ण कवि 'भरत कोष' पृ0 344
8. पंजाबी कोष (भाग दूसरा) 'भाशा विभाग', पृ0 433
9. भाई काहन सिंह नाभा कोश 'महान कोश', पृ0 85
10. गुरमति संगीत पर हुण तक मिलि खोज भाग चौथा, पृ0 14
11. गिल महिन्दर कौर 'आदि ग्रन्थ लोक रुप' पृ0 86
12. आदि ग्रन्थ पृ0 137
13. गोउड़ी गुयारेरी महला 3 आदि ग्रन्थ पृ0 158
14. गोउड़ी सुखमनि महला 4 अष्टपदी 'आदि ग्रन्थ' पृ0 270
15. गोउड़ी पूरवी महला 4 आदि ग्रन्थ, पृ0 172
16. सिरी राग महला 3 आदि ग्रन्थ, पृ0 68



राग माला तथा आदि ग्रन्थ

आदि ग्रन्थ की अंतिम रचना "रागमाला" है। यह प्रश्न विचारणीय था कि 'रागमाला' को गुरूवाणी का ही अंश माना जाये अथवा नहीं। मूल कारण यह था कि इसके रचनाकार का पता नहीं चलता था। डॉ0 चरण सिंह जी तथा पूज्य भाई वीर सिंह जी ने भी इस पर विचार किया था परन्तु वह भी इस शंका का समाधान नहीं कर सके। कुछ लोग इसे भट्टी की रचना मानते थे और कुछ गुरू नानक, गुरू अर्जुन, अथवा भाई गुरूदास जी की रचना मानते थे। वास्तविकता कुछ और है।

पंजाब तथा इसके वासियों से कवि आलम का अगर कोई सम्बन्ध माना जा सकता है तो वह यही है कि उसकी एक रचना 'राग माला' श्री गुरू ग्रन्थ साहिब के अंतिम पृष्ठों पर निबन्ध है। यह रचना किसी अन्जान व्यक्ति की लापरवाही के कारण किसी समय लिपिबद्ध की गई। इसे सिक्ख अल्प मत से गुरूवाणी अथवा गुरूमत संगीत का अंग समझने लगे हैं। यह राग माला कवि आलम की पुस्तक में छंद अंक 34 से 38 तक चलती है। इस रागमाला की रचना इसी पुस्तक के साथ हो (सन् 991 हिजरी) संवत् 1640 विक्रमी अर्थात् आदि ग्रन्थ के निर्माण से 21 वर्ष पूर्व हुई है। सिक्ख इतिहास की लिखतों के अनुसार आदि ग्रन्थ की 'बीड़' 1661 विक्रमी में निर्माण हुई। आदि ग्रन्थ तथा कवि आलम की इस पुस्तक वाली –'राग माला' में मामूली पाठ भेद (शब्द उच्चारण) में अन्तर है। इस प्रकार का अन्तर प्राचीन हस्त लिखित रचनाओं में अधिकतर पाया जाता है। वैसे दोनों रचनाएं बहुत हद तक एक हैं।

गुरू जी की वाणी अकाल पुरुष की महिमा का बखान करती है परन्तु आलम की रचना केवल इशक–मुहब्बत के विषय पर सूफीमत की धुनों को अपनाती है।[1]

आलम कवि अकबर का समकालीन था। उसकी कविता का काल 1640ई0 से 1660 के अर्न्तगत माना जाता है। किन्तु राग माला को जो लोग गुरूवाणी का अंग सिद्ध करना चाहते हैं। वे इस का रचनाकाल 1740 से 1760 तक का मानते हैं। परन्तु

यथार्थ बात यह है कि दूसरे एक और संस्कृति के आलम कवि भी हुए हैं जो गुरू गोबिन्द सिंह जी के समकालीन हुए हैं। इनकी रचनाएं "आलम केली" और "भ्रमर गीत" इत्यादि उपलब्ध हैं।

इस सम्बन्ध में कुछ हस्तलिखित ग्रन्थ "सिक्ख रैफरैंस लायब्रेरी" में देखी जा सकती हैं।

उपरोक्त सारे निबन्ध का सारांश यह है कि "रागमाला" न तो आदि ग्रन्थ के प्रयोगिक रागों ही से मेल खाती है और न ही आदि ग्रन्थ की रचना शैली और विचारधारा से ही मेल खाती है। इसलिए इसे "आदि ग्रन्थ" का अथवा गुरूवाणी का अंग मानकर "गुरूमत संगीत" के साथ जोड़ना एक उचित नहीं। हर स्थिति में इसका त्याग ही श्रेष्ठ है।

राग–माला (राग सागर)

यह भी अपनी संगीत पद्धति का एक प्रकार का गीत है। इसे रागमाला अथवा 'राग सागर' कहते हैं। इसमें भी स्थाई और अन्तरा ऐसे दो भाग होते हैं। विशेषता यह है कि इस गीत की शब्दावली में राग के नामों का एक विशेष अर्थ सहित समावेश होता है तथा जिस किसी भी राग का नाम आता है, उसके साथ ही उस राग के स्वर मिश्रित रहते हैं। यानि राग का नाम तथा उससे सम्बन्धित अन्य शब्दावली ठीक उसी राग में ही गाई जाती है। इस प्रकार इस गीत के स्थाई व अन्तरा दोनों भागों में लगभग दस–बारह रागों के मुख्य स्वर **विनियासों** के साथ ही उन रागों के नाम व उनसे सम्बन्धित अन्य शब्दों का समावेश बहुत ही चतुरता से किया हुआ प्राप्त होता है। यह गीत अधिकतर त्रिताल, एकताल व झपताल में गाए जाते हैं तथा इनके सुनने में विशेष वैचित्र्यदायक आनंद प्राप्त होता है।

उदाहरण के लिए 'राग सागर' (राग माला) की एक स्थाई जो कि झपताल में निबद्ध है लिखी जा रही है :–

श्याम मोहन प्रगट भए, नंद के द्वार ठाड़े कामोद भरे।।

इस स्थाई में श्याम (श्याम कल्याण) मोहन (भूपाली) नंद , केदार व कामोद रागों का समावेश है।

पादटिप्पणी

1. माधव नल काम कन्दला कृत कवि आलम पृ0 57,58 तथा 'रागमाला निर्णय' सम्पादक रामशेर सिंह अशोक, 1965



आदि ग्रन्थ का गुरुमत फिलासफी के संदर्भ में महत्व

अर्जुनदेव जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि –

जे को खावै जे को पुन्चै, तिस का होए उधारो ।।

अर्थात् जो कोई भी इस ग्रन्थ के अन्दर की वाणी के ऊपर विचार करेगा और विचार करके जीवन में अपनाएगा उसका जीवन सफल होगा।

दुनिया के धर्म–ग्रन्थों के इतिहास में यह ग्रन्थ अपनी मिसाल आप है। इसमें एक विशिष्ट समुदाय के अलावा दूसरे समुदायों के धर्म–विचार भी शामिल हैं। प्रमुख भगती लहर के योग दलीलों की वाणी :– जयदेव, त्रिलोचन, नामदेव, रामानन्द, सघना, बेनी, रविदास, धना, कबीर, पीपा, सैन, परमानन्द, सूरदास, भीखन जी की वाणी भी इस ग्रन्थ में शामिल की गई है।

इसके इलावा सूफी कवि बाबा फरीद जी और गुरू घर के निकट संत भक्तों की वाणी भी इसमें शामिल की गई है। और इस बाणी का चयन अलग–अलग इलाकों से तथा जात–पात और धर्म आदि के पक्षपात से ऊपर उठकर किया गया है।

गुरू अर्जुनदेव जी ने इसकी सम्पादना करते समय इसके राग प्रबन्ध को विवेश तौर पर सामने रखा था। जिसकी गुरमत फिलासफी को प्रस्तुत करने में विशेष भूमिका है। इसके सम्पादक ने इसके राग प्रबन्ध के द्वारा इसकी जीवन फिलासफी को बड़ी सुन्दरता से दर्शाया है। इसलिए इस विचारधारा को राग और काव्य के सफल संयोग का नाम देकर विद्वानों ने इसकी महानता को समझने का प्रयास किया है और रस, गायन, समय, ऋतुकालीन गायन, वायु मंडल उसारने की विधि और भारतीय राग परम्परा के अनेक पहलुओं को साथ जोड़ कर इस महत्वपूर्ण प्रबन्ध के सम्बन्ध में कोई विशेष निष्कर्श निकालने की कोशिश की है। गुरमत में शब्द का बहुत महत्व है और इसका संचार रागों के ऊपर आधारित है, इसीलिए शब्द गायन का सम्बन्ध गुरमत

फिलासफी के साथ जुड़ा रहता है।

"आवहो सिख सतगुरू के पेआरेओ गावो सच्ची वाणी
हो आप हो बोल ना जानदा, मैं कहिया सब हुकमाओ जीओ ।"

'शब्द के रूप में प्रकट होकर एक विशेष राग प्रबन्ध के अधीन संसार में संकलित हुई। ऐसी विशिष्ट धारणा ने ही इस धर्म को गुरू की उपाधि दिलाई।

"आज्ञया पई अकाल की तबै चलाएओ पंथ ।
सब सिखन को हुक्म है गुरू मानेयो ग्रन्थ ।।

राग प्रबन्ध की दृष्टि से 'गुरू ग्रन्थ साहिब' पहला ग्रन्थ है जो एक विशेष सम्पादना का उत्तम नमूना है।

गुरवानी में सबसे अधिक रागों का प्रयोग गुरू रामदास जी और गुरु अर्जुनदेव जी ने किया है, जिन्होंने 30 रागों में बाणी की रचना की है। गुरू नानक देव जी ने 19 रागों में, गुरू अमरदास जी ने 18 रागों में, भगत रविदास जी ने 16 रागों में। जैसे गुरूओं की वाणी गुरूगद्दी क्रमानुसार है वही पर प्रथम स्थान भगत कबीर जी को दिया गया है और उसके बाद भगत नामदेव जी, रविदास जी आदि और भक्तों की वाणी दर्ज है। अंत में भकत फरीद जी की वाणी शामिल की गई है। हर राग में इसी क्रमानुसार हर गुरू, भक्त और गुरू घर के निकटवर्तियों की वाणी शामिल की गई है। इन रागों का सैद्धान्तिक और शास्त्रीय अध्ययन स्पष्ट करा है कि कुछ राग सनातनी शुद्ध रूप में और कुछ देसी रूप में गुरू ग्रन्थ साहिब में दर्ज हुए हैं। इन रागों के बारे में गुरु ग्रन्थ साहिब में दर्ज टिप्पणियां और कुछ और ग्रन्थों मं दर्ज टिप्पणियां इनके महत्व और गुरुवाणी की आन्तरिक अध्यात्मिक भूमिका को स्पष्ट करते हैं।

1. "रागा बिच सिरी राग है जे सच धरे प्यारे"
2. "शब्द रते बड़हंस है, सचनाम उरधार"
3. सोरठ सदा सुहावनी, जे सच मन होए"
4. बिलावल तब ही कीजिए, जब मुख हौवै नाम"
5. रामकली राम मन बसिया तां बनियार"

इस तरीके से यह टिप्पणियां केवल राग की महानता की ही धारिणी नहीं बल्कि गुरमत फिलासफी के जीवन आदर्श के कई पहलू भी ऐसी टिप्पणियों में दर्ज हैं। इस

तरह से गुरमत फिलासफी और राग के परस्पर सम्बन्ध का उल्लेख इन टिप्पणियों में देखा जा सकता है। जैसे की राग मल्हार – मानसिक शान्ति के लिए मनुष्य के धैर्य का कारण बन सकता है। इन ऱागों का नामकरण भी गुरमत फिलासफी के कई पहलूओं को उजागर करता है। जैसे –

1. मांझ राग के अंतर्गत बारह मास अंकित है ।
2. गुजरी – गुजर लोगं से सम्बन्धित है ।
3. बसन्त, मल्हार, ऋतु कालीन राग है ।
4. सूही राग खुशी के समय का राग है जो विवाह के समय में गाया जाने वाला है इसीलिए गुरू जी ने विवाह के समय इसी राग में लावों का पाठ किया जातां है।

इन रागों के नाम कुछ इलाकों के नाम के साथ भी जुड़े होने का पता चलता है। जैसे – तिलंग राग का सम्बन्ध तिलंगाना के साथ, तुखार का मुस्लमानी देश के साथ, मारु का रेतिले मारुस्थल के साथ और आसा का आसा देश के साथ , सौरठ का सौराष्ट्र के साथ, गन्धार देश से देवगन्धार, इसी प्रकार आसा, सूही, बिलावल, भारतीय सूफी फकीरों के राग हैं।

सिरी, गौड़ी, बड़हंस, धनाश्री, जैतसिरी, तोड़ी, रामकली,केदार, भैरव, जैजैवन्ती आदि राग वैराड़ी, बिलावल पुराने सनातनी भारतीय रागों की सूची में शामिल हैं।

गुरू ग्रन्थ साहिब में दर्ज इन रागों में बाणी इनके सम्पूर्ण प्रभाव को चित्रित करती है और अपना आध्यात्मिक सन्देश देती है।

1. "नानक हरे ना सुकही, जे गुरमुख रहे समाए"
2. "सुन घन घोर शीतल मन मोरा, चाल रती गुन गावै"
   बरस घना मेरा मन पीना" ।।
3. "कल काती राजे कासाई धर्म परव कर उडरिआ ।।"

इन पंक्तियों में वाणीकर्ता ने चुने हुए रागों का ध्यान करते हुए उसके महत्व को आध्यात्मिक तरीके से व्यक्त किया है।

जैसे – "नानक हरे ना सूकहे"

बसन्त ऋतु का आभास कराता है। परन्तु इशारा मनुष्य की आत्मा की तरफ है।

"गुरूमुख रहे समाए बरस धरू"

मल्हार राग का बारिश के साथ सम्बन्धित होने का सन्देश देता है। परन्तु इशारा मेरा मन पीना की तरफ है। मांझ राग पंजाब के मांझे के इलाके का राग है। इसीलिए गुरू नानक देव जी ने इस श्लोक की राजनीतिक अवस्था का वर्णन इस राग में किया है और राजों का कसाई होना, धर्म का पंख लगाकर उड़ जाना, झूठ की काली रात का गलबा और सच के चन्द्रमा का दिखाई न देना आदि इशारे कर के इस इलाके की दशा पर ध्यान करवाया है।

भारतीय संगीत के इतिहास में कई राग–मालाओं के प्रचलन का ज्ञान होता है परन्तु गुरू ग्रन्थ साहिब में किस राग–माला का प्रयोग किया गया है। इसके प्रति संगीत शास्त्री मिल कर फैसला नहीं कर सके। भाई काहन सिंह नाभा ने प्रसिद्ध संगीत शास्त्री मादवनल के हवाले से छः (6) प्रमुख रागों – भैरव, मालकोंश, हिंडोल, दीपक, श्री, और मेघ राग का वर्णन किया है और इनकी रागनियों और पुत्र रागों का वर्णन भी किया है।

गुरू अर्जुनदेव जी ने किस राग माला को अपनाया है इसके बारे में विद्वान निश्चित रूप से वर्णन करने में असमर्थ हैं। परन्त रागों का क्रम और प्रबन्ध गुरू अर्जुनदेव जी का रागों का ज्ञान का पक्ष दर्शाता है। इसी क्रम में 'श्री' राग को पहला स्थान दिया गया है और उसके बाद जपजी साहिब जो एक राग रहित वाणी है को प्राथमिकता दी गई है।

गुरू ग्रन्थ साहिब में प्रथम स्थान 'श्री' राग का है और अन्तिम स्थान जैजैवन्ती राग का है। ऐसा प्रबन्ध ही गुरू ग्रन्थ साहिब को भारतीय संगीत प्रणाली में नवीनता और मौलिकता प्रदान करता है। राग जैजैवन्ती में गुरू तेगबहादुर जी के उच्चारित शब्द इस प्रकार हैं :–

1. "राम सिमर, राम सिमर एहै तेरै काज है"
   भाएगा को सग तियाग, प्रभ जु की शरण लाग ।
   जगत सुख मान, मिथेया झुठो सब साज है"

(राग जैजैबन्ती)

2. सिमरत नह कियो मुरार, माएया जाकी चेरी,

सम्पत रथ धन राज, सियो अंत नेह लगाएयो ।"

आदि गुरू ग्रन्थ साहिब की महानता को प्रकट करते हैं ।

जवानी की अवस्था	लावां आनन्द साहिब
तिलंग, सूही, बिलावल गोड़, रामकली, नट, भाली गौड़ा	
बैराड़ी	
तोड़ी	
जैतश्री	मारु
धनाश्री	तुखारी
सोरठ	केदारा
बडहंस	भैरव
बिहगड़ा	बसन्त
देवगन्धारी	सारंग
गुजरी	मल्हार
आसा	कान्हड़ा
गौड़ी	कल्याण
मांझ	प्रभाती
श्री	जैजैवन्ती
(मूल मन्तर)	गुरू तेगबहादुर जी और
जपजी –राग रहित	भक्त फरीदजी के सांसारिक
(मंडली अवस्था)	नश्वरता भरे शब्द और श्लोक

इस राग प्रबन्ध की खूबसूरती यह है कि इनका सम्बन्ध अलग–अलग काव्य रूपों के साथ है। इन काव्य–रूपों में बहुलता लोककाव्य रूप की है। वाणीकार इस बात से सुचेत थे कि आम जनता को उनकी ही भाषा के काव्य–रूप में गुरमत फिलासफी से अवगत कराया जाए ताकि वो इस गम्भीर फिलासफी को आसानी से समझ सके। इस

काव्य रूप का क्रम इस प्रकार से रखा गया है कि भारत के सब धर्मों, सम्प्रदायों और प्रान्तों के लोग इन लोकप्रिय रागों को अच्छी तरह से समझ सके और सर्व सांझी मनुष्यता का सन्देश गुरमत फिलासफी के अंतर्गत स्पष्ट कर सके। शब्द, पद, अष्टपदीया, आरती, अंजजीया, पटी, बावन अक्षरी, परम्परा वादी सनातनी काव्य रूप है जबकि घोड़ियां, अलाऊनियां, छंद, कुचजी, सुचजी, छिझ, बारहमाह, वार आदि भारतीय लोक काव्य रूप हैं। इसी प्रकार करहने और काफी जो राजस्थानी और सूफी कवियों के लोकप्रिय काव्य रूप है गुरू ग्रन्थ साहिब के काव्य प्रवाह का माध्यम बने।

गुरू ग्रन्थ साहिब मे दर्ज वाणी इक्कतीस (31) रागों में है। इनका कम जीवन फिलासफी के जीवन सच को स्पष्ट करने वाली है। गुरू ग्रन्थ साहिब का आरम्भ साधारण परन्तु अंत महत्वपूर्ण ढंग से हुआ है। गुरमत में इसको मूल मन्त्र का नाम दिया गया है। जिसमें परमात्मा के बारे में व्याख्या करते हुए इसकी प्राप्ति का साधन भी बताया गया है। जपजी साहिब एक राग रहित वाणी है। गुरू ग्रन्थ साहिब के बाणी प्रबन्ध की यह प्रथम अवस्था है।

एक जिज्ञासु के लिए यह अवस्था अति आवश्यक है। लगभग यह प्रमाणित मत है कि 'जपजी साहिब' एक दार्शनिक रचना है और गुरू ग्रन्थ साहिब की बाकी वाणी इसके ऊर लिखी हुई विस्तारमयी भाषा है। इसके दार्शनिक पहलूओं को देखते हुए ही इसको गाने की बजाय (जगह) पढ़ने वाली वाणी माना गया है। इस तरह से शुरू की अवस्था मनुष्य जीवन का वह पड़ाव है जो कोरी तख्ती की भांति है। ब्रह्म का स्वरूप, आत्मा, धर्म, ज्ञान, कम्र और सचखड़, योग, सूवन, मन्न, विधि आसन, गुरू सदाचार, कर्मकांड, हुकम, प्रसाद, जगत की उत्पत्ति, आदि सारे संकल्प मनुष्य गुरमत की आरम्भिक अवस्था से ही ग्रहण करता है। यहाँ पर यह बड़े ही तर्कशील तरीके से इन संकल्पों का ज्ञान हासिल करता है और इसके मन में अधिक ज्ञान प्राप्त करने की लालसा उत्पन्न हो जाती है और इस अधिक विचार प्रधान अवस्था से गुजरते हुए मनुष्य सतब्ध भी रह जाता है। 'श्री' राग में रची वाणी मनुष्य को इस हालत में सहारा देने वाली है और आसा राग का सम्बन्ध अमृत समय के साथ है जो मनुष्य को ताजगी के माहौल में सिमरण करने में सहायता देता है। पटी, आसा दी वार, मांझ दी वार, मनुष्य को ऐसे समय में रहनुमाई करने वाली प्रमुख वाणियां हैं। बडहंस, सोरठ, धनाश्री, जैतश्री, टोड़ी, वैराड़ी, राग जहाँ पर मनुष्य को मानसिक प्रौढ़ता प्रदान करते हैं। वहीं

पर उसके जवान होने के भी सूचक हैं। तिलंग, सूही, बिलावल, रामकली, नट, मालीगौड़ा, मनुष्य के जवानी के जलाल का हिस्सा है। यह सभी खुशी के साथ सम्बन्धित हैं । इस तरह राग रहित जपजी से विकास करता हुआ मनुष्य आत्मिक दृष्टि से जवानी की उम्र में पहुंच जाता है। ऐसी अवस्था उसकी शादी की है और इसीलिए गुरू ग्रन्थ साहिब के बीच में लावों का (शादी से सम्बन्धित रस्म अदा करने वाला काव्य रूप) काव्य रूप है जो खुशी से सम्बन्धित राग सूही में है।

इसके पश्चात् राग मारु, तुखारी, और केदार हैं। यह राग जवानी के खत्म होने से सम्बन्धित है और मनुष्य को खुशी और गमी की अवस्था से गुजारते हैं । भैरव, बसन्त, सारंग, मल्हार, कल्याण और प्रभाती राग, इस डर से गुजरते हुए मनुष्य को आगे जीवन के बारे में समझ करवाते हैं।

राग प्रबन्ध के अंत में राग जैजैवन्ती है। जो मनुष्य को ससार की असलियत पहचानने की समझ करवाता है। इस राग में गुरू तेग बहादुर जी के चार शब्द हैं। यहाँ पर मनुष्य को सच का ज्ञान होना शुरू हो जाता है। यहाँ पर इसको ज्ञान हो जाता है कि जीवन का सच मृत्यु है और जीवन झूठ। अलग–अलग ऋतुओं से जुड़े हुए राग भी मनुष्य को इसी प्रकार की समझ करवाते हैं।

इस प्रकार गुरू ग्रन्थ साहिब में वर्णित वाणी का राग प्रबन्ध मनुष्य जीवन के विकास रास्ते की खूबसूरती दृष्टाता है और यह विकास जीवन फिलासफी का धारिणी है।

टिप्पणियां

1. डॉ0 तारन सिंह, श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी के सहित इतिहास, पृ0 486
2. गुरू ग्रन्थ साहिब, महला –3पृ0 920
3. वही, महला – 5, पृ 628
4. वही, महला –5, पृ 763
5. वही, महला –5, पृ0 629



आदि ग्रन्थ की विशेषता

गुरू नानक देव जी का आरम्भ किया हुआ आदि ग्रन्थ गुरू अर्जुनदेव जी द्वारा सम्पादित हुआ।

आदि ग्रन्थ निम्नलिखित विशेषता के कारण से प्रसिद्ध तथा महत्वपूर्ण ग्रन्थ है :–

1. इसके आदि आरम्भ तथा निर्माण करने का सारा श्रेय प्रथम गुरू श्री गुरु नानक देव जी को है।
2. यह सिक्ख धर्म का आधार, प्रामाणिक और आदि ग्रन्थ माना जाता है।
3. इसमें 13वी, 14वीं, 15वीं, 16वीं शताब्दी के अन्य 15 भक्तों की रचनाएं भी संग्रहित हैं।
4. इसमें अपभ्रंश काल की सभी भाषाओं का प्रयोग हुआ है। इस में गुरू नानक देव जी के शिष्यों में से पांच शिष्यों की (गुरूजनों) की रचनाएं सम्मिलित हैं।
5. इस ग्रन्थ की भाषा, सरल, स्पष्ट तथा मधुर है।
6. याह सारा काव्य गीति–काव्य के रूप में है।
7. इसकी प्रत्येक रचना 'राग' में निबन्ध हैं और आज तक इनकी गायन परम्परा का प्रचार है।
8. विश्व के प्रमुख धर्मों में से केवल यही ग्रन्थ है जिसका सारे का सारा सम्पादन तथा वर्गीकरण संगीत ही पर आधारित है।
9. इसमें उन्होंने महापुरुषों की रचनाओं को सम्मिलित किया है। जिनकी रचनाएं राग बद्ध हैं।
10. इस ग्रन्थ की विचारधारा एक ईश्वरवाद, निराकार, निरंकार, निरवैर, निर्विकार रूप को उजागर करती है।

11. यह ग्रन्थ राजसी सामाजिक, कला तथा अध्यात्मिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

12. इसी ग्रन्थ के कारण भक्ति युग (मध्यकाल) का आध्यात्मिक साहित्य पंजाब में सुरक्षित रहा है।

13. इससे भक्ति संगीत की परम्परा का विकास हुआ है।

14. इस ग्रन्थ ने प्रांतीयता, भाषावाद, जातिवाद से ऊपर उठकर अन्तर्राष्ट्रिय स्थान प्राप्त कर लिया है क्योंकि इसमें अनेक भक्तों की रचनाएं एक ही सूत्र में निबन्धित है।

15. यह ग्रन्थ संगीत के माध्यम से भक्ति का सन्देश देता है।

16. साहित्य तथा संगीत की दृष्टि से भी यह मध्यकाल का प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है।

17. राग तथा रस के अनुसार कविता का संयोग एक अपूर्व उदाहरण है जो गुरूजनों की वाग्येकार प्रतिभा होने को प्रकट करता है।

18. साहित्य के नव रसों का "काव्य संगीत" इस ग्रन्थ का अपूर्व उदाहरण है।

पादटिप्पणियां

1. डी0एस0 नरुला, गुरू नानक संगीतज्ञ, पृ0 149
2. सरदार ज्ञानसिंह 'ऐबटाबाद' गुरूबाणी संगीत भूमिका
3. पंडित दिलीपचन्द्र बेदी से प्राप्त जानकारी
4. उमेश जोशी, भारती संगीत का इतिहास, पृ0 321



उपसंहार

गुरू ग्रन्थ साहिब

'गुरू ग्रन्थ साहिब ग्रन्थ' की संगीत जगत को बहुत बड़ी देन है। दुनिया में और कोई ऐसा ग्रन्थ नहीं जो पूर्ण रूप से आध्यात्मिक और संगीतिक हो। इसलिए गुरू ग्रन्थ साहिब अपनी मिसाल आप है। गुरू ग्रन्थ साहिब जी की स्थापना 1604ई0 में गुरू अर्जुनदेव जी ने करके बाबा बुड्डा जी को इस पवित्र 'भीड़' का मुख्य ग्रन्थी बनाया। अपने से पहले गुरूओं की वाणी और अपने समकालीन भक्तों की वाणी जो गुरूमत के अनुकूल थी का गहरा अध्ययन करने के बाद रागों के अनुसार आपने तरतीब दी। इस ग्रन्थ की 'जपुजी' के अतिरिक्त सारी वाणी रागात्मक है। गुरू जी ने वाणी संकलन करके "पोथी परमेश्वर" के रूप में संसार को प्रदान किया।

गुरू नानक देव जी के पूर्व की कई शताब्दियों का इतिहास अन्धकार में है और प्राप्त तथ्यों के आधार पर ज्ञात होता है कि ग्यारहवीं शताब्दी के पश्चात् मुसिलम शासन के प्रभाव के कारण राग–संगीत पंजाबी अंचल में पराभव की दशा को प्राप्त हो चुका था। गुरू नानकदेव जी ने रागाधारित कीर्तन की प्रथा का सूत्रपात कर राग संगीत को नया जीवन प्रदान किया। इस तथ्य का अध्ययन धार्मिक और राजनीतिक परिस्थितियों से सम्यक् रूपेण किया जा सकता है।

धार्मिक परिस्थिति

हिन्दू धर्म के प्राणस्वरूप ग्रन्थ रामायण और श्रीमद्भागवद्गीता" माने जाते हैं। दोनों ही ग्रन्थों में इस बात का उल्लेख मिलता है कि जब धर्म की अवनति अपनी चर्म सीमा को पहुँच जाती है तो ईश्वर सन्तों के परित्राण और धर्म की स्थापना के लिए अवतार धारण करता है :–

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।। 7 ।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे–युगे।। 8 ।।

गुरूनानक देव जी के अवतरित होने के युग में धार्मिक मर्यादाएं और सामाजिक व्यवस्था दोनों ही शोचनीय दशा को पहुँच गई थीं। धर्म के क्षेत्र में बाह्याचार, आडम्बर और ढोंग का बोलबाला था। साधु, योगी, यति, महंत, पुजारी, सभी अपने आदर्शों से गिर गए थे और धर्म के नाम पर लोगों को मूर्ख बनाकर धन ऐंठ रहे थे। समाज में माता का पद ग्रहण करने वाली स्त्री जाति की दुदर्शा हो रही थी। विधवाओं को बलपूर्वक पति के शव के साथ आत्मदाह करने के लिए बाध्य किया जाता था और इसी प्रकार के अनेक अनाचार और कुरितियों में फंसा हुआ तत्कालीन भारत घोर पराभव की स्थिति से गुजर रहा था। ऐसे संकटग्रस्त समय में ईश्वर के अंश रूप में गुरू नानकदेव पंजाब की पवित्र धरा पर अवतरित हुए और हिन्दू धर्म एवं समाज को चिर अंधकार के गर्त में विलीन होने से बचाया। संगीत के दृष्टिकोण से गुरू नानकदेव का अवतरण अत्यन्त महत्वपूर्ण है। क्योंकि इस्लाम धर्म में वर्जित होने के कारण भारतीय संगीत कला पतन पराकाष्ठा को पहुँच चुकी थी। राग विद्या लुप्त होती जा रही थी। ऐसे समय में रागबद्ध कीर्तन की प्रथा चलाकर गुरू नानकदेव जी ने भारतीय संस्कृति के प्रमुख तत्व संगीत को नवीन जीवन प्रदान किया।

गुरू नानकेदव जी द्वारा संगीतकारों का उत्थान

गुरू जी ने संगीत को ही नया जीवन प्रदान नहीं किया, अपितु संगीतकारों को भी समाज में आदर का स्थान प्रदान किए जाने के लिए अवरुद्ध कपाट मुक्त कर दिए। इस काल में गाने बजाने का कार्य "मिरासी" जाति के लोग करते थे जो विद्धानों के मतानुसार प्रथमतः हिन्दू थे लेकिन मुसिलम शासन स्थापित हो जाने के पश्चात् धर्मपरिवर्तन के फलस्परूप मुसलमान हो गए। इनके मुसलमान होने के दो ही कारणों की कल्पना की जा सकती है। एक तो आर्थिक तौर पर कमज़ोर, और दूसरे मान प्रतिष्ठा प्राप्त करने का लोभ। जब समाज में संगीत, कला को हेय दृष्टि से देखा जाने

लगा तो कलाकार समुदाय भी सभ्य समाज द्वारा उपेक्षित हुआ। संगीत कला की लोकप्रियता में हास हो ज़ाने के कारण इनका आर्थिक दृष्टि से विपन्न होना भी स्वाभाविक था। अस्तु इन दोनों ही अभावों से बचने के लिए ही इस समुदाय ने अत्याधिक संख्या में प्रायः एकजुट होकर इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लिया, ऐसा सोचना अनुचित न होगा।

गुरू नानकदेव जी ने देखा कि संगीत की वास्तविक निधि इसी समुदाय के हाथ में है। अस्तु कीर्तन के प्रचार के लिए उन्होंने इनका सहयोग लेना उचित समझा। संयोग से मरदाना नामक एक भाग्यशाली मिरासी पर गुरू जी की कृपादृष्टि पड़ी जो मुसलमान होते हुए भी गुरू जी की श्रद्धा के रंग में रंग गया। मरदाना को साथ लेकर गुरू जी देश–विदेश के भ्रमण के लिए निकल पड़े। मरदाना रबाब बजाने में निपुण था। रबाब के सुर पर गुरू जी और मरदाना हंरिकीर्तन करते और श्रोताओं को आत्मविभोर कर देते।[1]

राग और लय में बद्ध यह कीर्तन शीघ्र ही लोकप्रिय़ हो गया और इस प्रकार राग संगीत समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करने लगा।

पादटिप्पणी

1. Sikh Sacred Music, p.10 , Published by Sikh Sacred Music Society, New Delhi.



सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

हिन्दी

उमेश जोशी — **भारतीय संगीत का इतिहास**, फिरोजाबाग, मानसरोवर, प्रकाशन, 1956।

अहोबल — **संगीत परिजात**, भाष्कार प्रौ० कनंद जी, संगीत कार्यालय : हाथरस, उत्तरप्रदेश, नवम्बर, 1956।

आचार्य बृहस्पती — **संगीत चिन्तामनी**, हसरस : उत्तर प्रदेश, संगीत कार्यालय, 1956।

आचार्य बृहस्पति — **भरत का संगीत सिद्धान्त**, उत्तर प्रदेश, संगीत, कार्यालय, हसरस, 1977।

आचार्य बृहस्पति — **मुसलमान और भारतीय संगीत का इतिहास**, दिल्ली, राजकमल, 1974।

आचार्य बृहस्पति — **नाट्य शास्त्र**, नई दिल्ली : बृहस्पति पब्लिकेशन, 1986।

सक्सेना (मधु बाला) — **ख्याल शैली का विकास**, कुरुक्षेत्र : विशाल पब्लिकेशन, 1985।

शीतल, प्रभुदयाल — **भुज के धर्म संप्रदावा का इतिहास**, दिल्ली-6 : नेशनल पब्लिकेशन हाऊस।

सैन, अरुण कुमार — **भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन**, भोपाल : हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1973।

गुप्ता, उषा — **हिन्दी के कृष्ण भगती कालीन साहित्य में संगीत**, लखनऊ : विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग।

श्रीवास्तव धर्मावती — **प्राचीन भारत में संगीत**, बनारस : भारतीय विद्या प्रकाशन, 1963।

सारंग देव (पंडित) — **संगीत रत्नाकर**, (अनु लक्ष्मी नारायण गर्ग), उत्तर प्रदेश : संगीत कार्यालय, हसरस, 1975।

बसन्त — **रागकोष**, (सम्पा० लक्ष्मी नारायण गर्ग) हसरस : उत्तर प्रदेश संगीत कार्यालय।

बासुदेव (शास्त्री के०) — **संगीत शास्त्र**, लखनऊ : हिन्दी समिती, 1968।

वर्मा, दरेन्द्र — **हिन्दी साहित्य कोष**, बनारस : ज्ञान मंडल, 1958।

रामामात्य — **स्वर मेल कलानिधी**, (अनु० पंडित विशम्बर नाथ भट्ट) हसरस : उत्तर प्रदेश, संगीत कार्यालय, 1963।

राम अवतार — **भारतीय संगीत**, नई दिल्ली : वीर प्रकाशन।

भट्ट, भगवती प्रसाद
प्रेम शंकर — **पुष्टी संगीत प्रकाश**, दिल्ली : संगीत नाटक अकादमी 1973।

भतखण्डे, वी० ऐन० — **क्रमिक पुस्तक मालिका**, हासरस : उत्तर प्रदेश संगीत कार्यालय।

नवाव अली 'राजा' — **मरिफुन्नगमात**, हाथरस : उत्तरप्रदेश संगीत कार्यालय।

बंदौपाध्याय, श्रीपद — **संगीत भाषा**, दिल्ली : वी०आर० पब्लीशिंग कारपोरेशन, 1985

पाठक, सुन्नदा — **हिन्दोस्तानी संगीत में राग की उत्पत्ति एवम विकास**, नई दिल्ली : राधा पब्लिकेशन।

दास, श्याम सुन्दर — **हिन्दी शब्द सागर**, कांशी : कांशीनगरी प्रचारिणी सभा, 1965।

दास, शाम सुन्दर — **हिन्दी भाषा और साहित्य**, इलाहाबाद : इंडियन

प्रैस।

जौहरी, पुष्पा — **सन्त नामदेव का काव्य और संगीत तत्व अविव्यंजना**, नई दिल्ली, 1985।

चौधरी, विमल कान्त राय — **भारतीय संगीत कोष**, नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 1975।

चौधरी, सुभ्रदा — **भारतीय संगीत में ताल और रूप विधान**, अजमेर : कृष्णा बुधस्त, 1975।

नरूला, दर्शन सिंह — **सिक्ख गुरूओं की भारतीय संगीत को देन**, पटियाला : भाषा विभाग।

ओही — **गुरू नानक संगीतज्ञ**, जालन्धर : न्यू बुक कम्पनी, 1977।

पटवर्धन, विनायक राव — **राग विज्ञान** : पूना : संगीत गौरव ग्रन्थ माला।

परांजपे, सरचन्द्र श्रीधर — **संगीत बोध**, मध्यप्रदेश : हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1980।

डॉ० रविशंकर नागर — **नाटयशास्त्र**, दिल्ली : परिमल पब्लिकेशन्स, 27/28, शक्ति नगर, 1988।

अमलदाश शर्मा — **भक्ति संगीत**, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1-बी० नेता जी सुभाष मार्ग, 1990।

श्री रा०जं० पाटणकर — **हमारा संगीत, भाग चार**, हाथरस उत्तरप्रदेश, संगीत कार्यालय, 1977।

प्रो० हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव — **प्रवीण प्रवाह**, इलाहाबाद : संगीत सदन प्रकाशन, 88 साउथ मलाका, 1981।

अमलदाश शर्मा — **विश्व संगीत का इतिहास**, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1990

डा० पारसनाथ द्विवेदी — **नाट्य शास्त्र का इतिहास**, वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, 1994।

पं० माणिकबुवा ठाकुरदास — **राग दर्शन**, अजमेर : जमकृष्ण अग्रवाल कृष्णा ब्रदर्स, महात्मा गान्धी मार्ग, 1988।

भगवत शरण शर्मा — **भारतीय संगीत का इतिहास**, हाथरस : संगीत कार्यालय, 1993।

आचार्य बृहस्पति
सुलोचना बृहस्पति — **राग रहस्य**, नई दिल्ली : बृहस्पति पब्लिकेशनस, साहित्य संगीत संगम मुनीरका।

डा० हरद्वारी लाल शर्मा — **कला में संगीत, साहित्य और उदात्त के तत्व**, मेरठः मानसी प्रकाशन, 39, कैलाशपुरी, 1994।

श्री पद बन्द्योपाध्याय — **संगीत रहस्य**, दिल्ली : भारतीय संगीत साहित्य प्रकाशन प्रेम नगर, सब्जी मण्डी, 1956।

लक्ष्मी नारायण गर्ग — **निबंध संगीत**, हथरस (उत्तर प्रदेश) : संगीत कार्यालय, मई– 1978।

पंडित फिरोज फ्राम जी — **पूना कैम्प**, पंडित फिरोझ फ्राम जी, संगीत शास्त्री, 322, मेन स्ट्रीट।

लक्ष्मी नारायण गर्ग — **हमारे संगीत रत्न**, हाथरस (उत्तर प्रदेश), संगीत कार्यालय, 1/6/57।

उमेश जोशी — **भारतीय संगीत का इतिहास**, आगरा (उत्तर प्रदेश): मानसरोवर प्रकाशन प्रतिष्ठान, फिरोजाबाद, जून-1978।

रमा सराफ़ — **संगीत उपासना**, जालन्धर : ए०पी० पब्लिशर्ज, 19, बुक्स मार्कीट, चौक अड्डा टांडा।

भगवत शरण शर्मा — **हिन्दुस्तानी संगीत शास्त्र**, तृतीय भाग, खुरजा : संगीत मन्दिर।

भगवत शरण शर्मा — **सितार-मालिका**, हाथरस (उ०प्र०) : संगीत कार्यालय, चतुर्थ संस्करण जुलाई-1971।

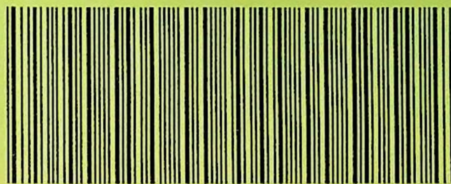
पंडित जगदीश नारायण — **संगीत निबन्ध माला**, इलाहाबाद : पाठक पब्लिकेशन, 27, महाजनी टोला, जून-1989।

जगदीश सहाय कुलश्रेष्ठ — **संगीत किशोर**, हाथरस (उत्तर प्रदेश) : संगीत कार्यालय, आठवां संस्करण, सितम्बर, 1964।

स्व० श्री रा०गं० पाटणकर — **हमारा संगीत, भाग-4,** बुलन्दशहर : संगीत कला केन्द्र पांचवां संस्करण, 1977।

प्रो० हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव — **प्रवीण प्रवाह**, इलाहाबाद : संगीत सदन प्रकाशन, 88 साउथ मलाका, चतुर्थ आवृत्ति–1991

ISBN : 978-93-82670-03-2





हाइब्रो पब्लिकेशन्ज़
नेशनल हाइवे,
बाड़ी ब्राह्मणा, जम्मू



जम्मू में जन्मी-पली श्रीमति सविता बख्शी स्व० जगदीश दत्त बख्शी की बेटी हैं। माता-पिता के प्रोत्साहन से इनका संगीत-प्रेम परवान चढ़ता गया। जम्मू विश्वविद्यालय से संगीत विषय लेकर बी०ए० पास करके पंजाब विश्वविद्यालय से 1977 ई० में एम०ए० म्युजिक की डिग्री प्राप्त की। सितार वादन की शिक्षा पं० ओमकार नाथ रैना जी से और गायन की शिक्षा पं० प्रेम जी से ग्रहण की।

सविता बख्शी ने 'सितार-शिक्षक' के रूप में, सितार-विभागाध्यक्षा और 'म्युज़िक एवं फाइन आर्ट संस्थान' में प्रिंसिपल के रूपों में सराहनीय कार्य किया। इसमें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—हिस्ट्री ऑफ-आर्टस का विभाग आरम्भ करवाना और विज़ुयल आर्ट में बी.ए, के लिए शिक्षण का आरम्भ किया जाना। चतुर्वर्षीय डिग्री कोर्स पैटर्न (10+2+4) विजुयल आर्ट में और 'बी म्युज़िक' शुरू करवाया ताकि स. गीत के विद्यार्थियों को दूसरे विश्व-विद्यालयों में सहजता से प्रवेश मिल सके।

संगीत के साथ अथाह लगाव होने के कारण सविता बख्शी ने संगीत शिक्षिका बनकर विद्यार्थियों को हमेशा प्रोत्साहन दिया है। इनके कई विद्यार्थी आज महाविद्यालयों में संगीत की शिक्षा प्रदान कर रहे हैं।

सविता बख्शी एक सौम्य, सभ्य, सुशील, संगीतज्ञा होने के साथ-साथ एक अच्छी निर्णायका भी हैं। इन्होंने नगर के कुछ टी.वी. चैनलों पर ''टेलैण्ट हंट शो'' टीम में जज की भूमिका निभाते हुए संगीत के साथ न्याय करने का प्रयास भी किया है।

सविता बख्शी के संगीत विषयक कई लेख छप चुके हैं। इन्होंने भारतीय क्लासिकल संगीत पर कई शोध-पत्र सैमीनारों और संगोष्ठियों में भी प्रस्तुत किये हैं। स्थानीय महाविद्यालयों में अतिथि भाषणकर्त्ता (गैस्ट लैक्चर) के रूप में संगीत पर भाषण दिये हैं। जम्मू विश्वविद्यालय में डीन और अकैडमिक कौंसिल की सदस्य, संगीत और ललित कला, संकाय में रहीं। न केवल राज्य में, भारत में, अपितु विदेश में भी सविता बख्शी ने सितार वादन की बारीकियों को स्टेज पर प्रस्तुत करने के अतिरिक्त, वर्कशापों आदि में प्रस्तुत किया। वे 'साऊथ वेल्ज़ ऐथनिक आर्टस टीम' (SWEAT) द्वारा आमन्त्रित किये जाने पर जुलाई 1997 में युनाइटिड किंगडम गईं और 9 जुलाई से लेकर 20 सितम्बर तक बी.बी.सी., कम्युनिटी ऐजूकेशन सैंटर, ब्रिसटल और कई अदारों द्वारा आयोजित सितार-वादन प्रस्तुतिकरण में भाग लिया।

25 सितम्बर से प्रथम अक्तूबर 2007 तक सविता बख्शी ने 'द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय उत्सव' में इन्स्ट्रुमैण्ट साऊण्डस ऑफ युरेशिया कार्यक्रम में भाग लिया।